॥ अथ ॥

एकादशी माहात्म्य

भाषा टीका सहितम् प्रारम्भः।

प्रकाशक—फर्म बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर,
राजादरवाजा बनारस सिटी। सन् १६३४

अथ एकादशीमाहात्म्यप्रारम्भः ।

जगतामादिबीजाय विष्णवे लोकसाक्षिणे ।
शिरसावन्दनं कृत्वा भाषाकर्तुं समुत्सहे ॥

नैमिषारण्य क्षेत्र में अट्ठासी हजार शौनक आदि ऋषियों से सूतजी बोले हे ब्राह्मणो ! इसके पहिले श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेह से एकादशी के उत्तम व्रतको उसके माहात्म्य और विधि सहित इस प्रकार विस्तार पूर्वक

श्रीगोपाल कृष्णाय नमः ॥ सूतउवाच ॥ एवं प्रीत्या पुरा विप्राः श्रीकृष्णेन परं व्रतम् ॥ माहात्म्यविधिसंयुक्तमुपदिष्टं विशेषतः ॥१॥ उत्पत्तिं यः शृणोत्येवमेकादश्या द्विजोत्तमाः ॥ भुक्त्वाभोगाननेकांस्तु विष्णु लोकं प्रयाति सः ॥२॥ पार्थउवाच ॥ उपवासस्य नक्तस्य एकभ-

2

कहा था ॥ १ ॥ कि हे ब्राह्मणों ! एकादशी की उत्पत्ति को जो कोई सुनता है वह इस लोक में अनेक प्रकार के सुख को भोगकर अन्त में विष्णुलोक को जाता है ॥ २ ॥ तब अर्जुन बोले ! हे प्रभो ! उपवास, नक्तव्रत, और एक भुक्तव्रत करने की क्या विधि है और इसको करने से क्या पुण्य है । हे जनार्दन ! वह सब मुझसे

कहिये । (नक्तव्रत उसको कहते हैं जो सूर्यास्त काल में अपनी छाया दूनी दीख पड़े तब उसे प्रदोष काल मानकर एक वार हविष्यान्न भोजन करके रहे । यह काल गृहस्थों के लिये है यतियों के लिये सूर्यास्य से परे तारका उदय के पूर्व नक्तकाल माना गया है। इसी प्रकार एक भुक्त व्रत में केवल मध्याह्न काल में भोजन करे) ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले हे अर्जुन ! हेमन्त ऋतु के अगहन महीना में कृष्णपक्षकी एकादशी के दिन

क्तस्यच प्रभो ॥ किं पुण्यं किं विधानं हि ब्रूहि सर्वं जनार्दन ॥ ॥ श्रीकृष्णउवाच॥ हेमन्ते चैव संप्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे ॥ कृष्णपक्षे तथा पार्थ एकादश्यामुपोषयेत् ॥ ४ ॥ नक्तं दशम्यां कुर्यात्तु दन्तधावनपूर्वकम् ॥ दिवसस्याष्टमेभागे मन्दीभूते दिवाकरे ॥ ५ ॥ तत्रनक्तं विजानीयात् न नक्तं निशिभोजनम् ॥ ततः प्रभातसमये संकल्पं नियतश्चरेत् ॥६॥ मध्याह्नेच

उपवास करे ॥४॥ और उसके पूर्व अर्थात् दशमी के दिन पूर्व में कहे प्रदोप काल में अर्थात् सूर्य के प्रकाशको मलीन देखकर दतवन आदि कर्म को कर लेवे ॥ ५ ॥ उसी दशमी के कालको नक्त जाने, नक्त काल में और रात्रि में भोजन न करके जितेन्द्रिय रहे, प्रातः काल एकादशी व्रतका संकल्प करे, ॥ ६ ॥ हे अर्जुन ! मध्याह्न में स्नान करके शुद्ध हो जावे, स्नान नदी का स्नान उत्तम है तालाब का स्नान मध्यम और बावली

का स्नान अधम कहाता है ॥ ७ ॥ यदि नदी, तालाब आदि न मिलें तो कूपही पर स्नान करे स्नान करते समय मृत्तिका स्नान करने के लिये "अश्वक्रान्ते" इस मन्त्र को पढ़कर शरीर में मृत्तिका लगावे ॥८॥ और कहे कि हे मृत्तिके ! मेरे जन्मान्तर के संचित पाप को तू हरण कर तेरे पापनाश करने से मैं परम गति को पाऊँगा ॥ ९ ॥ एकादशी व्रत करने वाला मृत्तिका स्नानोत्तर शुद्ध स्नान करे। व्रतके दिन पतित, चोर,

तथा पार्थ शुचिः स्नातः समाहितः ॥ नद्यां तड़ागे वाप्यां वा ह्युत्तमं मध्यमं त्वधः ॥७॥ क्रमाज्ज्ञेयं तथा कूपे तदभावे प्रशस्यते ॥ अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥८॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥ त्वया हृतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम् ॥९॥ अनेन मृत्तिकास्नानं विदध्यात्तु व्रती नरः ॥ नालपेत्पतितैश्चौरैस्तथा पाखण्डिभिः सह ॥ १० ॥ मिथ्यापवादिनो देव देवब्राह्मणनिन्दकान् ॥ अन्यांश्चैव दुराचारानगम्या गामिनस्तथा ॥ ११ ॥ परद्रव्यापहर्तृंश्च

पाखण्डो, इनके साथ बात चीत न करे ॥ १० ॥ तथा असत्य बोलनेवाले, देवता, वेद, और ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाले तथा सौतेली माता, चचेरी बहिन, फूफूकी कन्या, मौसी आदि की कन्या वा उनमें गमन करने वाले से ॥ ११ ॥ दूसरे के धनको हरण करने वाले, देवता के धनसे सुख उठाने वालों से भी बातचीत

3

न करे, यदि उन लोगों को देख लेवे तो सूर्य भगवान का दर्शन करे ॥ १२ ॥ स्नानादि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर षोडशोपचार अथवा पंचोपचार से विष्णु भगवान की पूजा करे भक्ति पूर्वक विष्णु के मन्दिर में दीपक जलावे ॥ १३ ॥ हे अर्जुन ! उस दिन निद्रा और मैथुनका त्यागकर व्रत करने वाला गीत वा कथा

देवद्रव्यापहारिणः ॥ न संभाषेत दृष्ट्वापि भास्करं चावलोकयेत् ॥१२॥ ततो गोविन्दमभ्यर्च्य नैवेद्यादिभिरादरात् ॥ दीपं दद्यात् गृहे चैव भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ १३ ॥ तद्दिने वर्जयेत्पार्थ निद्रां मैथुनमेव च ॥ गीतशास्त्रविनोदेन दिवारात्रं नयेद्व्रती ॥१४॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१५॥ यथा शुक्ला तथा कृष्णा मान्या वै धर्मतत्परैः ॥ एकादश्योर्द्वयो राजन् विभेदं नैव कारयेत् ॥१६॥ एवं हि कुरुते यस्तु

वार्ता में मन लगाकर दिनरात्रि व्यतीत करे ॥ १४ ॥ रात्रिकाल में जागरण करने उपरान्त ब्राह्मणों को यथायोग्य दक्षिणा देकर प्रणाम करे और उनसे क्षमा मांगे इस प्रकार एकादशी का व्रत करना चाहिये॥१५॥ जैसी कृष्ण पक्ष की एकादशी वैसी शुक्लपक्ष की दोनों एकादशियों में धर्मात्मा पुरुष को कुछ भेद नहीं

समझना चाहिये ॥ १६ ॥ अब जो इससे विशेष करता है उसका फल सुनो, शंखोद्धार नाम तीर्थ में स्नान करके भगवान के दर्शन का जो फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ वह फल एकादशी व्रत के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं है । व्यतीपात में दान करने से जो एक लक्ष फल होता है ॥ १८ ॥ हे धनंजय ! संक्रांतियों

शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥ १७ ॥ एकादश्युपवासस्य कलां नाप्नोति षोडशीम् ॥ व्यतीपाते च दानस्य लक्षमेकं फलंस्मृतम् ॥ १८ ॥ संक्रान्तिषु चतुर्लक्षं दानस्य च धनञ्जय ॥ कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ १९ ॥ तत्सर्वं लभते यस्तु ह्येकादश्यामुपोषितः ॥ अश्वमेधस्य यज्ञस्य करणाद्यत्फलं लभेत् ॥ २० ॥ ततःशतगुणं पुण्यमेकादश्यामुपोषितः ॥ तपस्विनो गृहे नित्यं लक्षं यस्य च भुञ्जते ॥ २१ ॥ षष्ठिवर्षसहस्राणि

में दान करने का चार लाख फल होता है और चन्द्र सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में स्नान का जो फल होता है ॥ १९ ॥ वह संपूर्ण फल एकादशी के उपवास व्रतका है । और जिसके घर में एक लक्ष तपस्वी ब्राह्मण नित्य भोजन करते हों ॥ २१ ॥ उनको भोजन देने से साठ हजार वर्ष तकका जो पुण्य होता

है वही पुण्य एकादशी व्रत करने से मनुष्य को मिलता है ॥ २२ ॥ छ अंगों के सहित वेदको जानने वाले ब्राह्मणों को एक हजार गौ देने से जो पुण्य होता है उससे दश गुना अधिक फल एकादशी व्रत करने वालों को होता है ॥ २३ ॥ उत्तम दश ब्राह्मण को नित्य भोजन देने का जो पुण्य होता है उससे दशगुना अधिक

तस्य पुण्यं च यद्भवेत ॥ एकादश्युपवासेन फलं प्राप्नोति मानवः ॥२२॥ गोसहस्रेचयत्पुण्यं दत्ते वेदाङ्ग पारगे ॥ तस्मात्पुण्यंदशगुणमेकादश्युपवासिनाम् ॥२३॥ नित्यंच भुंजते यस्य गृहे दश द्विजोत्तमाः ॥ यत्पुण्यं तद्दशगुणं भोजने ब्रह्मचारिणः ॥ २४ ॥ एतत्सहस्रं भूदाने कन्यादाने तु तत्स्मृतम् ॥ तस्माद्दश गुणं प्रोक्तं विद्यादाने तथैव च ॥ २५ ॥ विद्याद्दशगुणं चान्नं यो ददाति बुभुक्षिते ॥ अन्नदान समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ २६ ॥ तृप्ति-

फल ब्रह्मचारियों को नित्य अन्नदान से मिलता है ॥ २४ ॥ उससे हजार गुणा अधिक फल पृथ्वीदान और कन्यादान से प्राप्त होता है उससे दशगुना अधिक फल विद्यादान से मिलता है ॥ २५ ॥ उससे दशगुना अधिक फल उसको होता है जो क्षुधित को अन्न देता है अन्न दान के समान न कोई दान हुआ न है और

न होगा ॥२६॥ हे कौन्तेय ! अन्नदान से स्वर्ग में रहने वाले देवता और पितर तृप्त होजाते हैं अन्नदानके पुण्य का प्रभाव देवताओंको भी दुर्लभ है॥२७॥एकादशीके व्रतके पुण्यकी गणना नहीं हो सकती ! हे अर्जुन ! रात्रिमें एकाहार करनेसे आधा फल और दिनमें एकाहार करनेसे उससे भी आधा फल प्राप्त होता है॥०८॥चाहे दिनमें एक

मायान्ति कौन्तेय स्वर्गस्थाः पितृदेवताः ॥ एतत्पुण्यप्रभावश्च यत्सुरैरपि दुर्लभः ॥२७॥ एका-
दश्या व्रतस्यापि पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ नक्तस्यार्द्धं फलं तस्मादेकभक्ते तदर्धकम् ॥२८॥
एकभुक्तं च नक्तं च उपवासस्तथैवच ॥ एतेष्वन्यतमं वापि व्रतं कुर्याद्धरेर्दिने ॥२९॥ तावद्ग-
र्जन्ति तीर्थानि दानानि नियमा यमाः ॥ एकादशी न संप्राप्ता यावत्तावन्मखाअपि ॥३०॥

भोजन अथवा रात्रिमें एकवार भोजन या निराहार इन तीनों में से किसी प्रकार के व्रत को एकादशी के दिन करे अर्थात् रात्रिमें एकवार कुछ फलाहार भोजन करके रहे अथवा मध्यान्ह कालमें एकवार भोजन कर लेवे या निराहार रह जावे ॥२९॥ ऐसे पवित्र व्रत के सामने तीर्थ, दान, नियम और यज्ञ तभी तक गर्जते हैं जब तक एकादशी नहीं आती है ॥ ३० ॥ इस कारण संसार के तापसे भय मानने वाले सब मनुष्यों को उपवास

युक्त एकादशी का व्रत करना चाहिये, और व्रत के दिन नखसे स्पर्श किया जल न पीवे तथा मछली सूकर आदि जीवों की हिंसा न करे ॥ ३१ ॥ और एकादशी को भोजन न करे हे अर्जुन! तुम्हारे पूछने से मैंने एकादशीके सब विधि को कहा है। व्रतोंमें उत्तम व्रत एकादशीके समान दूसरा नहीं है ॥३२॥ हजारों यज्ञका

तस्मादेकादशी सर्वैरुपोष्या भवभीरुभिः ॥ न नखेन पिबेत्तोयं न हन्यान्मत्स्यसूकरान् ॥ ३१ ॥
एकादश्यां न भुञ्जीत यन्मां त्वं पृच्छसेऽर्जुन ॥ एतत्ते कथितं सर्वं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ३२ ॥
एकादशी समं नास्ति कृत्वा यज्ञ सहस्रकम् ॥ अर्जुन उवाच ॥ उक्ता त्वया कथं देव पुण्येयं
सर्वतस्तिथिः ॥३३॥ सर्वेभ्योऽपि पवित्रेयं कथं ह्येकादशीतिथिः ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ पुरा कृत-
युगे पार्थ पुरुनामा हि दानवः ॥३४॥ अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेव भयंकरः ॥ इन्द्रो विनि-

पुण्य फल इस व्रतको करने से मिलता है। यह सुन अर्जुन बोले हे देव! सब तिथियों में से एकादशी कोही कैसे पुण्यतिथि कही ॥३३॥ और सब तिथियों में से एकादशी तिथि क्यों पवित्र है तब श्रीकृष्णजीने कहा॥ हे पार्थ! पहिले सतयुग में एक बड़ा भारी पुर नामका दैत्य था ॥३४॥ वह बड़ा अद्भुत बड़ा विकट और देवताओं को

भय देनेवाला था । उस दैत्यने देवताओं के राजा इन्द्र को भी जीतकर अपने अधीन कर लिया था ॥ ३५ ॥ हे पाण्डव ! और उस प्रबल प्रतापवाले दैत्य ने सूर्य्य, ब्रह्मा, वायु, अग्नि, कुवेर आदि देवताओं से भी विजय पाया था ॥३६॥ तब इन्द्रादि लोकपालों ने यह सब समाचार महादेवजी से कैलास पर्वत पर जाकर कहा कि

र्जितस्तेन ह्याद्यो देवः पुरन्दरः ॥ ३५ ॥ आदित्या वसवो ब्रह्मा वायु रग्निस्तथैवच । देवता निर्जितास्तेन अत्युग्रेण च पाण्डव ॥ ३६ ॥ इन्द्रेण कथितः सर्वो वृत्तान्तः शंकराय वै ॥ स्वर्गलोकपरिभ्रष्टा विचरामो महीतले ॥ ३७ ॥ उपायं ब्रूहि मे देव अमराणां तु का गतिः ॥ ईश्वर उवाच ॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्रास्ति गरुड़ध्वजः ॥ ३८ ॥ शरण्यश्च जगन्नाथः परित्राणपरायणः ॥ ईशस्य वचनं श्रुत्वा देवराजो महामनाः ॥ ३९ ॥ त्रिदशैःसहितःसर्वैर्गत-

6

हम सब देवता अपने २ लोक से भागकर पुर दैत्य के भय से पृथ्वी पर घूमते हैं ॥ ३७ ॥ स लिये हे स्वामी ! उस दुष्टके नाशका उपाय कहिये नहीं तो देवताओं की क्या दशा होगी ? शिवजी बोले हे इन्द्र ! जहाँ गरुड़ बाहन विष्णु भगवान हैं वहाँ तुम जाओ ॥३८॥ क्योंकि वे शरण गये की रक्षा करनेवाले संसार के स्वामी

हैं शिवजी के वचन को सुनकर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥३९॥ हे अर्जुन ! इन्द्र सब देवताओं को संग लेकर जहाँ संसारको पालन करनेवाले भगवान् शयन किये हैं वहाँ गये ॥ ४० ॥ जगत्प्रभु भगवान्को जल मध्य में शयन किये देखकर इन्द्र हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥ हे देवताओं के प्रभु ! हे देव देवों से पूजा के योग्य ! हे देवताओंके शत्रु ! हे कमल के समान नेत्र वाले ! हे मधु दैत्य को संहार करनेवाले हमारी

स्तत्र धनञ्जय ॥ यत्र देवो जगन्नाथः प्रसुप्तो हि जनार्दनः ॥ ४० ॥ जलमध्ये प्रसुप्तं तु दृष्ट्वा देवं जगत्पतिम् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ४१ ॥ ॐनमो देवदेवाय देव दैवैः सुवंदित ॥ दैत्यारेपुण्डरीकाक्ष त्राहिनो मधुसूदन ॥ ४२ ॥ दैत्य भीता इमे देवा मया सह समागताः॥शरणं त्वा जगन्नाथ त्वं कर्ता त्वं च कारकः ॥४३॥ त्वं माता सर्वलोकानां

रक्षा करो ॥४२॥ दैत्य से भयमानकर ये सब देवता मेरे साथ आये हैं,हे जगन्नाथ ! हमसब आपकी शरणागत हैं आपही सब के कर्ता और सब कर्मों के प्रेरक हो ॥४३॥ सब लोकों के तुमही माता हो, अर्थात् उत्पन्न करने वाले हो तुमही जगत् के पिता हो अर्थात् संसार रूप वृक्षके बीज हो, तुमही उत्पन्न करनेवाले तथा तुमहीं संसार

को प्रलय करने वाले भी हो ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! और तुम्ही सब देवताओं के सहायक हो, तथा तुमहीं शान्ति करनेवाले हो, तुमहीं पृथ्वी हो, आकाश हो और सम्पूर्ण संसार के संहार करने वाले हो ॥ ४५ ॥ तुमहीं शिवहो, ब्रह्मा हो, और तीनों लोक को पालन करने वाले हो, तुमहीं सूर्य, चन्द्रमा, और देवताओं को

त्वमेव जगतःपिता॥ त्वं स्थितिस्त्वं तथोत्पत्तिस्त्वं च संहार कारकः ॥४४॥ सहायस्त्वं च देवानां त्वं च शान्तिकरः प्रभो ॥ त्वं धरा च त्वमाकाशःसर्वविश्वोपकारकः ॥ ४५ ॥ भवस्त्वंच स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्य प्रतिपालकः ॥ त्वं रविस्त्वं शशाङ्कश्च त्वंच देवो हुताशनः ॥ ४६ ॥ हव्यं होमो हुतस्त्वं च मन्त्र तन्त्रर्त्विजो जपः ॥ यजमानश्च यज्ञस्त्वं फलभोक्ता त्वमीश्वरः ॥ ४७ ॥ न त्वया रहितं किञ्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ भगवन्देव देवेश शरणागत वत्सल ॥४८॥ त्राहि त्राहि

तृप्ति देनेवाले अग्नि देव हो ॥ ४६ ॥ तुमहीं हवि तुमहीं आहुति और हवनीय पदार्थ तुमहीं हो, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विग्, जप करनेवाला, तथा यजमान, यज्ञ, यज्ञफल के भोक्ता और ईश्वर भी तुमही हो ॥ ४७ ॥ तीनो लोक के चराचर जीवों में सदा आपका प्रकाश है अर्थात् प्रत्येक स्थल में आपका हा अंश जीव स्वरूप

ए.
मा.

होकर विचरता है हे भग ! तू वहे देवों के देव ! हे शरणागत पर प्रेम करने वाले ॥ ४८ ॥ हे महायोगी ! हम सबों की रक्षा करो और भयसे भीत हम सबों को शरणदो । हे स्वामी ! दैत्यों ने देवताओं को जीतकर स्वर्ग से निकाल दिया है ॥ ४६ ॥ हे जगत् के प्रभो ! हम सब देव स्थान छोड़कर पृथ्वी पर विचरते हैं । इन्द्र का

महायोगिन् भीतानां शरणं भव ॥ दानवैर्निर्जिता देवाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो ॥४६॥स्थानभ्रष्ट जगन्नाथ विचरन्ति महीतले । इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥५०॥श्रीभगवानुवाच॥कोऽसौ दैत्यौ महामायो देवायेन विनिर्जिताः॥ किं स्थानं तस्य किं नाम किं बलं कस्तदाश्रयः ॥५१॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व मघवन्निर्भयोभव ॥ इन्द्रउवाच ॥ भगवन्देव देवेश भवतानुग्रह कारक ॥ ५२ ॥ दैत्यःपूर्वमहानासीन्नाडीजंघ इति स्मृतः । ब्रह्मवंश समुद्भूतो

यह वचन सुनकर विष्णु भगवान् बोले ॥५०॥ कि ऐसा कौन वड़ी माया को जाननेवाला दैत्य हुआ है जिसने सब देवताओं को जीतलिया है, वह कहाँ रहता है, उसका क्या नाम है उसको कितना वल है और उसको किसका आश्रय है ॥ ५१ ॥ रे इन्द्र ! यह सब वात निर्भय होकर हमसे कहो । इन्द्र ने कहा हे भगवान् ! हे

भा
टी.

देवेश ! ॥५२॥ नाड़ीजंघ नामका एक विख्यात दैत्य था, जो ब्रह्मवंशमें पैदा हुआ था और उग्र स्वभाव तथा सुर-शत्रु था ॥५३॥ उसका प्रसिद्ध पुत्र मुरु नामक था जिसकी चन्द्रवती नामकी सुन्दर नगरी थी ॥५४॥ उसमें वह दुष्ट स्वभाव वाला सकल संसार को वशमें करके रहता है और उसने सब देवताओं को स्वर्गसे निकाल उनके स्थान को अपने आधीन कर लिया है ॥ ५५ ॥ यहाँ तक कि इन्द्र, अग्नि, यम, वायु, कुवेर, चन्द्रमा वरुण

महोग्रः सुरसूदनः ॥५३॥ तस्य पुत्रोऽति विख्यातो मुरुनामा महासुरः ॥ तस्य चन्द्रवती नाम नगरी च गरीयसी ॥ ५४ ॥ तस्यां वसन् स दुष्टात्मा विश्वं निर्जित्य वीर्यवान् ॥ सुरान् स्ववशमानिन्ये निराकृत्य त्रिविष्टपात् ॥ ५५ ॥ इन्द्राग्नियमवाय्वीश सोम निर्ऋतिपाशि· नाश्च ॥ पदेषु स्वयमेवासीत्सूर्यो भूत्वा तपत्यपि ॥ ५६ ॥ पर्जन्य स्वयमेवासीदजेयः सर्व दैवतैः ॥ जहि तं दानवं विष्णो सुराणां जयमावह ॥ ५७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपा·

ब्रह्मा इनके स्थानपर अपनेही वैठा है और सूर्य होकर अपनेही प्रकाश करता है ॥ ५६ ॥ अपनेही मेघ होकर भी वैठा है जो देवताओं से जीतने योग्य नहीं है हे विष्णुभगवान् ! तुम उस दानव को मारकर देवताओं को दुःख से छुड़ाओ ॥ ५७ ॥ इन्द्रके वचन को सुनकर विष्णुभगवान् को वड़ा क्रोध आया और वोले कि हे इन्द्र

ए. मा. ७

मैं उस महाबली शत्रु को मारूँगा ॥ ५८ ॥ हे महाबली देवताओ ! तुम एकत्र होकर चन्द्रावती पुरी को चलो जब भगवानने यह कहा तब सब देवता एकट्ठे होकर भगवान को आगे करके चन्द्रावती को चले ॥५९॥ वहाँ पहुँच कर देवताओं ने उस दैत्य राज को असंख्य हजारदैत्यों के साथ अस्त्र शस्त्र को धारण किये और गर्जते

विष्टो जनार्दनः ॥ उवाच शत्रुं देवेन्द्र हनिष्ये तं महाबलम् ॥ ५८ ॥ प्रयान्तु सहिताः सर्वे चन्द्रवत्यां महाबलाः ॥ इत्युक्ताः प्रययुः सर्वे पुरस्कृत्य हरिं सुराः ॥ ५९ ॥ दृष्टो देवस्तु दैत्येन्द्रो गर्जमानस्तु दानवैः ॥ असंख्यात सहस्रैस्तु दिव्य प्रहरणायुधैः ॥ ६० ॥ हन्यमान- स्तदा देवा असुरैर्बाहुशालिभिः ॥ संग्रामं तैः समुत्सृज्य पलायन्ते दिशो दश ॥ ६१ ॥ ततो दृष्ट्वा हृषीकेशं संग्रामे समुपस्थितम् ॥ अन्वधावन्नभिक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ॥ ६२ ॥

हुए देखा ॥ ६० ॥ जब दैत्य बड़ी बड़ी भुजावाले देवताओं को मारने लगे तब देवगण युद्ध स्थल को छोड़कर दशो दिशाओं की ओर भागने लगे ॥ ६१ ॥ फिर भगवान को संग्राम में खड़े देखकर वे दैत्य अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों को हाथ में लेकर क्रोधसे उनके ऊपर दौड़ने लगे ॥ ६२ ॥ उन दैत्यों को दौड़ता हुआ देखकर

टी. ७

शंख चक्र गदाधारी भगवान् सर्प के विष के समान तीक्ष्ण बाणों से उन दैत्यों के शरीर को घायल कर दिये ॥ ६३ ॥ जब भगवान के बाणों से अनेकों राक्षस नष्ट होगये तो फिर वह मुर नामका दैत्य अकेला ही खड़ा होकर विष्णु भगवान् से बारम्बार युद्ध करने लगा ॥ ६४ ॥ तब विष्णुभगवान ने उस दैत्य पर जिस

अथ तान् प्रद्रुतान् दृष्ट्वा शंख चक्र गदाधरः ॥ विव्याध सर्वगात्रेषु शैराशीविषोपमैः ॥६३॥
तेनाहतास्ते शतशो दानवा निधनं गताः॥ एकाङ्गो दानवः स्थित्वा युध्यमानो मुहुर्मुहुः॥६४॥
तस्योपरि हृषीकेशो यद्यदायुधमुत्सृजत ॥ पुष्पवत्तत् समभ्येति कुण्ठितं तस्य तेजसा ॥६५॥
शस्त्रास्त्रैर्बिध्यमानोऽपि यदा जेतुं न शक्यते ॥ युयोध च तदाक्रुद्धो बाहुभिः परिघोपमैः
॥ ६६ ॥ बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ तेन श्रान्तः स भगवान् गतो बदरिका-

अस्त्र को फेंका वही उसके तेजसे कुण्ठित होकर फूल के समान लगने लगा ॥ ६५ ॥ जब अस्त्र शस्त्रों से वह दानव नहीं घायल हुआ तब वह भी क्रोध करके परिघ के समान अपनी भुजाओं से युद्ध करने लगे ॥६६॥ फिर उस दैत्यने दिव्य हजार वर्ष तक ऐसा बाहु युद्ध किया कि विष्णु भगवान थकित होकर बदरिकाश्रम को

चले गये ॥ ६७ ॥ और वहाँ हैमवती नामकी एक बड़ी मनोहर गुफा थी उसमें वे जगत के स्वामी बड़े योगी विष्णु भगवान शयन करने के लिये उसमें घुस गये ॥ ६८ ॥ हे अर्जुन ! वह गुफा बारह योजन लम्बी थी श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि मैं भयमानकर उस गुफा में सो गया इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ हे अर्जुन !

श्रमम् ॥ ६७ ॥ तत्र हैमवती नाम्नी गुहा परमशोभना ॥ तां प्राविशन्महायोगा शयनार्थं जगत्पतिः ॥ ६८ ॥ योजनद्वादशायामा एकद्वारा धनंजय ॥ अहं तत्र प्रसुप्तोऽस्मि भय-भीतो न संशयः ॥ ६९ ॥ महायुद्धेन तेनैव श्रान्तोऽहं पाण्डुनन्दन ॥ दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविवेश स तां गुहाम् ॥ ७० ॥ प्रसुप्तं मां ततो दृष्ट्वा चिन्तयद्दानवो हृदि ॥ हरिमेनं हनिष्येहं दानवानां क्षयावहम् ॥७१॥ एवं सुदुर्मतेस्तस्य व्यवसायं व्ययस्यच ॥ समुद्भूता

जब मैं उससे घोर युद्ध करके थक गया तो वह दैत्य भी मेरे पीछे लगा हुआ उसी गुफामें घुस आया ॥७०॥ और मुझे वहाँ सोता हुआ दैत्य अपने हृदय में चिन्ता करने लगा कि मैं दैत्यों को नाश करनेवाले इन विष्णु भगवान को मारूँगा ॥ ७१ ॥ उस दुष्ट बुद्धि दानव ने ज्योंहीं इस उद्योग का निश्चय किया उसी समय मेरे

शरीरसे एक अत्यन्त तेजवाली कन्या उत्पन्न हुई ॥७२॥ और दिव्य अस्त्र शस्त्रको धारण किये वह देवी युद्ध करने के लिये खड़ी होगई, हे पाण्डु नन्दन ! तब दैत्यों का राजा मुर ने उसे देखा ॥ ७३ ॥ फिर जब उस कन्याने दैत्य से युद्ध करने के लिये कहा तो वह उससे युद्ध करने लगा, परन्तु उस कन्या को बराबर युद्ध करती देख

ममाङ्गेभ्यः कन्यकाच महाप्रभो ॥ ७२ ॥ दिव्य प्रहरणा देवी युद्धाय समुपस्थिता ॥ ईक्षिता दानवेन्द्रेण मुरुणा पाण्डु नन्दन ॥ ७३ ॥ युद्धं समीहितं तेन स्त्रिया तत्र प्रयाचितम् ॥ तेनायुध्यत सा नित्यं तां दृष्ट्वा विस्मयं गतः ॥ ७४ ॥ केनेयं निर्मिता रौद्रा अत्युग्रा शनिपातिनी ॥ इत्युक्त्वादानवेन्द्रोऽसौ युयुधे कन्यया तया ॥ ७५ ॥ ततस्तया महादेव्या त्वरया दानवोबलि ॥ छित्वा सर्वाणि शस्त्राणि क्षणेन विरथः कृतः ॥ ७६ ॥

उस दानव को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ॥ ७४ ॥ इस भयावनी और बड़ी उग्र वज्रपात करनेवाली स्त्री को किसने निर्माण कया है ऐसा कहकर वह दानवेन्द्र फिर भी उस कन्या के साथ युद्धकरने लगा ॥ ७५ ॥ उस महादेवी ने दानव के सब अस्त्रशस्त्रों को काटकर शीघ्रही उस दुष्ट महाबली को रथ से नीचे गिरा दिया ॥७६॥

ए. तब वह दैत्य बड़े बलसे उठकर बाहु युद्ध करने के लिये दौड़ा, परन्तु उस देवी ने दानव की छाती में ऐसा
मा. थप्पड़ मारा कि फिर वह पृथ्वी पर गिर गया ॥ ७७ ॥ फिर वह दैत्य कन्या को मारने की इच्छा से उठकर भा
दौड़ा तो देवी ने उस असुर को फिर से आया हुआ देख क्रोध पूर्वक उस राक्षस का सिर काट दिया ॥७८॥ टी.

६ बाहु प्रहरणोपेतो धावमानो महाबलात् ॥ तलेनाहत्य हृदये तया देव्या निपातितः ॥ ७७ ॥
पुनरुत्थाय सोऽधावत्कन्याहननकाङ्क्षया ॥ दानवं पुनरायान्तं रोषेणाहत्य तच्छिरः ॥७८॥
क्षणान्निपातयामास भूमौ तं च महासुरम् ॥ दैत्यः कृत्तशिरा सोऽथ ययौ वैवस्वता-
लयम् ॥ ७९ ॥ शेषा भयार्दिता दीनाः पातालं विविशुर्द्विषः ॥ ततः समुत्थितो देवः
पुरो दृष्ट्वासुरं हतम् ॥ ८० ॥ कन्यां पुरः स्थितां चापि कृताञ्जलिपुटां नताम् ॥

और क्षण भर में उस महादानव को भूमि पर गिरा दिया फिर वह असुर मर कर यमलोक को गया ॥ ७९ ॥ ६
शेष दैत्य शत्रु भी भयके मारे मनमें हार मान कर पाताल को चले गये तब विष्णुभगवान उठे और अपने
सामने उस असुर को मरा देखा ॥ ८० ॥ और नम्रता से हाथ जोड़े खड़ी हुई उस कन्या को देख विष्णु

भगवान के कमलरूपी नयन आश्चर्य से खिल गये और वह उस कन्या से बोले ॥ ८१ ॥ कि इस दुष्ट बुद्धि दानव को संग्राम में किसने मारा है कि जिस दैत्य ने देवता, गंधर्व, इन्द्र, और उनचास मरुद्गणों को ॥८२॥ और नागों सहित सब लोकपालों को बिना परिश्रम जीत लिया था और जिसने मुझे भी जीत लिया था

विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रोवाच जगतां पतिः ॥ ८१ ॥ केनायं निहतः संख्ये दानवो दुष्टमानसः ॥ येन देवाः सगन्धर्वाः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः ॥ ८२ ॥ सनागाः सह लोकेशाः लीलयैव विनिर्जिताः ॥ येनाहं निर्जितो भीतः शान्तः सुप्तो गुहामिमाम् ॥ ८३ ॥ केन कारुण्यभावेन रक्षितोऽहं पलायितः ॥ कन्योवाच ॥ मया विनिहतो दैत्य स्त्वदंशोद्भू· तया प्रभो ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा सुप्तं हरे त्वां तु दैत्यो हंतुं समुद्यतः ॥ त्रैलोक्य कण्टक स्येत्थं

मैं भी उसके भय से भाग कर इस गुफा में आकर सोया था ॥ ८३ ॥ फिर किसने दया करके मुझ भागे हुए की रक्षा किया है ॥ कन्या बोली ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे अंश से उत्पन्न होकर मैंने ही इस असुर को मारा है ॥ ८४ ॥ हे भगवन् ! तुम्हें शयन किये और दैत्य को तुमारे ऊपर मारते हुए देख इस त्रिलोकी के

कण्टक का यह उद्योग जान ॥ ८५ ॥ मैंने इस दुष्ट दानव को मार देवताओं को निर्भय किया सब शत्रुओं को भय देनेवाली मैं आपकी महाशक्ति हूँ ॥ ८६ ॥ तीनों लोक के कल्याण के लिये मैंने इस दैत्य को मारा है क्योंकि सब लोक में इसका भय था । हे भगवन् ! इस दानव को मरा देख तुम्हें आश्चर्य हुआ सो

व्यवसायं प्रबुध्य च ॥ ८५ ॥ हतो मया दुरात्माऽसौ देवता निर्भयाः कृताः ॥ तवैवाहं महाशक्तिः सर्वशत्रुभयंकरी ॥८६॥ त्रैलोक्य रक्षणार्थाय हतो लोकभयंकरः ॥ निहतं दानवं दृष्ट्वा किमाश्चर्यं वद प्रभो ॥८७॥ भगवानुवाच ॥ निहते दानवेन्द्रे स्मिन् सन्तुष्टोहं त्वयानघे ॥ तुष्टापुष्टाश्चैवदेवाश्चानन्द समजायत ॥८८॥ आनन्दास्त्रिषु लोकेषु देवानां य स्त्वयाकृतः ॥ प्रसन्नोऽस्म्यनघे तुभ्यं वरं वरय सुव्रते ॥ ८९ ॥ ददामि तन्न सन्देहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥

कहो ॥ ८७ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ हे अनघे ! इस दानव के मारने से मैं तुझसे बड़ा प्रसन्न हूँ और देवता भी बड़े प्रसन्न हुए और उनके शरीर में प्राण आया और आनन्द हो गया ॥ ८८ ॥ और तीनों लोक में तूने देवताओं के लिये आनन्द कर दिये हे अनघे ! हेसुव्रते ! इसलिये मैं प्रसन्न हूँ तू वर माँग ॥ ८९ ॥

मैं तुझे वह वर दूंगा जो कि देवताओं को दुर्लभ है ॥ कन्या बोली ॥ यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे बर देना चाहते हो तो ॥ ६० ॥ वह वर दो कि जिसके प्रभाव से व्रत करने वाले मनुष्यों को महापाप से तार दूं। निराहार व्रत का जो पुण्य है उसका आधा पुण्य रात्रि में भोजन से होता है ॥ ६१ ॥ और

कन्योवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम ॥६०॥ तारयेयं महापापादुपवासपरं नरम् ॥ उपवासस्य यत्पुण्यं तस्यार्द्धं नक्त भोजने ॥६१॥ तदर्द्धंच भवेत्तस्य एकभक्तं करोति यः ॥ यः करोति व्रतं भक्त्या दिने मम जितेन्द्रियः ॥६२॥ सगत्वा वैष्णवं स्थानं कल्पकोटि शतानिच ॥ भुंजानो विविधान् भोगानुपवासी जितेन्द्रियः ॥ ६३ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन भवत्वेष वरो मम ॥ उपवासं च नक्तंच एकभक्तं करोति यः ॥ ६४ ॥ तस्य धर्मंच

जितेन्द्री होकर भक्ति से मेरा व्रत कर दिनमें एक बार भोजन कर लेता है वह रात्रि भोजन के पुण्य से आधे फल का भागी होता है ॥ ६२ ॥ और जो जितेन्द्रिय होकर मेरा उपवास करता है वह मनुष्य विष्णु लोक में जाकर सैकड़ों करोड़ों कल्पतक अनेक प्रकार के सुख भोग को भोगता है ॥ ६३ ॥ हे भगवन् !

12

आपकी कृपा से मुझे यह वरदान मिले कि जो मनुष्य उपवास करे अथवा रात में भोजन करे या दिनमें भा.
ए. एक बार भोजन करे ॥ ६४ ॥ उसे हे भगवन् ! धर्म धन और मोक्ष को आप देवें ॥ भगवान् बोले ॥ हे टी.
मा. कल्याणि ! जो तू कहती है वह सब तेरे भक्तों को मिलेगा ॥ ६५ ॥ जो प्राणी मेरे और तेरे भक्त होंगे वे

११ वित्तंच मोक्षं देहि जनार्दन॥ "श्रीभगवानुवाच" यत्त्वं वदसि कल्याणी तत्सर्वं च भविष्यति
॥ ६५ ॥ मम भक्ताश्च ये लोकास्तव भक्ताश्च ये नराः ॥ त्रिषु लोकेषु विख्याता
प्राप्स्यन्ति मम सन्निधिम् ॥ ६६ ॥ एकादश्यां समुत्पन्ना मम शक्ति परा यतः ॥ तत
एकादशीत्येवं तव नाम भविष्यति ॥६७॥ दग्ध्वा पापानि सर्वाणि यास्यामि पदमव्ययम्॥
तृतीया चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी ॥ ६८ ॥ एकादशी विशेषेण तिथयो मे

तीनों लोक में प्रसिद्ध होंगे और मरने उपरान्त मेरे लोक में वास करैंगे ॥ ६६ ॥ मेरी भक्ति करके तू एकादशी ११
के दिन मेरी महाशक्ति उत्पन्न हुई है इसलिये तेरा नाम एकादशी होगा ॥६७॥ और जो तेरा व्रत करेगा उसके
सब पापों को भस्म करके उसको मैं मोक्ष पद दूंगा और तृतीया, अष्टमीं, नौमी, और चतुर्दशी ॥ ६८ ॥

ये तिथियाँ मुझे बड़ी प्यारी हैं परन्तु एकादशी सबसे अधिक प्रिय है, इसका पुण्य सब तीर्थों से अधिक और इसका फल सब दानों से अधिक है ॥ ९९ ॥ और सब व्रतों से इसके व्रत पुण्य अधिक वह मैं तुम से सत्य सत्य कहता हूँ ऐसा उस कन्या को वर देकर विष्णुभगवान वहां पर अन्तर्धान होगये ॥ १०० ॥ उस समय

महाप्रियाः ॥ सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सर्वदानाधिकं फलम् ॥ ९९ ॥ सर्वव्रताधिकं चैव सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ एवं दत्वा वरं तस्यास्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०० ॥ हृष्टा तुष्टा तु सा जाता तदा एकादशी तिथिः ॥ इमामेकादशीं पार्थ करिष्यन्ति नरास्तु ये ॥ १०१ ॥ तेषां शत्रुं हनिष्यामि दास्यामि परमां गतिम् ॥ अन्येपि ये करिष्यन्ति एकादश्या महाव्रतम् ॥ १०२ ॥ हरामि तेषां विघ्नाश्च सर्वं सिद्धिं ददामिच ॥ एवमुक्त्वा समुत्पत्ति-

एकादशी बड़ी प्रसन्न हुई । हे अर्जुन जो मनुष्य इस एकादशी व्रतको करेंगे ॥ १०१ ॥ मैं उनके शत्रुओं का नाश करूँगा और उनको परम पद दूंगा । और भी जो एकादशी के उत्तम व्रत को करेंगे १०२॥ मैं उनके अनेक विघ्नों को नष्ट कर सब प्रकार की सिद्धि दूंगा॥ हे अर्जुन! इस प्रकार मैंने तुमसे एकादशी की उत्पत्ति

13

कही है ॥ १०३ ॥ यह एकादशी नित्य है अर्थात् इसका पुण्य अक्षय है और यह सब पापोंको नाशकरनेवाली है यह एकही महापवित्र और सब पापों को शमन करने वाली ॥ १०४ ॥ और यह एकादशी सब लोकों में सब तरह की सिद्धि को देनेके लिये प्रकाश भई है। यह चाहे शुक्ल पक्ष की हो अथवा कृष्ण पक्षकी हो

रेकादश्याः पृथासुत ॥ १०३ ॥ इयमेकादशी नित्या सर्वपापक्षयंकरी ॥ एकैवच महापुण्या सर्वपाप निषूदनी॥१०४॥उदिता सर्वलोकेषु सर्वसिद्धकरी तिथिः॥ शुक्ला वाप्यथवा कृष्णा इति भेदं न कारयेत् ॥ १०५ ॥ कर्तव्ये तु उभेपार्थ न त्याज्या द्वादशी तिथिः॥ अन्तरं नैव कर्तव्यं समस्तैर्व्रतकारिभिः ॥ १०६ ॥ तिथिः समान फलदापक्षयोरुभयोस्तथा धेनुः शुक्ला तथा कृष्णा उभयोः सदृशं पयः ॥ १०७ ॥ ये कुर्वन्ति नराः पार्थ भेद बुद्धि

इसमें कुछ भेद नहीं करना चाहिये ॥ १०५ ॥ हे अर्जुन ! दोनों पक्ष की एकादशी की अर्थात् प्रातःकाल कुछ घड़ी एकादशी को अवश्य उपवास करे इसमें व्रत करने वाले को भेद नहीं करना चाहिये ॥ १०६ ॥ ये दोनों पक्षकी तिथियाँ फल देने में समान हैं जैसे गौ काली हों चाहे उज्वल हो दूध दोनों का एक समान होता है

॥ १०७ ॥ हे पार्थ ! जो मनुष्य इसके व्रतको भेद त्याग करके करते हैं वे परमपद को पाते हैं जहाँ विष्णु भगवान वास करते हैं वहाँ एकादशी व्रत करनेवाला भी निवास करता है ॥ १०८ ॥ इस संसार में विष्णु भगवान की भक्ति करने वालों का जीवन धन्य है । और जो कोई एकादशी के माहात्म्य को सदा पढ़ता है

विवर्जिताः ॥ ते यान्ति परमं स्थानं यत्रास्ते गरुड़ध्वजः ॥ १०८ ॥ धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुभक्ति परायणाः ॥ एकादश्यास्तु माहात्म्यं सर्वकालं तु यः पठेत् ॥ १०९ ॥ अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तदाप्नोति न संशयः ॥ यः शृणोति दिवा रात्रौ नरो विष्णुपरायणः ॥ ११० ॥ तद्भक्त मुखनिष्पन्नां कथां विष्णोः सुमङ्गलाम् ॥ कल्पकोटि समायुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ १११ ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं पादमेकं शृणोति यः ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं नश्यते नात्र

॥ १०९ ॥ उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ और जो वैष्णव विष्णुका भक्त इसके माहात्म्य को दिन रात सुनता है ॥ ११० ॥ और जो वैष्णव के मुख से कही हुई मङ्गल को देने वाली विष्णुभगवान की प्रिय कथाको सुनता है वह करोड़ों कल्पतक विष्णु लोक में सुख भोगता है ॥ १११ ॥

14

और जो कोई एकादशी के मोहात्म्य का चतुर्थांश भी सुनता है तो उसका ब्रह्म हत्यादिक घोर पाप दग्ध हो जाता है इसमें संशय नहीं करना चाहिये ॥ ११२ ॥ हे धनंजय ! विष्णु धर्मके समान कोई सनातन धर्म नहीं है, और गीताके समान कोई पवित्र ग्रन्थ नहीं है और विष्णुभगवान को प्रसन्न करने के लिये एकादशी के

संशयः ॥ ११२ ॥ विष्णुधर्मः समोनास्ति गीतार्थेन धनञ्जय ॥ एकादशी समं नास्ति व्रतं केशव तोषणम् ॥११३॥ इति श्रीकृष्णार्जुन संवादे मार्गशीर्ष कृष्णैकादशीमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥

अथ मार्गशीर्षशुक्लैकादशीकथा॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पृच्छामि देव देवेश संशयोऽस्ति महान्मम ॥ लोकानां तु हितार्थाय पापानां संक्षयायच॥१॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे किं नामै-

समान कोई व्रत नहीं मानना चाहिये अर्थात् एकादशी नक्त एक भुक्त स्वरूप विष्णुके प्रिय व्रतों में श्रेष्ठ व्रत है इसके समान फल देनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ११३॥ इति मार्ग कृष्णैकादशी कथा भाषाटीका सम्पूर्ण

अथ मार्गशीर्ष शुक्लैकादशीकथा ॥ श्रीकृष्ण भगवान् के मुख से एकादशी के महात्म्य को सुनकर युधिष्ठिर बोले हे देव ! हे देवताओंकेप्रभु ! मुझे एक महान् सन्देह हुआ है इसलिये मैं संसार के उपकार के लिये

और पाप समूह को नाश करने के लिये पूछता हूँ ॥ १ ॥ अगहन के शुक्ल पक्ष की एकादशी का क्या नाम है उसको करने की क्या विधि है और उस दिन में किस देवता का पूजन होता है ॥ २ ॥ हेनाथ ! यह मुझसे आप विस्तारपूर्वक ठीक ठीक कहिये ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजा ! तुमने यह बहुत उत्तम पूछा

कादशी भवेत् ॥ कीदृशश्च विधिस्तस्याः कोदेवस्तत्र पूज्यते ॥२॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन्वि-
स्तरेण यथा तथम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् साधु ते विमलामतिः ॥३॥
कथयिष्यामि राजेन्द्र हरिवासरमुत्तमम् ॥ उत्पन्ना साऽसिते पक्षे तिथिर्हि मम वल्लभा ॥४॥
मार्गशीर्षे समुत्पन्ना मम देहान्नराधिप ॥ मुरस्य च वधार्थाय प्रख्याता मम वल्लभा ॥ ५ ॥

तुमारी बुद्धि वड़ी निर्मल है ॥ ३ ॥ हेराजाओं में श्रेष्ठ ! मैं इस उत्तम एकादशी के माहात्म्य को कहूँगा । वह शुक्लपक्षकी एकादशी मुझे अत्यन्त प्यारी है ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह अगहन शुक्लपक्ष में मेरे ही अंग से मुरनाम राक्षस के नाश के लिये एकादशी उत्पन्न हुई है इससे वह मेरी प्रिया के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ हे राजाओं में श्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे सामने कह चुका हूँ कि चराचर तीनों लोकों में पहिले वह एकादशी हुई

ए. मा. १४

है ॥ ६ ॥ कि जो अगहन शुक्ला में हमारी देह से इसकी उत्पत्ति हुई है मैं अब उसी अगहन शुक्ल एकादशी की कथा कहूँगा ॥ ७ ॥ यह एकादशी मोक्षदा के नाम से विख्यात हुई है, और संपूर्ण अशुभ को नाश करनेवाली है, अगहनशुक्ला एकादशी के दिन बड़ी श्रद्धा से दामोदर भगवान् की पूजा ॥ ८ ॥ गन्ध,

कथिता सा मयाचैव त्वदग्रे राजसत्तमः ॥ पूर्वमेकादशी राजंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ६ ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे चोत्पत्तिरिति नामतः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षे सितां तथा ॥ ७ ॥ मोक्षा नाम्नीति विख्यातां सर्वपापहरां पराम् ॥ देवं दामोदरं तस्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ गन्धपुष्पादिभिश्चैव गीतनृत्यैः सुमङ्गलैः ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ६ ॥ यस्याः श्रवण मात्रेण वाजपेय फलं लभेत् ॥ अधोगतिं गता

पुष्प नैवेद्य आदि उपचारों से करै नृत्य करावे मंगलगीत गावे हेराजाधिराज ! मैं तुमसे अब इसके विषय में पुराण की सुन्दर कथा कहता हूँ ॥ ६ ॥ जिसको सुनने मात्र से वाजपेय नाम यज्ञ करने का पुण्य होता है। और जिन पिता, माता, पुत्र आदि को कर्म के वश अधोगति मिली है ॥ १० ॥ वेभी इसके पुण्य के प्रभाव

भा. टी. १४

से नरक से निकल कर स्वर्ग में वास करते हैं इसमें संशय नहीं है इस वास्ते हे राजा ! इस एकादशी के माहात्म्य को सुनो ॥ ११ ॥ पहिले समय में रमणीय गोकुल नगर में एक राजा रहता था । उसका नाम वैखानस था वह राजर्षि अपनी प्रजा को पुत्रके समान पालन करता था ॥ १२ ॥ और उसके नगर में चारों

ये वै पितृमातृसुतादयः ॥ १० ॥ अस्याः पुण्य प्रभावेण स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्महिमानं शृणुष्वह ॥ ११ ॥ पुरा वै नगरे रम्ये गोकुले न्यवसन्नृपः ॥ वैखानसेति राजर्षिः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥ १२ ॥ द्विजाश्च न्यवसंस्तत्र चतुर्वेद परायणः एवं स राज्यं कुर्वाणो रात्रौ तु स्वप्न मध्यतः ॥ १३ ॥ ददर्श जनकं स्वंतु अधोयोनि गतं नृपः ॥ एवं दृष्ट्वा तु तं तत्र विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १४ ॥ कथयामास वृत्तान्तं द्विजाग्रे

वेद को जानने वाले ब्राह्मण रहते थे। इस प्रकार न्याय पूर्वक राज्य करते हुए एक दिन रात को राजर्षि ने स्वप्न में ॥ १२ ॥ अपने पिता को नरक में गिरा हुआ देखा, इस प्रकार अधोगति में पिताको देखकर राजा के मनमें बड़ा दुःख हुआ ॥ १४ ॥ और प्रातः काल सभा में स्वप्न के बृत्तान्त को ब्राह्मणों के सामने

16

कहा। राजर्षि ने कहा ॥ हे ब्राह्मणों! स्वप्न में मैंने अपने पिता को नरक में पड़ा देखा है ॥ १५ ॥ और पिता ने मुझसे कहा है कि हे पुत्र! मुझे इस नरक से निकालो। सो मैंने अपने पिता को ऐसा कहते हुए आप देखा है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो! उस समय से मुझे सुख नहीं है। और मुझे यह अपना बड़ा राज्य

स्वप्न संभवम् ॥ राजोवाच ॥ मयातु स्वपिता दृष्टो नरके पतितो द्विजाः ॥ १५ ॥ तारय-
स्वेति मां तात अधोयोनिगतं सुत ॥ इति ब्रुवाणः स तदा मया दृष्टः पिता स्वयम् ॥ १६ ॥
तदा प्रभृति भो विप्रा नाहं शर्म लभाम्यहो ॥ एतद्राज्यं मम महदसुखायाधुना मम ॥ १७ ॥
अश्वा गजा रथाश्चैव न मां रोचन्ति सर्वथा ॥ न कोशोऽपि सुखायालं न किञ्चिदसुखं मम
॥ १८ ॥ न दारा न सुता मह्यं रोचन्ते द्विजसत्तमाः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि शरीरं

भी अच्छा नहीं लगता ॥ १७ ॥ और मुझे रथ, हाथी, घोड़े बिलकुल नहीं सुहाते हैं। खजाना भी अच्छा नहीं लगता और तो क्या मुझे कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती है ॥ १८ ॥ और हे ब्राह्मणों! पुत्र और स्त्रियाँ भी मुझे प्रिय नहीं मालूम होते हैं। मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ मेरा तो शरीर जलता है ॥ १९ ॥ सो हे ब्राह्मणों! दान व्रत, तप और

जिसको करने से हमारे पिताको परमगति मिले वही मुझसे कहो ॥ २० ॥ इस संसार में उस बलवान पुत्रके जीनेसे क्या होता है कि जिसका पिता नरकमें पड़ा हो उसका तो जन्मही वृथा है ॥ २१ ॥ ब्राह्मणों ने कहा हे राजा ! यहाँ से समीप ही पर्वत मुनिका आश्रम है । हे राजसिंह ! वहाँ तुम जाओ वह मुनि तीनों कालकी

मे तु दह्यते ॥ १६ ॥ दानं व्रतं तपो योगो येनैव मम पूर्वजाः ॥ मोक्षमायान्ति विप्रेन्द्रास्तदेव कथयंतु मे ॥ २० ॥ किं तेन जीविता लोके सुपुत्रेण बलीयसा ॥ पिता तु यस्य नरके तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ २१ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ पर्वतस्य मुनेरत्र ह्याश्रमो निकटे नृप ॥ गम्यतां राजशार्दूल भूतं भव्यं विजानतः ॥ २२ ॥ तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं विषण्णो राजसत्तमः ॥ जगाम तत्र यत्रासावाश्रमेपर्वतोमुनिः ॥ २३ ॥

बातों को जानते हैं ॥२२॥ उनका बचन सुनकर राजा व्याकुलतासे वहाँ गया कि जिस आश्रम में पर्वत मुनि रहते थे ॥ २३ ॥ और संग में शान्त स्वरूप ब्राह्मणों को तथा प्रजा आदिको भी ले गया था। वह पर्वत मुनि का आश्रम बहुत बड़ा था, और बहुतसे मुनि उसमें वास करते थे ॥ २४ ॥ उस आश्रम में पर्वत मुनि ऋक्,

17

साम,यजु,और अथर्वण इन चारों वेदों को जानने वाले ब्राह्मणों के सहित दूसरे ब्रह्माके समान बैठे थे ॥२५॥ राजाने मुनिको देखकर प्रणाम किया मुनिवर ने सात अङ्गोंसे युक्त उस राजा से राज्य की कुशल पूछी । और राज्यकी स्वाधीनता तथा सुखको पूछा॥२६॥२७॥राजा बोला ॥ आपकी दयासे हमारे राज्य के सब अङ्गो में

ब्राह्मणैर्वेष्टितः शान्तैः प्रजाभिश्च समंततः ॥ आश्रमो विपुलस्तस्य मुनिभिः सन्निषेवितः
॥ २४ ॥ ऋग्वेदिभिः याजुषैश्च सामाथर्वण कोविदैः ॥ वेष्टितो मुनिभिस्तत्र द्वितीय इव
पद्मजः ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा वैखानसस्तदा ॥ जगाम चावनिं मूर्ध्ना
दण्डवत्प्रणनामच ॥ २६ ॥ पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वङ्गेष्वसौ मुनिः ॥ राज्ये निष्कण्ट·
कत्वं च राजसौख्य समन्वितम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ तव प्रसादात्कुशलंमंगेषु मम सप्तसु
विभवेष्वनुकूलेषु कश्चिद्विघ्न उपस्थितः ॥ २८ ॥ मया हि स्वपिता दृष्टो नरके पतितः प्रभो

कुशल है पर यह सब ऐश्वर्य होने परभी एक विघ्न आ पड़ा है ॥२८॥ हे स्वामी ! मैंने स्वप्न में अपने पिता को नरकमें पड़ा देखाहै और उन्होंने स्वप्नमें उस नरकवाससे दुःखी होकर मुझसे कहा है कि हे पुत्र इससेमेरा

उद्धार करो सो हे भगवन्! उनके तरने का उपाय मुझे बताइये ॥ २९ ॥ हे मुनीश्वर! इस अपने संशय को आपसे पूछने के वास्ते आया हूँ। इस प्रकार राजाके वचन को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ पर्वत मुनिने ॥ ३० ॥ ध्यान से आँखें बन्दकर भूत और भविष्यत् को विचारने लगे, फिर दो घड़ी तक ध्यानकर उस श्रेष्ठ राजा से

तारयस्वेति मामाह स्वप्ने तेनैव दुःखितः ॥ तस्य संतरणोपायं भगवन्नुपदिश्यताम् ॥ २९ ॥ एवं मे संशयं ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वामहमागतः ॥ एवं श्रुत्वा नृपवचः पर्वतो मुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ ध्यानस्तिमित नेत्रोऽसौ भूतं भव्यं व्यचिन्तयत् ॥ मुहूर्तमेकं ध्यात्वा च प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ ३१ ॥ मुनिरुवाच ॥ जानेऽहं तव राजेन्द्र पितुः पापं विकर्मणः ॥ पूर्वं जन्मनि ते पित्रा स्वपत्नी द्वय मध्यतः ॥ ३२ ॥ कामासक्तेन चैकस्यामृतुभंगः कृतः स्त्रियः। त्राहि

॥३१॥ मुनिने कहा हे राजेन्द्र! मैंने तुम्हारे कुकर्मी पिताके पापको जानलिया पूर्व जन्म में तुम्हारे पिताने दो स्त्रियोंमें से ॥३२॥ एकपर कामासक्त हो दूसरी स्त्री पति की कामना से यह कहती ही रहगई कि हे राजा! हमारी रक्षा करो परन्तु वह दूसरी के कारण उसके पास नहीं गया ॥३३॥ उसी पाप कर्मके बदले यह बराबर नरकमें वास

18.

करता है ॥ राजाने कहा ॥ हे मुनिनाथ ! किस व्रत अथवा दान से उनको गति हो सकती है ॥ ३४ ॥ और मैं आपसे यह पूछता हूँ कि इस पाप संयुक्त नरक से कैसे उनका उद्धार हो सो उपाय मुझसे कहिये ॥ मुनि बोले ! कि अगहन शुक्ल पक्षकी मोक्षदानाम एकादशी के दिन ॥३५॥ तुम सब लोग उसका व्रत करो और

देहीति जल्पन्त्याः अन्यस्याश्च नराधिप ॥ ३३ ॥ कर्मणा तेन सततं नरके पतिता ह्ययम् ॥ राजोवाच ॥ केन व्रतेन दानेन मोक्षस्तस्य भवेन्मुने ॥३४॥ निरयात् पापसंयुक्ता तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ मुनिरुवाच ॥ मार्गशीर्षे सितपक्षे मोक्षानाम्नी हरेस्तिथिः ॥ ३५ ॥ सर्वैस्तु तद्व्रतं कृत्वा पित्रे पुण्यं प्रदीयताम् ॥ तस्या पुण्य प्रभावेण मोक्षस्तस्य भविष्यति॥ ॥ ३६ ॥ मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा नृपः स्वगृहमागतः ॥ आग्रहायणकी शुक्ला प्राप्ता भरत सत्तम ॥ २७ ॥ अन्तः पुरचरैः सर्वैः पुत्रैर्दारैः तदानृपः ॥ व्रतं कृत्वा

वह पुण्यफल पिता को दो उस व्रत के पुण्य के प्रभाव से उसका उद्धार हो जायगा ॥ ३६ ॥ राजा मुनि के वचन को सुनकर अपने घरपर आया हे युधिष्ठिर ! जब अगहन की शुक्ल एकादशी आई ॥ ३७ ॥ तब स्त्री

पुत्र दासदासी सहित राजाने एकादशी का व्रत विधिपूर्वक करके उसका पुण्य अपने पिता को दिया ॥३८॥ उस पुण्य को देतेही आकाशसे पुष्पों की वर्षा होने लगी ॥ और उस पुण्य के प्रभाव से वैखानस राजा का पिता स्वर्ग को गया और देवता उसकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ स्वर्ग जाते समय वैखानस राजा के पिता

विधानेन पित्रे पुण्यं ददौ नृपः ॥ ३८ ॥ तस्मिन् दत्ते तदा पुण्ये पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥ वैखानसपिता तेन गतः स्वर्गं स्तुतौ गणौ ॥ ३९ ॥ राजानमन्तरिक्षेषु शुद्धा गिरमभाषत स्वस्त्यस्तु ते पुत्र सदेत्यथ स त्रिदिवंगतः ॥ ४० ॥ एवं यः कुरुते राजन् मोक्षामेकादशीमिमाम् ॥ तस्य पापक्षयं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात ॥ ४१ ॥ नातः परतरा काचिन्मोक्षदा विमला शुभा ॥ पुण्य संख्या तु तेषां वै न जानेहं तु यैः कृता ॥ ४२॥ पठनाच्छ्रवणाच्चास्या

ने आकाश मार्ग से स्पष्ट वचन से राजा से कहने लगा हे पुत्र ! तेरा सदा कल्याण हो यह कहता हुआ स्वर्ग को चला गया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार जो कोई मोक्षदा नाम एकादशी का व्रत करता है उसके पाप नाश हो जाते हैं और अन्तमें मोक्ष मिलता है ॥ ४१ ॥ इससे बढ़कर मोक्षको देनेवाली पवित्र और शुभ

दूसरी नहीं है जिन्होंने इसका व्रत किया है उनके पुण्यों की गणना नहीं जानता हूँ ॥ ४२ ॥ इस कथा को पढ़ने वा सुनने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है और यह एकादशी चिन्तामणि के समान है तथा स्वर्ग और मोक्ष को देने वाली है ॥ ४३ ॥ मार्गशुक्लैकादशी कथा समाप्तः ॥

वाजपेय फलं लभेत् ॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा स्वर्ग मोक्ष प्रदायिनी ॥ ४३ ॥ इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे मार्गशीर्षशुक्लैकादश्या मोक्षानाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ पौष कृष्णैकादशी कथा प्रारम्भः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पौषस्य कृष्ण पक्षे तु द्वादशी या भवेत्प्रभो ॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥ १ ॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण जनार्दन ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेह

अथ पौषकृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे स्वामी ! पौष कृष्णपक्ष की जो एकादशी होती है उसका क्या नाम है और क्या विधि है और इसमें किस देवता का पूजन होता है ॥ १ ॥ हे स्वामी ! हे जनार्दन ! मुझसे विस्तार पूर्वक कहो ॥ श्रीकृष्ण जी बोले ॥ हे युधिष्ठिर ! मैं तेरे स्नेह से कहता हूँ ॥ २ ॥

बहुत सी दक्षिणा वाले यज्ञों से भी मैं ऐसा प्रसन्न नहीं होता जैसा कि एकादशी के व्रत करने से मुझे निश्चय सन्तोष होता है ॥ ३ ॥ इस कारण सब प्रकार से इस एकादशी को उपवास करना चाहिये । हे राजा ! पौष कृष्णपक्ष में द्वादशी विद्धा जो एकादशी होती है ॥ ४ ॥ उसकी विधि और उसके माहात्म्य को सावधान

कारणात् ॥ २ ॥ यथा तुष्टिर्न मे राजन् क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥ यथा तुष्टिर्भवेन्मह्यमेकादश्या व्रतेन वै ॥ ३ ॥ तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन कर्तव्यो हरिवासरः ॥ पौषस्य कृष्ण पक्षे तु द्वादशी या भवेन्नृप ॥ ४ ॥ तस्या विधिश्च माहात्म्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ संवत्सरस्य या राजन्नेकादश्यो भवन्ति हि ॥ ५ ॥ तासामपि हि सर्वासां विकल्पं नैव कारयेत् ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे या सफला नाम नामतः ॥ ६ ॥ नारायणोधिदेवोस्याः पूजयेत्तं प्रयत्नतः ॥

होकर सुनो । हे युधिष्ठिर ! वर्ष भर की जितनी एकादशी होती हैं ॥ ५ ॥ उन सब में कुछ संकल्प विकल्प करना नहीं चाहिये । और पौष कृष्ण जो यह एकादशी है इसका नाम सफला है ॥६॥ उस पौष कृष्ण सफला एकादशी के दिन नारायण देव का पूजन बड़े प्रयत्न से करना चाहिये । हे राजन् ! पूर्व में कहे अनुसार विधि

20

से ही वैष्णव भक्तजनों को एकादशी का व्रत करना चाहिये ॥ ७ ॥ सर्पों में जैसे शेषनाग, और जैसे पक्षियों में गरुड़ यज्ञों में जैसे अश्वमेध यज्ञ, और नदियों में जैसी गंगा ॥ ८ ॥ देवताओं में जैसे विष्णु वर्णों में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते हैं वैसे ही व्रतों में एकादशी तिथि बहुत श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ हे युधिष्ठिर ! वे मनुष्य मुझे

पूर्वेण विधिना राजन् कर्तव्यैकादशी जनैः ॥७॥ नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुड़ो यथा ॥
यथाऽश्वमेधो यज्ञानां नदीनां जाह्नवी यथा ॥८॥ देवानाञ्च यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥
व्रतानाञ्च तथा राजन् प्रवरैकादशी तिथिः ॥ ९ ॥ ते जनाः भरतश्रेष्ठ मम पूज्याश्च सर्वशः
हरिवासर संसक्ता वर्तंते ये भृशं नृप ॥१०॥ सफला नाम या प्रोक्ता तस्याः पूजा विधिं शृणु
फलैर्मां पूजयेत्तत्र कालदेशोद्भवैःशुभैः ॥ ११ ॥ नारिकेलफलैः शुद्धैस्तथा चामलकादिभिः ॥

सब प्रकार से प्रिय हैं कि जो एकादशी का व्रत सदा भक्तिपूर्वक करते हैं ॥ १० ॥ अब जिस एकादशी का नाम सफला है उसकी पूजा की विधि सुनो । उस दिन काल के अनुसार देश में उत्पन्न हुए उत्तम फलों से मेरा पूजन करे ॥ ११ ॥ नारियल, आँवला, जम्बीर, अनार, पूंगीफल आदि उत्तम और श्रेष्ठ फल से मेरी

पूजा करना चाहिये इस प्रकार व्रत करने से बड़े उग्रता का फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ लवंग और अनेक प्रकार के जो आम्र (आम) आदि श्रेष्ठ फल हैं उनसे और धूप दीप आदि उपचारों से सब देवताओं के स्वामी नारायण देवकी पूजा करे ॥ १३ ॥ इस सफला एकादशी के दिन विशेष करके विष्णु के मन्दिर में

जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा पूगफलैरपि ॥ १२ ॥ लवङ्गैर्विविधैश्चान्यैस्तथा चाम्रफलादिभिः ॥ पूजयेद्देव देवेशं धूपैर्दीपैर्यथा क्रमम् ॥ १३ ॥ सफलायां दीपदानं विशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ रात्रौ जागरणं तत्र कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥ १४ ॥ यावदुन्मिषिते नेत्रे तावज्जागर्ति यो निशि ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १५ ॥ तत्समो नास्ति वै यज्ञस्तीर्थं तत्सदृशं नहि ॥ तत्समं न व्रतं किञ्चिदिह लोके नराधिप ॥ १६ ॥ पञ्चवर्ष सहस्राणि

दीपक जलाना और प्रयत्न पूर्वक रात्रि को जागरण करना कहा है उसको वैष्णव श्रद्धापूर्वक करे ॥१४॥ जब तक नेत्र खुले रहैं तब तक जो मनुष्य एकाग्र चित्त से रात को जागरण करता है उसके पुण्य और फल को सुनो ॥१५॥ उसके समान न तो कोई यज्ञ है न तीर्थ है और हे राजाओं में श्रेष्ठ न उसके बराबर इस संसार

ए. मा. में कोई व्रत है ॥ १६ ॥ पाँच हजार वर्ष तक तप करने का जितना फल है उतना फल सफला नाम एकादशी
की रात्रि को जागरण करने से प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हे राजों में सिंह ! अब सफला एकादशी का इतिहास भा.
सुनो । चंपावती नाम एक पुरी बड़ी प्रसिद्ध थी । उस नगरी का राजा माहिष्मत था ॥ १८ ॥ उस राजर्षि टी.

२०

तपस्तप्त्वा च यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सफला जागरेण वै ॥ १७ ॥ श्रूयतां राज-
शार्दूल सफलायाः कथानकम् ॥ चम्पावतीति विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च ॥ १८ ॥
माहिष्मतस्य राजर्षेश्चत्वारश्चाभवन्सुताः ॥ तेषां मध्येतु यो ज्येष्ठः स महापाप संयुतः ॥१९॥
परदाराभिगामीच द्यूतवेश्यारतः सदा ॥ पितुर्द्रव्यं स पापिष्ठो गमयामास सर्वशः ॥ २० ॥
असद्वृत्तिरतो नित्यं देवता द्विज निन्दकः ॥ वैष्णवानां च वेदानां नित्य निन्दारतः स वै

माहिष्मत को चार पुत्र हुए उनमें जो सबसे ज्येष्ठ था वह महापापी था ॥१९॥ वह सदा पराई स्त्रियों से और
वेश्याओं के साथ कुकर्म करने वाला और जूआ आदि निन्दित कर्म करने वाला था । और वह पापी पिता के
संपूर्ण धन को भी नाश करने लगा ॥ २० ॥ और सदा बुरा आचरण रखता था और देवता ब्राह्मणों की २०

निन्दा करने वाला था, तथा वैष्णव और वेदशास्त्रों की निन्दा तो उसे अत्यन्त ही प्रिय लगती थी ॥ २१ ॥ राजा माहिष्मत ने अपने पुत्र का बुरा आचरण देखकर उसका नाम लुंपक रखा और उसे अपने राज्य से निकाल बाहर किया ॥ २२ ॥ जब पिता ने उसे राज्य से निकाल दिया तब राजा माहिष्मत के भय से सब

॥ २१ ॥ ईदृग्विधं तदा दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः ॥ राज्यान्निष्कासयामास लुंपकं नाम नामतः ॥ २२ ॥ राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैवापि बन्धुभिः ॥ परिवारजनैः सर्वैस्त्यक्तो राज्ञो भयात्तदा ॥ २३ ॥ लुंपकोऽपि तदा त्यक्तश्चिन्तयामास चैकलः ॥ मयाऽत्रकिं प्रकर्तव्यं त्यक्तेन पितृ बान्धवैः ॥ २४ ॥ इति चिन्तापरो भूत्वा मतिं पापे तदाकरोत् ॥ मया

भाई बन्धु परिवार वालों ने भी उसका त्याग कर दिया ॥ २३ ॥ फिर तो जब लुंपक को परिवार वालों ने छोड़ दिया तब वह अकेला रहकर चिन्ता करने लगा कि मेरा तो पिता और परिवार वालों ने त्याग कर दिया अब मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ ॥ २४ ॥ इस प्रकार चिन्ता करके उसकी बुद्धि में यह पाप करने की बुद्धि समाई कि पिता के नगर को छोड़ कर वन में

22

चला जाऊँ ॥ २५ ॥ और उस वन से रात को पिता के नगर में आकर यहाँ का सब धन चुरा कर रखलूँ ॥
और फिर दिन में उसी वन में जाकर रहूँ रात को इस नगर में फिरा करूँ ऐसा वह ॥२६॥ भाग्यहीन लुंपक
विचार कर उस वन से एक सघन जङ्गल में चला गया ॥ २७ ॥ तब वह नित्य नित्य जीवहिंसा और चोरी

तु गमनं कार्यं बने त्यक्त्वा पुरं पितुः ॥२५॥ तस्माद्धनात्पितुः सर्वं चोरयिष्ये पुरं निशि ॥
दिवा बने चरिष्यामि रात्रावपि पितुः पुरे ॥२६॥ जीवघातकरो नित्यं नित्यं स्तेय परायणः
सर्वं च नगरं तेन मूषितं पापकर्मणा ॥ २७ ॥ गृहीतश्च परित्यक्तो लोकै राज्ञो भयात्तदा ॥
जन्मान्तरीय पापेन राज्यभ्रष्टः स पापकृत् ॥२८॥ आमिषाभिरतो नित्यं नित्यं वै फल भक्षकः ॥
आश्रमस्तस्य दुष्टस्य वासुदेवस्य संमतः ॥ २९ ॥ अश्वत्थो वर्तते तत्र जीर्णो बहुल

करने लगा, रात को नगर में आकर उस पापी ने चोरी करना आरम्भ कर दिया ॥ २८ ॥ जो लोग उस
राजपुत्र को पकड़ भी लेते तो उसे राजा के भय से छोड़ देते, और वह पापी अपने पूर्वजन्म के पाप से राज्य-
भ्रष्ट हो गया ॥ २९ ॥ वह नित्य मांस खाकर वा फल खाकर रह जाता उस दुष्ट का आश्रम भगवान्

वासुदेवकी इच्छासे था ॥३०॥ उस वनमें एक बहुत पुराना पीपलका पेड़ था कि जिसे उस जङ्गलके लोग बड़ा देवता करके मानते थे ॥ ३१ ॥ उसी वृक्ष के नीचे वह पापी लुंपक जा पहुँचा और इसी पापकर्म को करते हुये उस पापी को वहाँ रहते २ बहुत काल बीत गया ॥३२॥ तो उस पापी भाग्यहीन के पौष के कृष्णपक्ष को सफला

वार्षिकः ॥ देवत्त्वं तस्य वृक्षस्य वर्तते तद्वने महत् ॥ ३१ ॥ तत्रैवन्यवच्चासौ लुंपकः पाप बुद्धिमान् ॥ एवं काल क्रमेणैव वसतस्तस्य पापिनः ॥ ३२ ॥ दुष्कर्म निरतस्यास्य कुर्वतः कर्मनिन्दितम् ॥ पौषस्य कृष्णपक्षेतु सम्प्राप्ते सफलादिनम् ॥ ३३ ॥ दशमीदिवसे राजन्निशायां शीत पीडितः ॥ लुम्पको वस्त्रहीनो वै निश्चेष्टो ह्यभवत्तदा ॥ ३४ ॥ पीड्यमानस्तु शीतेन ह्यश्वत्थस्य समीपगः ॥ न निद्रा न सुखं तस्य

23

एकादशी का दिन प्राप्त हुआ ।३३॥ हे राजन् ! वह लुंपक दशमी की रात को वस्त्र न होने से शीत से बड़ा पीड़ित हुआ और उस समय उसे यह नहीं सूझता था कि इस घोर शीत से रक्षा पानेके लिये क्या उपाय करूँ ॥३४॥ जाड़े के मारे वह लुंपक उस पीपल के वृक्ष में ऐसा होगया कि न तो उसे निद्रा आई न उसको कुछ

सुख हुआ वरन् शीतकी पीड़ा से मृतक के तुल्य होगया ॥ ३५ ॥ उसने दाँतों को खट खटाने से किसी तरह रात को विताया प्रातःकाल सूर्य नारायण के उदय होने पर भी उसको चेत नहीं हुआ ॥३६॥ हे राजा! उस अचेतन लुंपक को सफला एकादशी के दिन जब मध्यान्ह के सूर्य हुए तब उसको चेत हुआ ॥ ३७ ॥ जब वह

गत प्राण इवाभवत् ॥ ३५ ॥ पीडयन् दशनैर्दन्तानेवं सो गमयन्निशाम् ॥ भानूदयेऽपि तस्याथ न संज्ञा समजायत ॥ ३६ ॥ लुंपको गतसंज्ञस्तु सफला दिवसे ततः ॥ मध्याह्न समये प्राप्ते संज्ञां लेभे स पार्थिवः ॥ ३७ ॥ प्राप्तसंज्ञो मुहूर्तेन चोत्थितोऽसौ तदासनात ॥ प्रस्खलंश्च पदन्यासैः पङ्गुवच्चलितो मुहुः ॥ ३८ ॥ वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्पापीडितोऽभवत् ॥ न शक्तिर्जीवघातस्य लुम्पकस्य दुरात्मनः ॥ ३९ ॥ फलानि भूमौ

लुंपक मध्यान्ह के समय चैतन्य हुआ तो वह उस स्थान से दो घड़ी में उठा परन्तु उसका पैर ठिकाने न पड़ता था इस कारण वह पंगुल के समान बैठकर चला ॥ ३८ ॥ भूख और प्यास से दुःखित होकर वह वनमें गया परन्तु उस दुष्ट हिंसा करनेवाले लुम्पक में थोड़ी शक्ति भी चलने की नहीं रही ॥ ३९ ॥ तब वह लुम्पक पृथ्वी

में गिरे हुए फलों को लेकर जब तक वह अपने स्थान पर अर्थात् उस पीपल वृक्ष के समीप आया तब तक सूर्य अस्त होगये ॥ ४० ॥ अब वह राजपुत्र लुम्पक दुःखी हो विलाप करने लगा कि हे पिता ! अब क्या होगा और उसने उन सब फलों को पीपल के वृक्ष की जड़ में चढ़ा दिये ॥ ४१ ॥ और कहने लगा कि हमारे अर्पण

पतितान्याहृत्य च स लुंपकः ॥ यावत्स चागतस्तत्र तावदस्तमगाद्रविः ॥ ४० ॥ किं भवि- ष्यति तातेति विललापाति दुःखितः ॥ फलानि तानि सर्वाणि वृक्षमूले निवेदयन् ॥४१॥ इत्युवाच फलैरेभिः प्रीयतां भगवान् हरिः ॥ उपविष्टो लुम्पकश्च निद्रां लेभे न वै निशि ॥ ४२ ॥ तेन जागरणं मेने भगवान्मधुसूदनः ॥ फलैश्च पूजनं मेने सफलायां तथाऽनघ ॥ ४३ ॥ कृतमेवं लुंपकेन ह्यस्माद्व्रतमनुत्तमम् ॥ तेन व्रत प्रभावेण प्राप्तं राज्यमकंटकम्

किये इन फलों से विष्णु भगवान् प्रसन्न हों, ऐसा कहकर वह लुम्पक रात भर बैठा रहा उसे नींद नहीं आई ॥ ४२ ॥ इससे भगवान् मधुसूदन ने एकादशी का जागरण मानलिया और उन फलों से सफला एकादशीके दिनका पूजन मानलिया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार राजकुमार लुम्पक ने अकस्मात् इस पौषकृष्ण सफला एकादशी

24

का व्रत किया और उस व्रत के प्रभाव से पिता के अकण्टक राज्य को पाया ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! पुण्य का अंकुर उदय होने से जैसे उसने राज्य पाया उसका वृत्तान्त सुनो ! कि द्वादशी के दिन सूर्य उदय होनेके समय उस पीपल वृक्ष के नीचे एक बड़ा सुन्दर घोड़ा आया ॥४५॥ और अच्छे वस्त्र और आभूषण के सहित वह घोड़ा

॥ ४४ ॥ पुण्याङ्कुरोदयाद्राजन् यथा प्राप्तं तथा शृणु ॥ रवेरुदय बेलायां दिव्योश्वश्चाजगामह ॥ ४५ ॥ दिव्यवस्तुपरिवारो लुम्पकस्य समीपतः ॥ तस्थौ स तुरगो राजन् वाग्रुवाचाशरीरिणी ॥ ४६ ॥ प्राप्नुहि त्वं नृपसुत स्वराज्यंहतकण्टकम् ॥ वासुदेव प्रसादेन सफलायाः प्रभावतः ॥ ४७ ॥ पितुः समीपं गच्छत्वं भुंक्ष्वराज्यमकंटकम् ॥ तथेत्युक्त्वा त्वसौतत्र दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥ ४८ ॥ कृष्णे मतिश्च तस्यासी-

राजकुमार लुम्पक के पास आकर खड़ा हुआ तब उस समय आकाशवाणी हुई कि ॥ ४६ ॥ हे राजपुत्र ! विष्णु भगवान की कृपा से और सफला एकादशी के व्रत के प्रभाव से अपने पिताके अकण्टक राज्यका जाकर भोग करो ॥ ४७ ॥ और अपने पिता के पास जाकर इतने बड़े राज्य के अधिकारी बनो, ऐसा

कहते ही राजपुत्र लुम्पक का दिव्य स्वरूप होगया ॥ ४८ ॥ और उसकी श्रीकृष्णचन्द्र में दृढ़ प्रीति वैष्णवों की तरह बुद्धि होगई फिर वह लुम्पक दिव्य वस्त्र और अलंकार को धारण करके अपने पिता के पास गया उनको प्रणाम करके अपने शुद्ध आचरण से राजमहल में रहने लगा ॥ ४६ ॥

त्परमा वैष्णवी तथा ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यस्तातं नत्वा स्थितो गृहे ॥ ४६ ॥
वैष्णवाय ततो दत्तं पित्रा राज्यमकंटकम् ॥ कृतराज्यं तु तेनैव वर्षाणि सुबहून्यपि ॥५०॥
हरिवासरसंलीनो विष्णुभक्तिरतः सदा ॥ मनोज्ञास्त्वस्य पुत्राःस्युर्दाराः कृष्ण प्रसादतः ॥५१॥
ततः स वार्धके प्राप्ते राज्यं पुत्रे निवेश्य च ॥ वनं गतः संयतात्मा विष्णुभक्तिपरायणः

फिर पिता ने उस विष्णुभक्त वैष्णव को अकंटक राज्य दिया और राजकुमार ने अनेकों वर्ष पर्यन्त न्यायपूर्वक राज्य किया ॥५०॥ और वह राजकुमार सदा एकादशी का व्रत करता और विष्णु की भक्ति में प्रीति रखता रहा इस कारण श्रीकृष्णचन्द्र के प्रसाद से उस राजकुमार को सुन्दर स्त्री मिली और उससे सुन्दर पुत्र भी अनेक उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ फिर वह राजा लुम्पक अपनी वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य देकर संयम नियम से

29

श्रीविष्णुभगवान की भक्ति में लीन होकर जंगल को चला गया ॥ ५२ ॥ और वहाँ आत्मा का साधन करके अन्त में विष्णुलोक में पहुँचा । इस प्रकार जो कोई सफला एकादशी का व्रत करते हैं ॥ ५३ ॥ वे मनुष्य इस लोक में यश और सुख को भोगकर निश्चय परमपद पाते हैं । उन लोगों को धन्य है कि जो सफला एकादशी

॥ ५२ ॥ साधयित्वा तथात्मानं विष्णुलोकं जगामह ॥ एवं ये वै प्रकुर्वन्ति सफलैकादशी व्रतम् ॥ ५३ ॥ इहलोके यशः प्राप्य मोक्षं यास्यन्त्यसंशयम् ॥ धन्यास्ते मानवा लोके सफला व्रतकारिणः ॥ ५४ ॥ तस्मिन् जन्मनि ते मोक्षं लभंते नात्र संशयः ॥ सफलायाश्च माहात्म्यं श्रवणाद्धि विशांपते ॥ राजसूय फलं प्राप्य वसेत्स्वर्गे च मानवः ॥ ५५ ॥ इति पौषे कृष्णैकादश्याः सफलानाम्न्यामाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥

का व्रत करते हैं ॥ ५४ ॥ वे उसी जन्म में मोक्ष पाते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है हे राजन् ! सफला एकादशी के माहात्म्य को सुनने से मनुष्य राजसूय यज्ञ का फल पाकर स्वर्ग में वास करता है ॥ ५५ ॥ इति पौष कृष्णैकादश्याः सफला नाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अब पौष शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर ने कहा हे भगवान ! आपने कृष्णपक्ष की सुन्दर सफला एकादशी की कथा तो कही अब प्रसन्नता से पौष मास के शुक्लपक्षकी एकादशी की कथा कहिये ॥ १ ॥ उस एकादशी का क्या नाम है और उसकी क्या विधि है और उसमें किस देवता की पूजा होती है हे हृषीकेश !

अथ पौष शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा ॥ कथयस्व प्रसादेन शुक्ला पौषस्य या भवेत् ॥ १ ॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥ कस्मै तुष्टो हृषीकेश त्वमेव पुरुषोत्तम ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत् ॥ तस्या विधिं महाराज लोकानां च हिताय वै ॥ ३ ॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥ पुत्रदेतिच नाम्नाऽसौ सर्व-

हे पुरुषोत्तम ! आप किसके ऊपर प्रसन्न सो सब कथा विस्तार पूर्वक कहिये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजन् ! सुनो मैं पौष शुक्ल की एकादशी के पुण्य को कहूँगा और हे महाराज ! लोक के कल्याण के लिये उसकी विधि को कहूँगा ॥ ३ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! इसे भी पहिले की कही हुई विधि के अनुसार बड़े

प्रयत्न से करना चाहिये ॥ इस एकादशी का नाम पुत्रदा है और बड़ी श्रेष्ठ तथा अनेक प्रकार के पापों को नाश करनेवाली है ॥ ४ ॥ इसके अधिदेवता नारायण हैं जो काम और सिद्धि को देने वाले हैं और चराचर त्रिलोकी में इस एकादशी से परे कोई भी नहीं है ॥ ५ ॥ और यह मनुष्य को विद्या यश और धन से परिपूर्ण

पापहरा वरा ॥ ४ ॥ नारायणोऽधिदेवोस्याः कामदः सिद्धिदायकः ॥ नातः परतरा काचित् त्रैलोक्ये सचराचरे ॥५॥ विद्यावन्तंयशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं करोत्यसौ ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ॥ ६ ॥ पुरी भद्रावती नाम्नी राजा तत्र सुकेतुमान् ॥ तस्यराज्ञोऽथ राज्ञी च शैव्यानाम्नीति विश्रुता ॥ ७ ॥ पुत्रहीनेन राज्ञा च कालोनीतो मनोरथः ॥ नैवात्मजं नृपो

कर देती है हे राजा ! पाप को हरनेवाली परम श्रेष्ठ इस एकादशी की कथा कहता हूँ उसे सुनो ॥ ७ ॥ एक भद्रावती नाम नगरी थी, वहाँ सुकेतुमान् नाम राजा रहता था उसकी रानी का नाम शैव्या था ॥ ८ ॥ उस सुकेतुमान् राजा को कोई पुत्र नहीं था केवल अभिलाषा करते ही उसका बहुत सा समय व्यतीत

हो गया परन्तु उसके वंश के भार को ढोने वाला कोई सन्तान नहीं हुआ ॥ ९ ॥ उस राजा ने चिरकाल तक धर्म का विचार किया कि क्या उपाय करूँ कहाँ पर जाऊँ जिससे मुझे सन्तान की प्राप्ति होवे ॥ १० ॥ इस प्रकार राजा सुकेतुमान् को देश और नगर तथा राज्य में कहीं भी सुख नहीं मिलने

लेभे वंशकर्तारमेव च ॥८॥ तेनैवराज्ञधर्मेणचिन्तितं बहुकालतः । किं करोमि क्व गच्छामि सुतप्राप्तिः कथंभवेत ॥ ९ ॥ न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान् ॥ शैब्यया कान्तया सार्द्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवत् ॥ तावुभौ दंपती नित्यं चिन्ताशोक परायणौ ॥ १० ॥ पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ राज्ञः पश्चान्न पश्यामोयोऽस्मान्सन्तर्पयिष्यति॥११॥ इत्येवं संस्मरन्तोऽस्य पितरो दुःखितोऽभवन् ॥ न बान्धवा न मित्राणि नामात्याः सुहृदस्तथा

लगा वरन् अपनी शैब्या नाम रानी सहित दिन दिन दुःखी होने लगा ॥ ११ ॥ वे दोनों स्त्री पुरुष रात दिन चिन्ता और शोक से व्याकुल होने लगे कि हमारे दिये हुए अन्न जल को पितर लोग भी दुःख से लेते हैं क्योंकि वे आगे देखते हैं कि इस सुकेतुमान् राजा के बाद कोई नहीं है कि जो हमारा तर्पण करेगा ॥१२॥

इस प्रकार चिन्ता करके इस राजा के पितर दुःख सहने लगे और उस राजा को भाई, बन्धु, मित्र, मंत्री और सुहृद अर्थात् जिनसे अपने हृदय क़ी बातों को न छिपावे ॥ १३ ॥ तथा हाथी, घोड़े, और चतुरंगिणी सेना यह सब कुछ भी अच्छे नहीं लगते थे उस राजा का मन सब ओर से निराश हो गया ॥१३॥ क्योंकि पुत्रहीन

ए. मा. २६ — भा. टी.

॥ १२ ॥ रोचन्ते तस्य भूपस्य न गजाश्व पदातयः ॥ नैराश्यं भूपतेस्तस्य मनस्येवमजायत ॥ १३ ॥ नरस्य पुत्र हीनस्य नास्ति वै जन्मनः फलम् ॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा ॥ १४ ॥ पितृदेवमनुष्याणां नानृणित्वं सुतं विना ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः ॥ १५ ॥ इह लोके यशस्तेषां परलोके शुभागतिः ॥ येषां तु पुण्यकर्तॄणां पुत्र जन्म गृहे भवेत् ॥ १६ ॥ आयुरारोग्य सम्पत्तिस्तेषां गेहे प्रवर्तते ॥ पुत्राः पौत्राश्च लोकाश्च भवेयुः

मनुष्य का जन्म होना ही व्यर्थ है और पुत्र हीन का घर सदा सूना रहता है और उस प्राणी का हृदय सदा दुःखित रहता है ॥ १४ ॥ और पुत्र के बिना पितर और देवता और मनुष्यों का ऋण नहीं छूटता । इसलिये अनेक उपायों के द्वारा मनुष्य को पुत्र उत्पन्न करना चाहिये ॥ १५ ॥ जिन पुण्यात्मा मनुष्यों के घर में पुत्र

जन्म होता है उनका इस लोक में यश और परलोक में उनको शुभगति मिलती है ॥ १६ ॥ और उनकी आयु बढ़ती है आरोग्यता और सम्पत्ति उनके गृह में निवास करती है और पुण्यात्माओं के पुत्र पौत्र और लोक सब होते हैं ॥ १७ ॥ मेरी जान में पुण्य और विष्णु की भक्ति के बिना पुत्र और विद्या की वृद्धि नहीं होती है

पुण्य कर्मणाम् ॥ १७ ॥ पुण्यं विना नच प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना तथा । पुत्राणां संपदो वाऽपिविद्यायाश्चेति मे मतिः ॥ १८ ॥ एवं चिन्तयमानोऽसौ राजा शर्म न लब्धवान् ॥ प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽचिंतयत्तथा ॥ १६ ॥ ततश्चात्मविनाशं वै विचार्याथ सुकेतुमान् ॥ आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः ॥ २० ॥ दृष्ट्वात्म देहं प्रक्षीणमपुत्रत्वं तथैवच ॥ पुनर्विचार्यात्म बुध्या ह्यात्मनो हितकारणम् ॥ २१ ॥ अश्वारूढस्ततोराजा

॥ १८ ॥ इस प्रकार की चिन्ता करते करते राजा सुख से वञ्चित होकर प्रातःकाल से रात्रिपर्यन्त उसी प्रकार की चिन्ता करने लगा ॥ १६ ॥ फिर सुकेतुमान् राजा ने अपना आत्मघात करना निश्चय किया परन्तु फिर उस राजा ने यह विचार किया कि यदि आत्मघात करूँगा तो दुर्गति होगी ॥ २० ॥ और मेरी देह तो

क्षीण होती चली जाती है और पुत्र तो हुआ नहीं यह देख फिर उसने अपनी बुद्धि से अपने हित का हेतु विचारा ॥ २१ ॥ और फिर राजा घोड़े पर चढ़कर भयानक वन को गया परन्तु राजा का जंगल का जाना पुरोहित मन्त्री आदि सब लोगों में से किसी को नहीं जान पड़ा ॥ २२ ॥ राजा उस घोर वन में पहुंचा

जगाम गहनं वनम् ॥ पुरोहितादयः सर्वे न जानन्ति गतं नृपम् ॥ २२ ॥ गम्भीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते ॥ विचचार तदा तस्मिन् वन वृक्षान्विलोकयन् ॥ २३ ॥ वटानश्वत्थ विल्वांश्च खर्जूरान्पनसांस्तथा ॥ बकुलांश्च सदापर्णांस्तिन्दुकांस्तिलकानपि ॥ २४ ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चददर्श सरलान्नृपः ॥ इंगुदी ककुभांश्चैव श्लेष्मातक विभीतकान् ॥ २५ ॥ शल्लकी करमर्दांश्च पाटलान् खादिरानपि ॥ शाकांश्चैव पलाशांश्च शोभितान् ददृशे पुनः

कि जहाँ बहुत से जानवर और पक्षी घूमते रहते थे ॥ और वहाँ वन के वृक्षों को देखता हुआ घूमने लगा ॥ २३ ॥ और उसने वन में वट, पीपल, वेल, खजूर, कटहर, मौलिसिरी, तूत, तेंदु, तिलक ॥ २४ ॥ साल तमाल, सरल, आदिक वृक्षों को राजा ने देखा और हिंगोर, अर्जुन, निसौड़ा, बहेड़ा, ॥ २५ ॥ देवदारु, २७

करौंदा, पाठल, खर, शाक, और ढाक, इन सब सुन्दर सुन्दर वृक्षों को ॥ २६ ॥ और मृग, व्याघ्र, शूकर, सिंह, और बानर तथा नीलगाय, हरिण, शृगाल, और खरगोश, ॥ २७ ॥ वन बिलाव, शल्लक (साही) सुरागाय, और बांबी से निकलते हुए साँपों को राजा ने देखा ॥ २८ ॥ और अपने बच्चों सहित वन के

॥ २६ ॥ मृगव्याघ्रवराहांश्चसिंहान् शाखामृगानपि ॥ गवयान् कृष्णसारांश्च शृगालान् शशकानपि ॥ २७ ॥ वनमार्जारिकान् क्रूरान् शल्लकांश्चमरानपि ॥ ददर्श भुजगान् राजा वल्मीकादिभि निःसृतान् ॥ २८ ॥ तथा वनगजान् मत्तान् कलभैःसहसंगतान् ॥ यूथपांश्च चतुर्दन्तान् करिणीगणमध्यगान् ॥ १६ ॥ तान् दृष्ट्वा चिन्तयामास ह्यात्मनःस

मतवाले हाथियों को तथा चार दाँतवाले यूथके स्वामी (अर्थात् हाथी के पतियों को भी साथ में देखा ॥ २६ ॥ उनको देखकर राजा को अपनी हाथियों का स्मरण हुआ और उन हाथियों के बीच में विहार करता हुआ राजा बड़ी शोभा से शोभित हुआ ॥ ३० ॥ राजा उस वन को बड़े आश्चर्य से देखने लगा, कहीं गीदड़ों का चिल्लाना कहीं सिंहों का गर्जना, तथा उल्लुओं का रोना सुनने

28
23

लगा ॥ ३१ ॥ और उन पक्षी और जन्तुओं को देखता हुआ वनमें घूमता रहा । इस प्रकार वनकी शोभा को देखते देखते राजा को दो पहर होगया ॥ ३२ ॥ राजा भूख प्यास से दुःखित हो इधर उधर घूमने लगा परन्तु प्यास के मारे उस राजा के कण्ठ सूख गये । फिर वह राजा सोचने लगा कि ॥ ३३ ॥ मैंने ऐसा

गजान्नृपः ॥ तेषां स विचरन्मध्ये राजा शोभामवापह ॥ ३० ॥ महदाश्चर्य संयुक्तं ददर्श विपिनं नृपः ॥ क्वचिच्छिवारुतं शृण्वन्नुलूकविरुतं तथा ॥ ३१ ॥ तां स्तान् पक्षिं मृगान् पश्यन् बभ्राम वनमध्यगः ॥ एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यं गते रवौ ॥ ३२ ॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति ॥ चिन्तयामास नृपतिः संशुष्क गलकन्धरः ॥३३॥ मया तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम् ॥ मया वै तोषितो देवा यज्ञैः पूजाभिरेव च ॥ ३४ ॥ तथैव ब्रह्मणादानैस्तोषिता मिष्टभोजनैः ॥ प्रजाश्चैव यथाकालं पुत्रवत्परिपालितः

कौनसा कर्म किया कि जिससे ऐसा दुःख पाया । मैंने यज्ञ और पूजा से देवताओं को सन्तुष्ट किया ॥ ३४ ॥ और दान से तथा स्वादिष्ट पदार्थ भोजन कराके मैंने ब्राह्मणों को सन्तोषित किया । और अपनी प्रजाका

सदा पुत्र के समान पालन किया करता था ॥ ३५ ॥ फिर किस कारण से मुझे ऐसा बड़ा, कठिन दुःख मिला। राजा ऐसी चिन्ता करता हुआ वनमें और आगे को गया ॥ ३६ ॥ तब वहाँ पुण्य के प्रभाव से उसको एक सुन्दर तालाब दिखाई दिया जो कि मानसरोवर के समान था और उसमें अनेक प्रकार के

॥३५॥कस्माद्दुःखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणंमहत्॥इति चिंतापरो राजा जगामाथोग्रतो वनम्॥३६॥ सुकृतस्य प्रभावेण सरो दृष्टं मनोरमम् ॥ मानसेन स्पर्धमानं पद्मिनीपरिशोभितम् ॥ ३७ ॥ कारण्डवैश्चक्रवाकैः राजहंसैश्च नादितम् ॥ मकरैर्बहुभिर्मत्स्यैरन्यैर्जलचरैर्युतम् ॥ ३८ ॥ समीपे सरसस्तत्र मुनीनामाश्रमान् बहून् ॥ ददर्श राजा लक्ष्मीवान्निमित्तैः शुभ संशिभिः ॥ ३९ ॥

कमल खिल रहे थे ॥ ३७ ॥ और जल मुर्ग, चकवी, चकवा, और राज हंस बोल रहे थे। तथा बहुत से मगर मछली आदि अनेक जलचर जीवों से वह सरोवर परिपूर्ण था ॥ ३८ ॥ उस तालाब के किनारे मुनियों के बहुत से आश्रम थे ऐसे मनोहर और पवित्र स्थान को लक्ष्मीसे सम्पन्न राजाने देखा और मनमें जाना कि ये शकुन तो शुभ की सूचना करने वाले हैं ॥ ३९ ॥ इतने ही में उस राजा का दाहिना नेत्र और भुजा दोनों

फड़कने लगे कि जो शुभकामना की सिद्धि को जानने वाले थे ॥ ४० ॥ फिर राजाने उस सरोवर के किनारे
वेद मन्त्रों का पाठ करते हुए मुनियों को देखा वही उस घोड़े से उतर कर मुनियों के आगे खड़ा हो गया ॥४१॥
और उन व्रत करनेवाले महर्षियोंको अलग २ नमस्कार करके उनसे फिरसे हाथ जोड़ सबको दण्डवत् प्रणाम

सव्यात्परतरं चक्षुरपसव्यस्तथा करः ॥ प्रस्फुरन्नृपतेस्तस्य कथयन् शोभनं फलम् ॥ ४० ॥
तस्य तीरे मुनीन् दृष्ट्वा कुर्वाणान्नैगमं जपम् ॥ अवतीर्य हयात्तस्मान्मुनीनामग्रतः स्थितः
॥ ४१ ॥ पृथक् पृथक् ववन्दे स मुनींस्तान् संशितव्रतान् ॥ कृताञ्जलि पुटोभूत्वा दण्ड-
वच्च प्रणम्य सः ॥ ४२ ॥ हर्षेण महताविष्टो बभूव नृपसत्तमः ॥ तमूचुस्तेऽपि मुनयः
प्रसन्नाः स्मो वयं तव ॥ ४३ ॥ कथयस्वाद्य वै राजन्यत्ते मनसि वर्तते ॥ राजोवाच ॥

किया ॥ ४२ ॥ और वह श्रेष्ठ राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, तब सब उनसे बोले कि हे राजन् ! हम लोग तुम से
प्रसन्न हैं ॥ ४३ ॥ हे राजा ! जो तुम्हारे मनमें हो सो आज कहो ॥ राजा बोला कि तपस्वियों में श्रेष्ठ आप
लोग कौन हैं और आपके नाम क्या हैं ॥ ४४ ॥ और आप लोग किसलिये इकट्ठे हुए हैं सो मुझसे उसका

भेद कहो ॥ मुनीश्वर बोले ॥ हे राजा ! हम सब विश्वेदेवा हैं और यहाँ स्नान के लिये आये हैं ॥ ४५ ॥ आज से पाँचवें दिन माघमास लगने वाला है और हे राजा ! आज पुत्रदा नाम एकादशी है यह शुक्ल पक्षकी एकादशी पुत्र चाहनेवालों को पुत्र देनेवाली है । राजा बोला । हे मुनियो ! पुत्र होने के लिये मैं भी बड़ा यत्नकर

के यूयमुग्रतपसः का आख्या भवतामपि ॥ ४४ ॥ किमर्थं संगता यूयं वदंतु मम तत्त्वतः ॥ मुनय ऊचुः ॥ विश्वेदेवा वयं राजन् स्नानार्थमिह चागताः ॥ ४५ ॥ माघो निकटमायातः एतस्मात्पंचमेऽहनि ॥ अद्यह्येकादशी राजन्पुत्रदा नाम नामतः ॥ ४६ ॥ पुत्रं ददात्यसौ शुक्ला पुत्रदा पुत्रमिच्छताम् ॥ राजोवाच ॥ ममापि यत्नो मुनयः सुतस्योत्पादने महान् ॥ ४७ ॥ यदि तुष्टा भवंतो मे पुत्रो वै दीयतां शुभः ॥ मुनय ऊचुः ॥ अस्मिन्नेव दिने राजन् पुत्रदा नाम वर्तते ॥ ४८ ॥ एकादशी तिथिः ख्याता क्रियतां व्रतमुत्तमम् ॥

31 रहा हूँ ॥४७॥ और यदि आपमुझसे प्रसन्न हैं तो एक शुभलक्षण पुत्र दीजिये । मुनिगण बोले। आजहीके दिन पुत्रदानाम ॥४८॥ एकादशी तिथि है उसका उत्तम व्रत करो हम लोगों के आशीर्वाद से और श्रीविष्णु भगवान्

की कृपा से ॥४९॥ हे राजश्रेष्ठ ! अवश्य ही तुम्हारे को पुत्र होगा उनके इस वचन से राजाने उस शुभ देनेवाले उत्तम व्रत को किया ॥५०॥ और द्वादशी के दिन पारण करके मुनियों को वारंवार प्रणाम किया उपरांत राजा अपने गृह को लौट आया और शीघ्र ही रानी ने गर्भ को धारण किया ॥ ५१ ॥ मुनियों के शुभाशीर्वाद से

आशीर्वादेन चास्माकं केशवस्य प्रसादतः ॥ ४९ ॥ अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतं शुभम् ॥ ५० ॥ द्वादश्यां पारणं कृत्वा मुनीन्नत्वा पुनः पुनः ॥ आजगाम गृहं राजा राज्ञी गर्भं समादधे ॥ ५१ ॥ मुनीनां वचनेनैव पुत्रदायाः प्रसादतः ॥ पुत्रो जातस्तथा काले तेजस्वी पुण्य कर्मकृत् ॥ ५२ ॥ पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्यं पुत्रदा व्रतम् ॥ ५३ ॥ लोकानां च

और पुत्रदा एकादशी के पुण्य से समय पर अर्थात् दशवें मासमें बड़ा तेजस्वी और पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५२ ॥ और वह राजपुत्र प्रजाको पालनेवाला और सदा अपने पिता को प्रसन्न रखनेवाला हुआ । हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार पुत्रदा एकादशीं का व्रत करना चाहिये ॥ ५३ ॥ अथ माघ कृष्णैकादशी कथा ॥

संसार के हित के लिए तुम्हारे सामने मैंने इस व्रत को कहा है जो मनुष्य इस पुत्रदा नाम एकादशी व्रत को करते हैं ॥५४॥ वे इस लोक में पुत्र को पाकर अन्त में स्वर्ग में वास करते हैं हे राजन्! जो मनुष्य इस एकादशी का व्रत विधिपूर्वक करते हैं उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। दाल्भ्य ऋषि बोले। इस मनुष्य लोकमें मनुष्य उत्पन्न होकर

हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥ एतद्व्रतं तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदाभिधम् ॥ ५४ ॥ पुत्रं प्राप्येह लोके तु मृतास्ते स्वर्गगामिनः ॥ पठनात् श्रवणा द्राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥५५॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे पौष शुक्लैकादश्याः पुत्रदानाम्नया माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ माघकृष्णैकादशी कथा ॥ दाल्भ्य उवाच । मर्त्यलोके तु संप्राप्ताः पापं कुर्वन्ति जन्तवः ॥ ब्रह्महत्यादि पापैश्च ह्यन्यैश्च विविधैर्युताः ॥ १ ॥ परद्रव्यापहर्तारः परव्यसन मोहिताः ॥ कथं न यान्ति नरकान् ब्रह्मंस्तद् ब्रूहि

अनेक प्रकार का पाप करते हैं और अनेक प्रकार के ब्रह्म हत्या गोहत्या भ्रूण हत्या आदि पापों के भागी

 होते हैं ॥१॥ दूसरे के धनको स्त्री को हरण करते हैं पराये की उन्नति देख ईर्ष्या करते हैं और दूसरे को दुःखी

चाहते हैं तो फिर व क्यों नहीं नरक को जायंगे हे ब्रह्म देव ! अब मुझसे इसका भेद कहिये ॥ २ ॥ और हे भगवन् ! अनायासही किसी २ थोड़े से दान करने से मनुष्यों के पाप नष्ट होजावें सो उपाय कहिये ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले ॥ हे महाभाग ! आपने बड़ी अच्छी बात पूंछी । यह बात बड़े रहस्य की है और मनुष्यों को

तत्त्वतः ॥ २ ॥ अनायासेन भगवान् दानेनाप्येन केनचित् ॥ पापं प्रशम मायांति येन तद्व-क्तुमर्हति ॥३॥ पुलस्त्य उवाच ॥ साधु साधु महाभाग गुह्यमेतत्सुदुर्लभम् ॥ यन्न कस्यचि-दाख्यातं ब्रह्म विष्णिवन्द्रदैवतैः ॥ ४ ॥ तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम ॥ माघ-मासे तु शुचिःप्रातः स्नातो जितेन्द्रियः॥५॥ काम क्रोधाभिमानेर्ष्या लोभ पैशुन्य वर्जितः ॥ देव देवं च संस्मृत्य पादौ प्रक्षाल्य वारिणा ॥६॥ पुष्यर्क्षेण तु संगृह्य गोमयं तत्र मानवः ॥

दुर्लभ है ॥ ब्रह्मा विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओं ने भी किसी से नहीं कहा है ॥ ४ ॥ परन्तु हे द्विजोत्तम ! तुमने पूछा है तो मैं तुमसे कहूँगा । जब माघ का महीना आवे तो प्रातः काल शुद्ध होकर स्नान करै और इन्द्रियों को अपने वशमें करके रहे ॥५॥ काम, क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लोभ, और चुगुली, तथा असत्य इनको

त्याग करे और जलसे अपने पैर धोकर देवों के देव श्रीविष्णु भगवान का स्मरण करे ॥६॥ और मनुष्य पौष शुक्ल पूर्णिमाको पुष्य नक्षत्र में गौका गोबर इकट्ठा कर उसमें तिल और रूई मिलाकर गोला बनावे ॥ ७ ॥ कितने कि १०८ संख्या से उनका हवन करे इसमें कुछ विचार और संशय न करे जब माघ मास आवे तब

तिलान् प्रक्षिप्य कार्पासं पिंडकांश्चैव कारयेत् ॥ ७ ॥ अष्टोत्तरशतं होमे नात्र कार्या विचारणा ॥ माघमासे तु संप्राप्ते ह्याषाढर्क्षं भवेद्यदि ॥ ८ ॥ मूलं वा कृष्णपक्षस्य द्वादश्यां नियमं ततः ॥ गृह्णीयात् पुण्यफलदं विधानं तस्य मे शृणु ॥ ६ ॥ देव देवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः ॥ कृष्णनामानि संकीर्त्य एकादश्यामुपोषितः ॥ १० ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्रात्रौ होमंच कारयेत् ॥ श्रीविष्णोर्नाममन्त्रेण सर्पिषा ज्वलितेऽनले ॥११॥ अर्चये-

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो ॥ ८ ॥ वा मूल कृष्ण पक्षकी द्वादशी के दिन से एकादशी का नियम ग्रहण करे और उसके पुण्यको देनेवाले विधिविधान को मुझसे सुनो ॥६॥ प्रथम स्नानकर नियमपूर्वक पवित्र होकर देवताओं के देव श्री विष्णु भगवानकी पूजा करै और श्रीकृष्ण के नामों का संकीर्तन करके ॥ १० ॥ एकादशी का

33

उपवास करे फिर रात्रि में जागरण करके और रात्रि को ही विष्णु के नाम मन्त्र से घीसे प्रज्ज्वलित अग्नि में उन आठ पिण्डों का हवन करावे ॥११॥ और दूसरे दिन देवताओं के स्वामी विष्णु भगवान की पूजाकरे। और चन्दन, अगर, कर्पूर, नैवेद्य, और खिचड़ी ॥ १२ ॥ तथा इनको भी श्रीकृष्णका नाम वार वार उच्चारण

देवदेवेशं द्वितीयेऽह्नि पुनर्हरिम् ॥ चन्दनागरुकर्पूरैर्नैवेद्यं कृसरं तथा ॥ १२ ॥ संस्तुत्य नाम्ना तेनैव कृष्णाख्येन पुनः पुनः ॥ कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः ॥ १३ ॥ सर्वाभावे तु विप्रेन्द्र शस्तं पूंगीफलैर्युतम् ॥ अर्घ्यंदद्याद्विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ १४ ॥ कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव ॥ संसारार्णव मग्नानां प्रसीद परमे-

करके कुम्हड़ा नारियल अथवा विजौरा निंबू इनसे ॥ १३ ॥ और इनमें से कोई भी वस्तु न मिलै तो हे विप्रेन्द्र ! सुपारी ही सबसे उत्तम है ॥ इसीसे विधिपूर्वक भगवान को अर्घ्य देकर और उनका पूजन करके ॥ १४ ॥ इस प्रकार कहै कि हे कृष्ण ! हे कृपालु ! आप दुर्गति पानेवालों के लिये गति हूजिये और हे परमेश्वर ! सन्सार रूपी समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों के ऊपर प्रसन्न हूजिये

॥ १५ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वकाम ! हे जगत्पति ! आप लक्ष्मीजी सहित इस मेरे दिये अर्घ को ग्रहण करिये ॥ १६ ॥ फिर ब्राह्मणका पूजन करै और उसे जलका घड़ा, और छाता तथा दोनों पैरके लिये जूता ब्राह्मण लिये इनको दान करै और कहै कि हे भगवान् ! मुझपर प्रसन्न होवें ॥१७॥ और हे द्विजोत्तम !

श्वर ॥ १५ ॥ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ गृहाणार्घ्यं मयादत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ॥ १६ ॥ ततस्तु पूजयेद्विप्रमुदकुंभं प्रदापयेत् ॥ छत्रोपानद्युगैः सार्धं कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥ १७ ॥ कृष्णाधेनुः प्रदातव्या यथाभक्त्या द्विजोत्तम ॥ तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठ दद्यात्तत्र विचक्षणः ॥ १८ ॥ स्नान प्राशनयोः शस्ताः श्वेताः कृष्णास्तिला मुने ॥ तान्प्रदद्यात् प्रयत्नेन यथाशक्त्या द्विजोत्तम ॥ १९ ॥ तिलैं प्ररोहजाः क्षेत्रे यावत्संख्यास्तिला

अपनी भक्तिपूर्वक काली गौका दान करै और हे द्विजश्रेष्ठ ! उस दिन चतुर मनुष्य तिलपात्र का दान करै ॥ १८ ॥ हे मुनीश्वर ! स्नान और भोजन में सफेद और कृष्ण दोनों तिल श्रेष्ठ हैं । हे द्विजोत्तम ! उन तिलोंका दान यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक करे ॥ १९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! खेतमें तिलके जितने पेड़ हैं और उन-

एका० मा० ३३

पेड़ों में जितने तिल हैं मनुष्य उतने ही हजार वर्ष तक स्वर्गलोक में सुख भोगता है ॥ २० ॥ इस माघ कृष्ण एकादशी के दिन जलमें तिल मिलाकर स्नान करै, तिलका उबटन लगावै तिलका हवन करै, जलमें तिल मिलाकर पीवै, और तिलका भोजन करै, तिलका दान करै ये छः प्रकार के तिल पापों को नाश करनेवाले

द्विज ॥ तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥ तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥ तिलभुक् तिदालता च षट्तिलाः पापनाशकाः ॥ २१ ॥ (षट्तिला ख्यापकम्) ॥ नारद उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते विश्वभावन ॥ षट्तिलैकादशीभूतं कीदृशं फलमश्नुते ॥ २२ ॥ सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोसि यादव ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु ब्रह्मन्यथा वृत्तं दृष्टं तत्कथयामि ते ॥ २३ ॥ मृत्युलोके पुरा ह्यासीद्ब्राह्म-

हैं ॥ २१ ॥ यही षट्तिला नाम एकादशी विख्यात है ॥ नारदजी बोले ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहु ! हे भक्तभावन ! आपको नमस्कार है ॥ अब षट्तिला एकादशी से हुआ पुण्य का फल कैसा मिलता है॥२२॥ हे यादव ! जो आप मुझसे प्रसन्न होतो इसकी कथा मुझसे वर्णन कीजिये ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे नारद !

भा० टी० ३३

जैसा फल मैंने होता देखा है सो मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ २३ ॥ हे नारद ! पहिले मृत्युलोक में एक ब्राह्मणी थी वह सदा व्रत और देवपूजा करने में लगी रहती थी ॥ २४ ॥ वह सदा मेरी भक्ति करके एक महीने तक व्रत किया करती थी । वह श्रीकृष्ण भगवान का व्रत करने वाली और मन लगाकर मेरी पूजा

ण्येका च नारद ॥ व्रतचर्यारता नित्यं देव पूजारता सदा ॥ २४ ॥ मासोपवासनिरता मम भक्ताच्च सर्वदा ॥ कृष्णोपवास संयुक्ता मम पूजापरायणा ॥ २५ ॥ शरीरं क्लेशितं नित्य-मुपवासैस्तया द्विज ॥ दीनानां ब्राह्मणानां च कुमारीणां च भक्तितः ॥ २६ ॥ गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महामतिः ॥ अतिकृच्छ्ररता सा तु सर्वकालेषु वै द्विज ॥ २७ ॥ ब्राह्मणानान्नदानेन तर्पिता देवता नच ॥ तत कालेन महता मया वै चिन्तितं द्विज

करनेवाली थी ॥ २५ ॥ हे नारद ! नित्य व्रत करने से उसका शरीर क्लेशित होगया । और वह भक्ति पूर्वक दीन ब्राह्मणों और अनाथ कुमारियों को ॥ २६ ॥ हे महामतिमान् ! सदा गृह आदिका दान किया करती थी । और हे द्विज ! वह ब्राह्मणी सदा कठिन व्रत किया करती थी ॥ २७ ॥ इतना करने

35

पर भी उसने ब्राह्मण और देवताओंको अन्नदान देकर तृप्त नहीं किया हे द्विज ! फिर बहुत कालके उपरान्त मैंने विचार किया कि ॥ २८ ॥ अति कठिन २ व्रतों से इसका शरीर तो शुद्ध होगया और इसने शरीर का क्लेश उठाकर विष्णु लोक भी प्राप्त कर लिया इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥

॥ २८ ॥ शुद्धमस्याः शरीरं हि व्रतैः कृच्छ्रैर्न संशयः ॥ अर्जितो वैष्णवो लोकः कायक्लेशेन चैतया ॥ २ ॥ न दत्तमन्नदानं हि येन तृप्तिः परा भवेत् ॥ विचिन्त्यैवं मया ब्रह्मन् मृत्यु-लोकमुपेत्य च ॥ ३० ॥ कपालं रूपमास्थाय भिक्षामात्रेण याचिता ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन् वेद सत्यं ममाग्रतः ॥३१॥ पुनरेव मया प्रोक्तं देहि भिक्षां च सुंदरि। तया

परन्तु इसने अन्नदान नहीं किया है कि जिससे प्राणियोंकी बड़ी तृप्ति होती है सो हे मुनीश्वर ! यह विचार कर मैं मृत्युलोक में गया ॥ ३० ॥ और भिक्षुक का वेष धारण कर मैं भीख माँगने लगा ॥ तब ब्राह्मणी बोली ॥ हे महाराज ! आप कहाँ से आये हो ! मेरे सामने सत्य सत्य कहो ॥ ३१ ॥ परन्तु मैंने फिर भी यही कहा कि हे सुन्दरि ! मुझे भिक्षा दे । तब उसने बड़े क्रोध से एक मिट्टी का पिण्ड मेरे भिक्षा पात्र

में ॥ ३२ ॥ डाल दिया सो मैं तत्काल ही फिर अपने लोकको चला आया फिर बहुत कालके बाद वह तामसी व्रत करनेवाली ॥ ३३ ॥ अपने व्रत करने के प्रभाव से सदेह स्वर्ग को पहुँची तो उस मिट्टी के पिण्ड देने के प्रभाव से उसे रहने के लिये एक सुन्दर घर मिला ॥ ३४ ॥ परन्तु हे नारद ! उस घर में धान्य का भण्डार

कोपेन महता मृत्पिण्डस्तत्र भाजने ॥३२॥ क्षिप्तोयावदहं ब्रह्मन् पुनः स्वर्गं गतो द्विज ॥ ततः कालेन महता तापसी सुमहाव्रता ॥३३॥ सदेहा स्वर्गमायाता व्रतचर्या प्रभावतः ॥ मृत्पिंडस्य प्रभावेण गृहं प्राप्तं मनोरमम् ॥३४॥ परं तत्रैव विप्रर्षे धान्यकोष विवर्जितम् ॥ गृहं यावत्प्रवि-श्यैषा न किंचित्तत्र पश्यति ॥ ३५ ॥ तावद्गृहाद्विनिष्क्रम्य ममान्ते चागता द्विज ॥ क्रोधेन महता विष्टा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च ह्युपवासैरनेकशः ।

नहीं था और ज्योंही वह तापसी उस घरमें घुसी तो वहाँ धान्य का भण्डार उसने कुछ नहीं देखा ॥ ३५ ॥ तब वह ब्राह्मणी उस घरमें से बाहर निकलकर मेरे पास आई और बड़े क्रोध से वह बोली कि ॥ ३६ ॥ मैंने बहुत से कठिन कठिन व्रत और उपवास किये और सब देवताओं के प्रेरक विष्णुभगवान की आराधना किया

है ॥ ३७ ॥ परन्तु हे जनार्दन मेरे घरमें तो कुछ भी धान्य का भण्डार नहीं दिखाता। तब मैंने उससे कहा कि भा. टी.
ए. मा. तू जहाँ से आई है उसी घर को लौट जा ॥ बड़े बड़े कौतुक करनेवाली और सुन्दर तथा दिव्य रूप धारण
करके देवताओं की स्त्रियाँ तुझे देखने को आवेंगी ॥ ३९ ॥ तब तू षटतिला एकादशी का पुण्य लिये बिना

पूजयाराधितो देवः सर्वलोकस्य भावनः ॥ ४७ ॥ न तत्र दृश्यते किंचिद् गृहे मम जना-
३५ र्दन ॥ ततश्चोक्ता मया सा तु गृहं गच्छ यथागतम् ॥ ३८ ॥ आगमिष्यन्ति सुतरां
कौतूहलसमन्विताः ॥ द्रष्टुं त्वां देवपत्न्यस्तु दिव्यरूप समन्विताः ॥ ३९ ॥ द्वारं नोद्घाटय
विनां षट्तिलापुण्यवाचनात् ॥ एवमुक्ता गता सा तु यावद्वै मानुषी गृहम्॥ अत्रान्तरे समायाता
देवपत्न्यश्च नारद ॥ ४० ॥ ताभिश्च कथितं तत्र त्वां द्रष्टुं हि समागताः ॥ द्वारमुद्घाटय

किवाड़ मत खोलना ॥ जब मैंने इस प्रकार समझाया तब वह स्त्री अपने स्वर्गवाले घरमें लौट गई और हे ३५
नारद ! उसी समय में देवताओं की स्त्रियाँ उसे देखने आईं ॥ ४० ॥ उन स्त्रियों ने वहाँ आकर कहा कि
हे सुन्दर मुखवाली ! हम सब तुझे देखने आई हैं तू किवाड़ खोल दे तो हम सब तुझे देखें ॥ ४१ ॥ वह

तापसी बोली ॥ तुम सचमुच मुझे देखने आई हो तो मुझको षट्तिला एकादशी का पुण्य दो तो मैं किवाड़ खोलूँ ॥ ४२ ॥ षट्तिला एकादशी के व्रत का नाम सुनकर सब स्त्रियाँ चुप हो गईं एक भी न बोलीं फिर दूसरी ने कहा कि मैं इस स्त्री को अवश्य देखूँगी ॥ ४३ ॥ फिर द्वार खोल उन देवाङ्गनाओं ने उस तापसी

त्वं च पश्यामस्त्वां शुभानने ॥ ४१ ॥ मानुष्य उवाच ॥ यदि द्रष्टुं समायाताः सत्यं वाच्यं विशेषतः ॥ षट्तिलाया व्रतं पुण्यं द्वारोद्घाटनकारणात् ॥ ४२ ॥ एकापि नावदत्तत्र षट्तिलैकादशीव्रतम् ॥ अन्यया कथितं तत्र द्रष्टव्या मानुषी मया ॥ ४३ ॥ ततो द्वारं समुद्घाट्य दृष्टा ताभिश्च मानुषी ॥ न देवी न च गन्धर्वी नासुरी न च पन्नगा ॥ दृष्टा पूर्वं तथा नारी यादृशीयं द्विजर्षभ ॥ ४४ ॥ देवीनामुपदेशेन

को देखा न तो वह देवी है न गन्धर्वी है, न आसुरी, और न तो नागकन्या है । हे नारद ! जैसे मैंने उस तापसी को पहिले देखी था वैसेही वह दीख पड़ी ॥ ४४ ॥ फिर उस सत्य व्रत को करनेवाली ब्राह्मणी उन देवियों के उपदेश से भोग और मोक्ष को देनेवाली षटतिला एकादशी के व्रत को किया ॥ ४५ ॥ उस व्रत के प्रभाव

37

से क्षणभर में रूप और कान्ति से युक्त होगई और षट्तिला के पुण्य फल से उसका घर धन, धान्य, वस्त्र, सोना, चाँदी, आदि से भर गया ॥ ४६ ॥ इसमें अधिक तृष्णा नहीं करना चाहिये और धनका अभिमान छोड़ अपने वित्त के अनुसार तिल वस्त्र आदि का दान करे ॥ ४७ ॥ तो जन्म जन्म में मनुष्य निरोग रहता है

षट्तिलाया व्रतं कृतम् ॥ मानुष्या सत्य व्रतया भुक्तिमुक्ति फलप्रदम् ॥ ४५ ॥ रूपकान्ति समायुक्ता क्षणेन समवापसा ॥ धनं धान्यं च वस्त्रादि सुवर्णं रौप्यमेवच ॥ भवनं सर्व संपन्नं षट्तिलायाः प्रसादतः ॥ ५६ ॥ अतितृष्णा न कर्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ आत्मवित्तानुसारेण तिलान् वस्त्रादि दापयेत् ॥ ४७ ॥ लभते चैवमारोग्यं ततो जन्मनि जन्मनि ॥ दारिद्र्यं न च कष्टं च न च दौर्भाग्यमेव च ॥ ४८ ॥ न भवेद्वै द्विज-

और उसके घरमें दरिद्र, पीड़ा और किसी प्रकार का दुर्भाग्य भी नहीं होता ॥ ४८ ॥ हे द्विजोत्तम ! षट्तिला के व्रत करने से और हे ब्राह्मण ! तिलदान करने से आधि व्याधि और दारिद्र आदिकी पीड़ा नहीं होती इसमें सन्देह नहीं ॥ ४६ ॥ और दान करनेवाला मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है इसमें कुछ विचार नहीं

करना चाहिये हे मुनि श्रेष्ठ ! विधिपूर्वक दान करने से अनेक प्रकार के पाप मिटजाते हैं और किसी तरह का अनर्थ नहीं होता और न तो शरीर में कोई कष्ट होता है ॥ ५० ॥

॥ इति माघकृष्णैकादशी कथा माहात्म्यम् ॥

श्रेष्ठ षट्तिलायामुपोषणात् ॥ अनेन विधिना ब्रह्मन् तिलदानान्न संशयः ॥ ४६ ॥
मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ॥ दानं च विधिना सम्यक् सर्वपाप प्रणाशनम् ॥
नानर्थः कश्चिन्नायासः शरीरे मुनि सत्तम ॥ ५० ॥

अथ माघशुक्लैकादशी कथा प्रारंभः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्नादिदेव जगत्पते ॥ स्वेदजा अण्डजाश्चैव उद्भिजाश्च जरायुजाः ॥ १ ॥ तेषां कर्ता विकर्ता

॥ अथ माघशुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे प्रमेय ! हे आत्मस्वरूप ! हे आदिदेव ! हे जगत्पति ! स्वेदज, जो पसीना आदि शरीर के विकार से कृमि उत्पन्न होते हैं । अण्डज, जो पक्षी और मछली आदिके गर्भ से अंडे उत्पन्न होते हैं । जरायुज, मनुष्य को कहते हैं और उद्भिज, वृक्षादि

के नाम हैं ॥ यह चार प्रकार के जीव हैं ॥ १ ॥ उनके कर्ता, विकर्ता, पालन, और नाश करनेवाले आप ही हैं ॥ आपने माघ कृष्णपक्षकी षट्तिला एकादशी की कथा कही ॥ २ ॥ परन्तु शुक्ल पक्षमें जो एकादशी होती है उसे भी प्रसन्नता से कहिये । उसका क्या नाम है, क्या विधि है और उस दिन किस देवता की पूजा

त्वं पालकः क्षयकारकः ॥ माघस्य कृष्णपक्षेतु षट्तिला कथिता त्वया ॥ २ ॥ शुक्ला यै-कादशी तां च कथयस्व प्रसादतः ॥ किन्नाम कोविधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र शुक्ले माघस्य या भवेत ॥ जया नाम्नीति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ ४ ॥ पवित्रा पाप हन्त्री च कामदा मोक्षदा नृणाम् ॥ ब्रह्म हत्यापहन्त्री च पिशाचत्वं विनाशिनी ॥ नैव तस्या व्रते चीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम् ॥ ५ ॥ नातः

होती है ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजेन्द्र ! माघ शुक्ल की जो एकादशी होती है उसे भी कहता हूँ, माघ शुक्ल एकादशी का नाम जया है वह सब प्रकार के पापों को हरनेवाली है ॥ ४ ॥ वह बड़ी पवित्र, पाप दूर करनेवाली मनुष्यों को काम और मोक्ष को देनेवाली है, तथा ब्रह्म हत्या आदि पापों को और पिशाच आदि

योनियों को छुड़ानेवाली है उसका व्रत करने से मनुष्यों को नरक वास नहीं मिलता है ॥ ५ ॥ इससे बढ़कर कोई पापों को नाश करनेवाली, और मोक्षको देनेवाली नहीं है । इसलिये हे राजा ! उसे बड़े प्रयत्न से करना चाहिये ॥ ६ ॥ और हे राजसिंह ! पुराणों में कही हुई उसकी सुन्दर कथा सुनो । इसकी महिमा मैंने पद्म

पर तरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्येयं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
श्रूयतां राजशार्दूल कथा पौराणिकी शुभा ॥ पङ्कजाख्य पुराणेस्या महिमा कथितो मया
॥७॥ एकदा नाकलोके वै इन्द्रो राज्यं चकार ह ॥ देवाश्च तत्र सौख्येन निवसन्ति मनोरमे
॥८॥ पीयूषपाननिरता ह्यप्सरोगणसेविताः ॥ नन्दनं तु वनं तत्र पारिजातोपशोभितम्
॥९॥ रमयन्ति रमन्त्यत्र ह्यप्सरोभिर्दिवौकसः ॥ एकदा रममाणोऽसौ देवेन्द्रः स्वेच्छया नृप

पुराण में कही है ॥ ७ ॥ एक समय स्वर्ग में इन्द्र राज्य करता था और उस रमणीक स्थान में देवता सुख से रहते थे ॥ ८ ॥ वे अमृत पीते और अप्सरागण उनकी सेवा करतीं थीं और वहाँ न्द्र के नन्दन वन में पारिजात नाम कल्पवृक्ष शोभायमान था ॥ ९ ॥ वहाँ देवता अप्सराओं के साथ विहार करते थे । हे राजा !

एक समय यह इन्द्र भी अपनी इच्छा से विहार करने गया ॥ १० ॥ और वह बड़े आनन्द से नाचने लगा ॥ और वहाँ पचास करोड़ नायिकाओं के संग गंधर्वगण गान करते थे, उनमें गंधर्वों के राजा पुष्पदन्त भी थे॥११॥ उस सभामण्डल में चित्रसेन की पुत्री और चित्र सेन की स्त्री मालिनी भी थी ॥ १२ ॥ और मालिनी से

॥१०॥ नर्तयामास हर्षात्स पञ्चाशत्कोटिनायकाः ॥ गन्धर्वास्तत्र गायन्ति गन्धर्वः पुष्पदन्तकः ॥ ११ ॥ चित्रसेनश्च तत्रैव चित्रसेनसुता तथा ॥ मालिनीति च नाम्नातु चित्रसेनस्य कामिनी ॥ १२ ॥ मालिन्यां तु समुत्पन्नः पुष्पवानिति नामतः ॥ तस्य पुष्पवतः पुत्रो माल्यवान्नाम नामतः ॥ १३ ॥ गन्धर्वी पुष्पवत्याख्या माल्यवत्यतिमोहिता । कामस्य च शरैस्तीक्ष्णै र्विद्धाङ्गी सा बभूवह ॥ १४ ॥ तया भावकटाक्षैश्च माल्यवांस्तु वशीकृतः ॥

उत्पन्न हुआ चित्रसेनका पुत्र पुष्पवान् था और पुष्पवान् का पुत्र माल्यवान् भी था ॥ १३ ॥ उस माल्यवान् के ऊपर पुष्पवती नाम गन्धर्वी बड़ी मोहित होगई और कामदेव के तीखे बाणों से उसका शरीर विधगया ॥ १४ ॥ और पुष्पवती ने हाव भाव कटाक्षों से माल्यवान् को वश में करलिया क्योंकि वह सुन्दरता और

रूपकी खान थी हे राजन् ! अब उसके रूपको सुनो ॥१५॥ उसकी भुजायें ऐसीथीं कि मानो कामदेवने कंठमें डालने के लिये फाँसी बनाई है । उसका मुख चन्द्रमाके समान और बड़े बड़े नेत्र कान थे ॥१६॥ हे राजा ! वह दोनों कानोंमें सुन्दर कुण्डल पहिरे थी अर्थात् उत्तम कुण्डल से उसके कान शोभायमान थे । और कण्ठमें पहिरने

लावण्य रूप सम्पत्त्या तस्या रूपं नृप शृणु ॥ १५ ॥ बाहू तस्यास्तु कामेन कण्ठपाशौ कृता-विव ॥ चन्द्रवद्वदनं तस्या नयने श्रवणायते ॥१६॥ कर्णौ तु शोभिता तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम ॥ कण्ठो ग्रैवेय संयुक्तो दिव्याभरण भूषितः ॥ १७ ॥ पीनोन्नतौ कुचौ तस्यास्तौ हेमकलशाविव ॥ अतिक्षामं तदुदरं मुष्टिमात्रं च मध्यमम् ॥ १८ ॥ नितम्बौ विपुलौ तस्या विस्तीर्णं जघनस्थलम् ॥ चरणौ शोभमानौ तौ रक्तोत्पलसमद्युति ॥ १६ ॥ ईदृश्यां

योग्य सुन्दर आभूषणों से उसका कण्ठ शोभित था ॥ १७ ॥ सुवर्ण कलश के समान उसके विशाल और ऊँचे स्तन थे । उसका उदर (पेट) कृश (पतला) और मुट्ठीमें आजानेवाली पतली कमर थी ॥ १८ ॥ और ऊँचे उसके नितंब (चूतड़) थे तथा जंघा लंबी थी, और लाल कमल के समान लाल और कोमल उसके चरण

40

मा. टी.

ए. मा.

की कान्ति थी ॥ १९ ॥ ऐसी पुष्पवती पर वह माल्यवान् भी मोहित हो गया । और वे दोनों इन्द्र को प्रसन्न करनेके लिये सभा भवनमें नाचने आये ॥२०॥ और अप्सराओं के साथ मिलकर वे दोनों गानेलगे परन्तु चित्त में भ्रम (विकार उत्पन्न) होनेसे उनका गाना शुद्ध नहीं निकलता था॥२१॥और कामदेव के बाणों से वशीभूत

पुष्पवत्यां स माल्यवानपि मोहितः । शक्रस्य परितोषाय नृत्यार्थं तौ समागतौ ॥२०॥ गायमानौ च तौ तत्र ह्यप्सरोगणसंगतौ ॥ न शुद्धगानं गायेतां चित्त भ्रम समन्वितौ ॥ २१ ॥ बद्ध दृष्टी तथान्योन्यं कामबाण वशंगतौ ॥ ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः ॥२२॥ काल क्रियाणां संलोपात्तथा गीतावभंजनात् ॥ चिन्तयित्वा तु मघवानवज्ञानं तथाऽऽत्मनः ॥ २३ ॥ कुपितश्च तयोरित्थं शापं दास्यन्निदंजगौ ॥ धिग्वां पापरतौ मूढावाज्ञाभंग

३९

होनेके कारण आपसमें दृष्टि मिलाने लगे । तब इन्द्रने भी उन दोनोंका परस्पर मनलगा हुआ जान लिया॥२४॥ और ताल स्वर की क्रिया ठीक न चलने से और गानकी गति भ्रष्ट होजाने से इन्द्रने अपना अपमान विचारकर॥२३॥ तव इन्द्र क्रोधित होकर वह इस प्रकार शाप देने के लिये तयार हुए कि तुम दोनों बड़े पापी और मूर्ख हो

और तुम दोनों ने मेरी आज्ञा भंग किया है ॥ २४ ॥ तुम दोनों स्त्रीपुरुष का रूप धारण करके पिशाच हो जाओ और मृत्युलोक में जाकर अपने किये कर्म का फल भोग करो ॥ २५ ॥ इस प्रकार वे दोनों इन्द्रके शाप से दुःखी और मोहित होकर हिमालय पर्वतपर आये ॥२६॥ दोनों को पिशाच योनि में हो जाने से बड़ा दुःख

कृतं मम ॥२४॥ युवां पिशाचौ भवतं दम्पतीरूप धारिणौ ॥ मृत्युलोक मनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणः फलम् ॥ २५ ॥ एवं मघवता शप्तावुभौ दुःखितमानसौ ॥ हिमवन्त मनुप्राप्ता-विन्द्रशाप विमोहिता ॥ २६ ॥ उभौ पिशाचतां प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च ॥ सन्तप्त मानसौ तत्र महाकृच्छ्रगतावुभौ ॥ २७ ॥ गन्धं रसं च स्पर्शं च न जानीतो विमोहितौ ॥ पीड्यमानौ तु दाहेन देहपातकरेण च ॥ २८ ॥ तौ न निद्रा-

41

हुआ और मनमें कष्ट को उठाकर उसी पर्वतपर रहने लगे ॥ २७ ॥ वे दोनों ऐसे पीड़ित हो गये कि उनको गंध, रस, स्पर्श, आदि का कुछ भी ज्ञान न रहा और वह देह को पात करनेवाले दाह से बड़े पीड़ित हुए ॥२८॥ और वे अपने कर्म से ऐसे पीड़ित हुए कि उन दोनों को निद्रा का सुख भी नष्ट हो गया। फिर वे दोनों आपस

में बात करते हुए उसी पवत की गुफा में विचरने लगे ॥ २९ ॥ परन्तु अत्यन्त शीत के कारण बड़े दुःखी हो दाँत खट खटाने लगे और दोनों के अंग में रोमांच हो आया अर्थात् शीत से शरीर के रोम फूल आये ॥ ३० ॥ और शीत की पीड़ा से दुःखी हो पिशाच ने अपनी स्त्री पिशाचिनी से कहा कि तुम हम दोनों ने

सुखं प्राप्तौ कर्मणा तेन पीडितौ ॥ परस्परं वादमानौ चेरतुर्गिरिगह्वरम् ॥ २९ ॥
पीड्यमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ ॥ दन्तघर्षं प्रकुर्वाणौ रोमाञ्चितवपुर्धरौ ॥ ३० ॥
ऊचे पिशाचः शीतार्तः स्वपत्नीं तु पिशाचिकाम् ॥ किमावाभ्यां कृतं पाप मत्यन्तं दुःखदायकम्
॥ ३१ ॥ येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृत कर्मणा ॥ नरकं दारुणं मन्ये पिशाचत्वं च गर्हितम्
॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैव समाचरेत् ॥ इति चिन्तापरौ तत्र ह्यास्तां दुःखेन

अत्यन्त दुःख को भुगानेवाला कौनसा पाप किया है ॥ ३१ ॥ कि जिस अपने अदृष्ट (बुरे कर्म) से पिशाच की योनि को पाया है । मेरी समझ में नर्क तो कठिन है ही परन्तु पिशाच होना बहुत बुरा है ॥ ३२ ॥ इस लिये जहाँ तक हो पाप नहीं करना चाहिये । दुःख से दुर्बल वे दोनों पिशाच पिशाचिनी यह 'चिन्ता करते ही

थे कि ॥ ३३ ॥ दैवयोग से उन्हें माघ शुक्ला एकादशी आई कि जो जया नाम से विख्यात और सब तिथियों में उत्तम है ॥ ३४ ॥ उस दिन उन दोनों ने वायु का भी आहार नहीं किया और हे राजन् ! उन्होंने जल भी नहीं पिया ॥ ३५ ॥ और न तो उन्होंने जीवों की हिंसा किया और न तो फल पत्र का भक्षण किया वे दोनों

कर्शितौ ॥ ३३ ॥ दैवयोगात्तयोः प्राप्ता माघस्यैकादशीसिता ॥ जयानाम्नीति विख्याता तिथिनामुत्तमातिथिः ॥ ३४ ॥ तस्मिन् दिने तु सम्प्राप्ते वाताहार विवर्जितौ ॥ आशा ते तत्र नृपते जलपान विवर्जितौ ॥ ३५ ॥ कृतो न जीवघातश्च न पत्र फल भक्षणम् ॥ अश्वत्थस्य समीपे तु पतितौ दुःख संयुतौ ॥ ३६ ॥ रविरस्तं गतौ राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः ॥ प्राप्ता चैव निशा घोरा दारुणा शीतकारिणी ॥ ३७ ॥ वेपमानौ तु तौ तत्र हिमेन च जड़ी

दुःखी होकर पीपल वृक्ष के नीचे पड़ रहे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उन दोनों के वहाँ पड़े सूर्य अस्त हो गये और अब बड़ी कठिन शीतकाल की अत्यन्त भय देनेवाली रात्रि आई ॥ ३७ ॥ वे दोनों उसी वृक्ष के नीचे शीतसे थर थर काँपने लगे और शीत के उग्र प्रभाव से जकड़ गये तौ भी आपस में शरीर से शरीर भुजा से

42

भुजा मिलाकर वहाँ पड़े रहे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उन दोनों को न तो निद्रा आई और न तो सुरत का सुख मिला हे राजसिंह ! वे दोनों पिशाच पिशाचिनी इन्द्र के शाप से बड़े दुःखी हुए ॥ ३९ ॥ इस प्रकार दुःख भोगते२ उनकी रात्रि बीत गई और जब वे दोनों जया एकादशी का व्रत और रात्रि को जागरण कर चुके ॥ ४० ॥

कृतौ ॥ परस्परेण संलग्नौ गात्रयोर्भुजयोरपि ॥३८॥ न निद्रा न रतिं तत्र न तौ सौख्य-मविन्दताम् ॥ एवं तौ राजशार्दूलौ शापेनेन्द्रस्य पीडितौ ॥ ३९ ॥ इत्थं तयोर्दुखितयोर्निर्जे-गाम तदा निशा ॥ जयायास्तु व्रते चीर्णे रात्रौ जागरणे कृते ॥ ४० ॥ तयोर्व्रतप्रभावेण यथा ह्यासीत्तथाभृणु ॥ द्वादशी दिवसे प्राप्ते ताभ्यां चीर्णे जयाव्रते ॥ ४१ ॥ विष्णोः प्रसा-दान्नृपतेः पिशाचत्वं तयोर्गतम् ॥ पुष्पवती माल्यवांश्च पूर्वरूपौ बभूवतुः ॥ ४२ ॥

तो इस व्रत के प्रभाव से उन दोनों की जो दशा हुई उसे सुनो । जब उन दोनों का जया एकादशी का व्रत हो चुका और द्वादशी आई ॥४१॥ तो हे राजा ! विष्णु भगवान् की कृपा से उनकी पिशाच योनि छूट गई और पुष्पवती माल्यवान् का गन्धर्वों के समान सुन्दर स्वरूप पहिले की तरह हो गया ॥४२॥ और माल्यवान् पुष्प-

वती में पहिले के समान स्नेह होगया और उनके शरीर पहले के समान अलंकार युक्त होगये और अप्सरा गण शोभित विमान में बैठकर ॥ ४३ ॥ तुंबुरु आदि गन्धर्व उनकी स्तुति करने लगे और वे दोनों हावभाव से युक्त हो सुन्दर स्वर्ग को गये ॥ ४४ ॥ और वे इन्द्र के सन्मुख जाकर प्रसन्नता पूर्वक उनको प्रणाम किया तब उन

पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालंकारसंयुतौ ॥ विमान मधिरूढौ तावप्सरोगण सेवितौ ॥ ४३ ॥
स्तूयमानौ तु गन्धर्वैस्तुंबुरु प्रमुखैस्तथा ॥ हावभाव समायुक्तौ गतौ नाके मनोरमे ॥ ४४ ॥
देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रणामं चक्रतुर्मुदा ॥ तथा विधौतुतौदृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत ॥ ४५ ॥
इन्द्र उवाच ॥ वदतं केन पुण्येन पिशाचत्वं विनिर्गतम् ॥ मम शापवशं प्राप्तौ केन देवेन मोचितौ ॥ ४६ ॥ माल्यवानुवाच ॥ वासुदेव प्रसादेन जयायाः सुव्रतेनच ॥ पिशाचत्वं

43

दोनों को इस प्रकार देखकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥४५॥ इन्द्रदेव बोले । अरे ! तुम दोनों यह तो कहो कि कौन ऐसे पुण्य से तुम दोनों की पिशाच योनि छूटी है ॥ मैंने तो तुम दोनों को शाप दिया था फिर किस देवताने तुम्हें शाप से उद्धार किया है ॥ ४६ ॥ माल्यवान बोला ॥ कि भगवान् कृष्ण के प्रसाद से और जया

नाम एकादशी के व्रत से और दृढ़ भक्ति के प्रभाव से हे स्वामी ! हम सब इस पिशाच योनि से छूटे हैं ॥४७॥
माल्यवान् का यह वचन सुनकर इन्द्र फिर बोले कि अब तो तुम पवित्र और दूसरों को पवित्र करनेवाले और
मुझसे भी पूजा और स्तुति के योग्य हो गये हो ॥ ४८ ॥ तुम एकादशी का व्रत और विष्णु की भक्ति में

गतं स्वामिन् सत्यं भक्ति प्रभावतः ॥ ४७ ॥ इति श्रुत्वावचस्तस्य प्रत्युवाच सुरेश्वरः ॥
पवित्रौ पावनौ जातौ वन्दनीयौ ममापि च ॥ ४८ ॥ हरिवासरकर्तारौ विष्णु भक्ति पराय-
णौ ॥ हरिभक्तिं रता ये च शिवभक्ति रतास्तथा ॥ ४९ ॥ अस्माकमपि ते मर्त्याः पूज्या
वंद्यान संशयः ॥ विहरस्वयथा सौख्यं पुष्पवत्या सुरालये ॥ ५० ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्
कर्तव्यो हरिवासरः ॥ जयानामेति राजेन्द्र ब्रह्महत्या पहारकः ॥ ५१ ॥ दत्तानि सर्वदानानि

परायण हो ॥ जिन मनुष्यों की विष्णु वा शिवजी में भक्ति है वे मनुष्य हमारे भी पूजा और स्तुति के योग्य
हैं ॥ ४९ ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है अब तुम स्वर्ग में इस पुष्पवती के साथ सुख से आनन्द करो ॥ ५० ॥
हे राजा ! इसलिये इस एकादशी का व्रत करना चाहिये और हे राजेन्द्र ! यह जया नाम एकादशी ब्रह्म

ब्रह्म-हत्या को नाश करनेवाली है ॥ ५१ ॥ हे राजन्! जिसने इस जया एकादशी का व्रत किया उसने सब प्रकार के दान और महादान को किया, सब यज्ञों को कर चुका और सब तीर्थों में स्नानकर चुका॥५२॥ जो कोई भक्ति और श्रद्धा से जया एकादशी का व्रत करता है वह सैकड़ों करोड़ों कल्प तक विष्णु लोक में

यज्ञास्तेन कृता नृप ॥ सर्वं तीर्थेषु सुस्नातः कृतं येन जयाव्रतम् ॥ ५२ ॥ यः करोति नरो भक्त्या श्रद्धायुक्तो जयाव्रतम् ॥ कल्पकोटिशतं यावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पठना च्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोम फलं लभेत ॥ ५३ ॥ इति श्री भविष्योत्तर पुराणे श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवादे मा० शु० काद० माहा० सं० ॥

अथ फाल्गुन कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे किं

आनन्द भोगता है यह सत्य है और इसके माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से हे राजा! अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है ॥५३॥ इति माघ शुक्लैकादश्या जया नाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ फाल्गुन कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे भगवन्! फाल्गुन के कृष्णपक्ष की एकादशी-

का क्या नाम है हे वासुदेव ! हे कृपासिन्धु ! वह आप प्रसन्न होकर कहिये ॥१॥ श्रीकृष्णजी बोले हे राजेन्द्र !
मैं फाल्गुन कृष्ण एकादशी के माहात्म्य को कहूँगा उसका नाम विजया है उसका व्रत करनेवालों की सदा
विजय होती है ॥२॥ उसके व्रत का माहात्म्य सब पाप को नाश करनेवाला है और इस एकादशी के व्रत को

नामैकादशी भवेत् ॥ वासुदेव कृपासिन्धो कथयस्व प्रसादतः ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥
कथयिष्यामि राजेन्द्र कृष्णाया फाल्गुनी भवेत् ॥ विजयेति च सा प्रोक्ता कर्त्तृणां जयदा
सदा ॥ २ ॥ तस्याश्च व्रत माहात्म्यं सर्वशापहरं परम् ॥ नारदः परिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमला-
सनम् ॥ ३ ॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयानाम या तिथिः ॥ तस्या व्रतं सुरश्रेष्ठ कथयस्व
प्रसादतः ॥ ४ ॥ इति पृष्टो नारदेन प्रत्युवाच पितामहः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्या-

नारदजी ने कमलासन ब्रह्माजी से पूँछा था ॥ ३ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! फाल्गुण के कृष्ण पक्ष के विजया नाम
एकादशी का व्रत प्रसन्नतापूर्वक कहिये ॥ ४ ॥ जब नारदजी ने ब्रह्माजी से इस प्रकार पूँछा तो ब्रह्माजी बोले
हे नारद ! सुनो मैं सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाली उस कथा को कहूँगा ॥ ५ ॥ यह व्रत प्राचीन और पवित्र

है और पापों को नाश करनेवाला है हे द्विज ! यह व्रत मैंने किसीसे नहीं कहा था ॥ ६ ॥ यह विजया एका-
दशी मनुष्यों को विजय देनेवाली है इसमें सन्देह नहीं है। जब रामचन्द्रजी १४ वर्ष के लिये तपोवन
को गये थे ॥ ७ ॥ और सीता लक्ष्मण सहित पंचवटी वन में निवास किये थे, जब महापुरुष मर्यादा पुरुषो-

मि कथां पाप हरां पराम् ॥ ५ ॥ पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम् ॥ यत्र कस्य-
चिदाख्यातं मयैत द्विजया व्रतम् ॥ ६ ॥ जयं ददाति विजया नृणां चैव न संशयः ॥
रामस्तपोवनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश ॥ ७ ॥ न्यवसत्पञ्चवट्यां तु ससीतश्च सलक्ष्मणः ॥
तत्रैव वसतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥ ८ ॥ रावणेन हृता भार्या सीता नाम्नी तपस्विनी
तेन दुःखेन रामोऽसौ मोहमभ्यागतस्तदा ॥ ९ ॥ भ्रमन् जटा युषं तत्र ददर्श विगतायुषम्

त्तम श्रीरामचन्द्रजी पंचवटी में निवास किये थे तब ॥ ८ ॥ उनकी तपस्विनी सीता नाम स्त्री को राक्षसों के
राजा रावण ने हरण किया था। उस समय उस दुःख से उन रामचन्द्रजी को बड़ा मोह हुआ ॥ ९ ॥ और
वन में विचरते विचरते उन्होंने गिद्धराज जटायु को मृत शय्या पर पड़ा देखा तब वह गिद्धराज जटायु श्री

रामचन्द्र जी को सब समाचार बताकर शरीरसे प्राण का वियोग कर दिया अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥ १० ॥ इसके उपरान्त वन में घूमते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने कबन्ध राक्षस को मारा ॥ और सुग्रीव वानर के साथ नवीन मित्रता किये ॥ ११ ॥ और श्रीरामजी के लिये सुग्रीव ने वानरों की सेना इकट्ठी किया । फिर

राज्ञे विज्ञाप्य तत्सर्वं सोऽपिमृत्युवशं गतः ॥ १० ॥ कबन्धो निहतः पश्चाद्भ्रमतारण्यमध्यतः
सुग्रीवेण समं सख्यमजर्यं समजायत ॥ ११ ॥ वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि वै ॥
ततो हनूमता दृष्टा लंकोद्याने तु जानकी ॥१२॥ रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम् ॥
समेत्य रामेण पुनः सर्वं तत्र निवेदितम् ॥ १३ ॥ अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यं चैव हनूमतः
सुग्रीवानुमते नैव प्रस्थानं समरोचयत् ॥ १४ ॥ स गत्वा वानरैः सार्द्धं तीरं नदनदीपतेः ॥

हनुमान्जीने लंकापुरी के अशोक वन में श्रीराम प्रिया जानकीजी को देखा ॥१२॥ और उनको श्रीरामजी का वृत्तान्त कहकर महत्कार्य किया ॥ फिर श्रीरामजी के पास जाकर श्रीजानकीजी का सब वृत्तान्त सुनाया॥१३॥ फिर श्रीरामजी ने हनुमान्जी से समाचार को सुनकर सुग्रीव की सलाह से लंकापुरी को चलने के लिये प्रस्तुत

हुए ॥ १४ ॥ और वानरों को साथ लेकर समुद्र के किनारे जाकर वानरों को प्यार करनेवाले श्रीरामजी समुद्र को अगाध और दुस्तर देख दुःखी हुए ॥ १५ ॥ फिर आँखें डबडबाकर लक्ष्मणजी से यह बात कहे कि हे लक्ष्मण किस पुण्य के प्रभाव से इस समुद्र के पार होवेंगे ॥ १६ ॥ इसमें अथाह जल भरा है और

दृष्ट्वाब्धिं दुस्तरं रामो विस्मितो भूत्कपि प्रियः ॥ १५ ॥ प्रोत्फुल्ल लोचनो भूत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत ॥ सौमित्रे केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः ॥ १६ ॥ अगाध सलिलैः पूर्णो नक्रैर्भीमैः समाकुलः ॥ उपायं नैव पश्यामि येनैव सुतरो भवेत् ॥ १७ ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ आदिदेवस्त्वमेवासि पुराणपुरुषोत्तम ॥ वकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्तते द्वीपमध्यतः ॥ १८ ॥ अस्मात्स्थानाद्योजनार्धमाश्रमस्तस्यराघव ॥ अनेन दृष्टा ब्रह्माणो बहवो रघुनन्दन ॥ १९ ॥

यह भयंकर मगर घड़ियालों से परिपूर्ण हैं अब मुझे कोई उपाय नहीं सूझता कि जिससे इस सागर से अच्छी तरह तर जायँ ॥ १७ ॥ लक्ष्मणजी बोले ॥ आप तो आदि देव नारायण और पुराण पुरुषोत्तम हैं तौ भी इस द्वीप के मध्य में वकदाल्भ्य नाम के मुनि रहते हैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! यहाँ से आधे योजन अर्थात् दो कोश

46

पर उनका आश्रम है हे रघुनन्दन ! इन मुनिने बहुत से ब्रह्मा को देखे हैं ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! उनके पास जाकर आप उनसे पूछिये क्योंकि वे महर्षियों में श्रेष्ठ और बड़े पुराने महर्षि हैं ॥ लक्ष्मणजी का यह सुन्दर वचन सुनकर ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी बकदाल्भ्य नाम महर्षि के दर्शन करने को गये, और वहाँ जाकर

तं पृच्छ गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषि पुंगवम् ॥ इति वाक्यं ततः श्रुत्वा लक्ष्मणस्याति शोभनम् ॥ २० ॥ जगाम राघवो द्रष्टुं बकदाल्भ्यं महामुनिम् ॥ प्रणनाम मुनिं मूर्ध्ना रामो विष्णुमिवामराः ॥ २१ ॥ मुनिर्ज्ञात्वा ततो रामं पुराण पुरुषोत्तमम् ॥ केनापि कारणे नैव प्रविष्टं मानुषी तनूम् ॥ २२ ॥ उवाच स ऋषिस्तत्र कुतो राम तवागमः ॥ रामउवाच ॥ त्वत्प्रसादादहो विप्र वरुणालय सन्निधिम् ॥ २३ ॥ आगतोऽस्मि ससैन्योऽत्र

रामचन्द्रजी ने मुनिको शिरसा प्रणाम किया जैसे देवगण विष्णु भगवान को प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥ मुनिने श्रीरामचन्द्रजी को पुराण पुरुषोत्तम जानकर यह जाना कि इन्होंने किसी कारण से मनुष्य का रूप धारण किया है ॥२२॥ फिर महर्षि बोले ॥ कि हे रामजी ! आपका आना यहाँ कैसे हुआ है ॥ रामचन्द्रजी बोले ॥

हे मुनीश्वर ! आपकी कृपासे समुद्र के तटपर ॥ २३ ॥ बानरों की सेना को साथ लेकर राक्षसों सहित उनकी पुरी लंकाको विजय करने आया हूँ । अब आपकी कृपासे जैसे मैं इस दुस्तर समुद्र से तरजाऊँ ॥ २४ ॥ हे मुनि ! उस उपाय को कहिये और सुव्रत मुझे आशीर्वाद दीजिये इसी कारण से मैं आपके दर्शन के लिये

लंकां जेतुं स राक्षसान् ॥ भवतश्चानुकूल्येन तीर्यतेऽब्धिर्यथामया ॥ २४ ॥ तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ एतस्मात्कारणात देव द्रष्टुं त्वाहमुपागतः ॥ २५ ॥ मुनि-रुवाच ॥ कथयिष्याम्यहं राम व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति ॥ २६ ॥ लंकां जित्वा राक्षसांश्च दीर्घां कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ एकाग्र मानसो भूत्वा व्रतमेत-त्समाचर ॥ २७ ॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशी भवेत् ॥ तस्या व्रते कृते राम

यहाँ आया हूँ ॥२५॥ मुनि बोले ॥ हे राम ! मैं तुम्हें सब व्रतों में से एक उत्तम व्रत कहूँगा कि जिसको करने से तुम्हारी एक साथ विजय होगी ॥ २६ ॥ और लंका तथा राक्षसों को जीतकर तुम बड़ी कीर्ति को प्राप्त होओगे तुम चित्तको एकाग्र करके इस व्रत को करो ॥ २७ ॥ फाल्गुन के कृष्ण पक्षकी एकादशी का नाम

47

विजया है हे रामजी ! उसका व्रत करने से तुम्हारी विजय होगी ॥२८॥ और निश्चय बानरों की सेना सहित तुम समुद्र के पार हो जाओगे हे रामजी । इस व्रत की विधि को सुनो यह व्रत सब से बड़े फलका देनेवाला है ॥ २९ ॥ हे रामजी । अब इस व्रत की विधि को सुनिये कि दशमी के दिन सुवर्ण चाँदी

विजयस्ते भविष्यति ॥ २८ ॥ निःसंशयं समुद्रं च तरिष्यसि स बानरः ॥ विधिस्तु श्रूयतां राम व्रतस्यास्य फलप्रदः ॥ २९ ॥ दशमी दिवसे प्राप्ते कुंभमेकं च कारयेत् ॥ हैमं वा राजतं वापि ताम्रं वाप्यथ मृन्मयम् ॥ ३० ॥ स्थापयेत्स्थण्डिले कुम्भं जलपूर्णं सपल्लवम् ॥ सप्तधान्यान्यधस्तस्य यवानुपरि विन्यसेत् ॥ ३१ ॥ तस्योपरिन्यसेद्देवं हैमं नारायणं प्रभुम् ॥ एकादशी दिने प्राप्ते प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥ ३२ ॥ निश्चले स्थापिते कुंभे गन्धमाल्यानु-

वा ताँबेका वा मिट्टी का एक घट बनावे ॥ ३० ॥ उस घड़े में जलभर के उसमें पंचपल्लव आदिको छोड़ कर वेदी पर रखदेवे और उस घड़े के नीचे सप्तधान्य और उसके ऊपर ताँबेकी किसी कटोरी में यव भर कर उसे ढाँपदेवे ॥ ३१ ॥ फिर उस घट पर नारायण की सुवर्ण की मूर्ति स्थापित करे जब एकादशी का दिन आवे

तो प्रातः काल स्नान करे ॥ ३२ ॥ फिर कुंभ को निश्चल स्थापित करके उस पर गन्ध माला आदिको सम-र्पण करे और फिर गन्ध धूप दीप नैवेद्य और ऋतु में होने वाले अनेक प्रकार के ॥ ३३ ॥ फल अनार नारि-यल आदि से अच्छी तरह विष्णु भगवान् का पूजन करे हे रामजी। उस घटके सामने सहर्ष दिनको

लेपिते ॥ गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ ३३ ॥ दाडिमैर्नालिकेरैश्च पूजयेच्च विशेषतः ॥ कुंभाग्रे तद्दिनं राम नेतव्यं भक्ति भावतः ॥ ३४ ॥ रात्रौ जागरणं तत्र तस्याग्रे कारयेद्बुधः ॥ द्वादशी दिवसे प्राप्ते मार्तण्डस्योदये नृप ॥ ३५ ॥ नीत्वा कुंभं जलोद्देशे नद्यां प्रस्रवणे तथा ॥ तड़ागे स्थापयित्वा वा पूजयित्वा यथा विधिः ॥ ३६ ॥ दद्यात्स दैवतं कुम्भं ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ कुंभेन सह राजेन्द्र महादानानि दापयेत् ॥ ३७ ॥ अनेन

बितावें ॥ ३४ ॥ फिर उसी घटके सामने भक्ति भाव से रात्रिको जागरण करे। हे रामजी ! द्वादशी के दिन जब सूर्य उदय हो जावे ॥ ३५ ॥ तो उस घटको जलके किनारे लेजाकर उसे नदी में वा तालाब में विसर्जित कर देवे अथवा उसे स्थापन कर फिर भी उसका यथा विधि पूजन करके ॥ ३६ ॥ उस घट को भगवान् की मूर्ति

48

सहित किसी वेदपाठी ब्राह्मण को दान करे हे राजेन्द्र राम ! उस कुंभ के साथ और भी कुछ महादान देवे ॥३७॥
हे राम ! इस विधि से अपनी सेना सहित बड़े प्रयत्न से इस व्रतको करो तुम्हारी विजय होगी ॥ ३८ ॥ यह
बात सुनकर श्रीरामजी ने वैसाही किया और व्रतको करने से श्रीरामजी का विजय हुआ ॥३९॥ सो हे रामजी !

विधिना राम यूथपैः सह संगतः ॥ कुरु व्रतं प्रयत्नेन विजयस्ते भविष्यति ॥ ३८ ॥ इति
श्रुत्वा वचो रामोयथोक्तमकरोत्तथा ॥ कृते व्रते सविजयी बभूव रघुनन्दनः ॥ ३९ ॥
अनेन विधिना राजन् ये कुर्वन्ति नरा व्रतम् ॥ इह लोके जयस्तेषां परलोकस्तथाऽक्षयः
॥ ४० ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्यं विजया व्रतम् ॥ विजयायाश्च माहात्म्यं सर्व
किल्विषनाशनम् । पठनाच्छ्रवणात्तस्य वाजपेयफलं लभेत ॥४१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे कृष्ण

इस विधिसे जो मनुष्य इस व्रतको करते हैं तो इस लोक में उनकी विजय होती है और उन्हें अक्षय फल
मिलता है ॥ ४० ॥ हे राजन् ! इसलिये विजया का व्रत करना चाहिये और विजया का माहात्म्य सब पापों
को नाश करनेवाला है ॥ इसको पढ़ने व सुनने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ ४१ ॥

अथ फाल्गुन शुक्लैकादशी कथा ॥ मान्धाता बोले ॥ हे ब्रह्मदेव ! हे महाभाग ! हे ब्रह्मयोनिवसिष्ठ ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपाकर जिससे मेरा कल्याण हो ऐसा रहस्य और इतिहास सहित सब व्रतों में से उत्तम व्रतको कहता हूँ ॥ १ ॥ वसिष्ठजी बोले ॥ अब मैं तुमसे सब व्रतों के फलको देनेवाला यह व्रत कहता हूँ

युधिष्ठिर संवादे फाल्गुन कृष्णैकादश्या विजया नाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥ अथ फाल्गुण कृष्णैकादश्या विजया नाम्न्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ फाल्गुण शुक्लैकादशी कथा ॥ मान्धातोवाच ॥ वद ब्रह्मन् महाभाग येन श्रेयो भवेन्मम ॥ कृपया तद्ब्रह्मयोने यद्यनुग्राह्यता मयि ॥१॥ सरहस्यं सेतिहासं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ वसिष्ठउवाच ॥ कथयाम्यधुना तुभ्यं सर्व व्रत फलप्रदम् ॥ २ ॥ आमलक्या व्रतं राजन्महापातक

॥ २ ॥ हे राजा ! आमलकी नाम एकादशी का व्रत अनेक तरह के पातकों को नाश करनेवाला है और सबको मोक्षका देनेवाला और हजार गौ देनेके समान फलको देनेवाला है ॥३॥ यहाँ मैं एक पुराना इतिहास कहता हूँ कि जैसे जीवों की हिंसा करने में लगा हुआ व्याध परम गति को पाया था ॥ ४ ॥ वैदेशिक नाम एक नगर है उसमें

49

बड़े हृष्ट पुष्ट अर्थात् मोटे ताजे मनुष्य रहते थे और उन मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र ये चारो ही वर्ण थे ॥ ५ ॥ हे राजसिंह ! वह बड़ा सुन्दर नगर था, उसमें बड़े ऊँचे स्वरसे वेदपाठ होता था और उस नगर में कोई नास्तिक और बुरा कर्म करनेवाला न था ॥ ७ ॥ उस पुर का चन्द्रवन्शी पाशविन्दव नाम का राजा

नाशनम् ॥ मोक्षदं सर्व लोकानां गोसहस्र फलप्रदम् ॥ ३ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीम मितिहासं पुरातनम् ॥ यथा मुक्ति मनुप्राप्तोऽव्याधो हिंसा समन्वितः ॥ ४ ॥ वैदिशं नाम नगरं हृष्ट पुष्ट जनावृतम् ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियै वैश्यैः शूद्रैश्च समलंकृतम् ॥ ५ ॥ रुचिरं नृपशार्दूल ब्रह्मघोष निनादितम् ॥ न नास्तिको दुष्कृतिकस्तास्मिन् पुरवरे सदा । ६ ॥ तत्र सोमान्वयो राजा विख्यातः पाशविन्दवः ॥ राजश्चैत्ररथोनाम धर्मात्मा सत्य संगरः ॥ ७ ॥ नागायुतबलः

प्रसिद्ध था और हे राजा ! उसी वंश में चैत्ररथ नाम राजा बड़ा धर्मात्मा और सत्यवादी हुआ ॥७॥ उस लक्ष्मीवान् चैत्ररथ राजा में दश हजार हाथियों का बल था और वह राजा शस्त्र–विद्या और शास्त्र–विद्या को अच्छी तरह जाननेवाला था, हे राजन् ! उस धर्मात्मा राजा के राज्य में पृथ्वी पर ॥ ८ ॥ कहीं कोई कृपण और

निर्धन नहीं दीखता था, वहाँ सदा सुकाल, क्षेम, आरोग्यता, और सुभिक्ष रहता था, और अतिवृष्टि, अनावृष्टि अर्थात् सूखा आदि का नाम भी न था ॥ ९ ॥ वस मनोहर नगर में सब लोग विष्णु की भक्ति में प्रेम रखते थे और विशेष करके राजा की आज्ञा में और विष्णु की पूजा में बड़ी प्रीति थी ॥ १० ॥ क्या कृष्ण

श्रीमाञ्छस्त्रशास्त्रार्थ पारगः ॥ तस्मिञ्छासति धर्मज्ञे धर्मात्मनि धरां प्रभो ॥८॥ कृपणं नैव कुत्रापि दृश्यते नैव निर्धनः ॥ सुकालः क्षेममारोग्यमदुर्भिक्षं न चेतस्सः ॥ ९ ॥ विष्णु भक्तिरता लोकास्तस्मिन् पुरवरे सदा ॥ हरिपूजारतश्चैव राजा चापि विशेषतः ॥ १० ॥ न शुक्लां नैव कृष्णां च द्वादशीं भुंजते जनाः ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य हरि भक्ति परायणाः ॥ ११ ॥ एवं संवत्सराजग्मुर्बहवो राजसत्तम ॥ जनस्य सौख्य युक्तस्य हरिभक्तिरतस्य च

पक्षकी क्या शुक्ल पक्षकी द्वादशी विद्ध अर्थात् युक्त किसी एकादशी के दिन लोग भोजन नहीं करते थे वल्कि सबधर्मों से अधिक लोग भगवान की पूजा में भक्ति रखते थे ॥ ११ ॥ हे राजसत्तम! इस प्रकार बहुत से वर्ष बीत गये और वहाँ के लोग सुखी और हरिभक्ति में प्रीति करते थे ॥ १२ ॥ कुछ दिनों के उपरान्त द्वादशी

युक्त फाल्गुन शुक्ल की आमलकी नाम एकादशी आई ॥ १३ ॥ हे राजन्! उस एकादशी के आने पर सब लोग स्त्री बालक बूढ़ोंने भी नियम से उसका उपवास किया ॥ १४ ॥ और इस व्रत को बड़े फलका देनेवाला जानकर वह राजा नदी के जलमें स्नान करके वहाँ देवता के मन्दिर में अपने सब लोगों के समेत आकर उप-

॥१२॥ अथ कालेन संप्राप्ता द्वादशी पुण्य संयुता ॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे नाम्ना ह्यामल-
की स्मृता ॥ १३ ॥ तामवाप्य जनाः सर्वे बालकाः स्थविरा नृप ॥ नियमं चोपवासं च
सर्वे चक्रुर्नरा विभो ॥ १४ ॥ महाफलं व्रतं ज्ञात्वा स्नानं कृत्वा नदी जले ॥ तत्र देवालये
राजा लोकयुक्तो महाप्रभुः ॥ १५ ॥ पूर्णकुम्भ युतं दिव्यं नानागन्धाधिवासितम्
॥१६॥ दीपमालान्वितं चैव जामदग्न्य समन्वितम् ॥ पूजयामासुरव्यग्रा धात्रीं च मुनि-

स्थित हुआ ॥ १५ ॥ और छत्र (छाता) और उपानह (जूता) तथा पंचरत्न से युक्त और सुन्दर दिव्य गन्धों से सुगन्धित ऐसे पूर्ण कुम्भ को स्थापित करके॥१६॥ दीपदान किया और परशुरामजी को मूर्ति का उस घट पर स्थापित कर सब जनों ने मुनियों सहित ध्यान लगाकर उस पर धात्री का पूजन किया ॥ १७ ॥

और कहाकि हे परशुरामजी ! रेणुका को आनन्द देनेवाले ! हे आमलकी कृतच्छाय ! हे सुख ऐश्वर्य और मोक्ष को देनेवाले ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मासे उत्पन्न धात्रि तुम सब पातकों का नाश करनेवाली हो हे आमलकी मेरा तुम्हें नमस्कार है और मेरे अर्घ्य को ग्रहण करो ॥ १९ ॥ हे धात्रि ! तुम ब्रह्म स्वरूप हो श्रीरामचन्द्रजी

भिर्जनाः ॥ १७ ॥ जामदग्न्य नमस्तेऽस्तु रेणुकानन्द वर्धन ॥ आमलकी कृतच्छाय भुक्ति मुक्ति वर प्रद ॥ १८ ॥ धात्रि धात्रि समुद्भूते सर्वपातक नाशिनी ॥ आमलकी नमस्तुभ्यं गृहाणार्घोदकं मम ॥ १९ ॥ धात्रि ब्रह्म स्वरूपासि त्वं तु रामेण पूजिता ॥ प्रदक्षिणा विधानेन सर्वं पापहरा भव ॥ २० ॥ तत्र जागरणं चक्रुर्जनाः सर्वे स्वभक्तितः ॥ एतस्मिन्नेव कालेतु व्याधस्तत्र समागतः ॥ २१ ॥ क्षुधाश्रमपरिव्याप्तो महाभारेण पीड़ितः ॥ कुटुम्बार्थं

ने भी तुम्हारा पूजन किया है अब प्रदक्षिणा करने से तुम मेरे सब पाप को दूरकरो ॥ २० ॥ सब मनुष्यों ने भक्ति पूर्वक जागरण किया और उसीकाल में एक व्याधा वहाँ आया ॥ २१ ॥ वह भूख और प्यास से पीड़ित तथाश्रम-करने से दुःखी और बहुत से बोझ के कारण क्लेशित परिवार पालन के लिये जीवों की

हिंसा करनेवाला और संपूर्ण धर्मों से रहित ॥ २२ ॥ उस भूखे बहेलिये ने भी आमलकी एकादशी के दिन जागरण और दीपदान देखा तो वहीं बैठ गया ॥ २३ ॥ और तब उसने वहाँ रखा हुआ घट और उसपर भगवान् दामोदर की मूर्ति को स्थापित देख बड़ा आश्चर्य किया और उसने विचार किया कि यह क्या है ॥२४॥

जीवघाती सर्वधर्म बहिष्कृतः ॥ २२ ॥ जागरं तत्र सोऽपश्यदामलक्यां क्षुधान्वितः ॥ दीपमालाकुलं दृष्ट्वा तत्रैव निषसादसः ॥ २३ ॥ किमेतदिति सञ्चिंत्य प्राप्तवान् विस्मयं भृशम् ॥ ददर्श कुम्भं तत्रस्थं देवं दामोदरं तथा ॥ २४ ॥ ददर्शामलकी वृक्षं तत्रस्थांश्चैव दीपकान् ॥ वैष्णवश्च तथाख्यानं शुश्राव पठतां नृणाम् ॥ २५ ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं शुश्राव क्षुधिताऽपिसन् ॥ जाग्रतस्तस्य सा रात्रिर्गता विस्मितचेतसः ॥ २६ ॥ ततः प्रभात

और आमले के वृक्ष को और उसके समीप दीप जलाते देखा और मनुष्यों को विष्णु की कथा कहते सुना ॥ २५ ॥ फिर उस व्याधने आश्चर्य सहित हो एकादशी का माहात्म्य सुना और क्षुधित होने के कारण उस व्याध की सब रात जागते बीत गई ॥ २६ ॥ फिर प्रातःकाल होते ही सब लोग नगर को जाने लगे

और व्याधा ने भी घरमें आकर प्रसन्न मनसे भोजन किया ॥ २७ ॥ फिर बहुत दिनों के बाद वह व्याध मरगया तो एकादशी के प्रभाव से और रात्रि में जागरण के कारण ॥ २८ ॥ चतुरंगिणी सेना से युक्त उसे एक बड़ा राज्य मिला। जिसकी जयन्ती नाम नगरी थी, और वहाँ का राजा विदूरथ था ॥ २९ ॥ उसका

समये विविशुर्नगरंजनाः ॥ व्याधोऽपि गृहमागत्य बुभुजे प्रीतमानसः ॥२७॥ ततः कालेन महता व्याधः पञ्चत्वमागतः ॥ एकादश्याः प्रभावेण रात्रौ जागरणेनच ॥ २८ ॥ राज्यं प्रपेदे सुमहच्चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ जयन्ती नाम नगरी तत्र राजा विदूरथः ॥ २९ ॥ तस्मात् स तनयो जज्ञे नाम्ना वसुरथो बली ॥ चतुरंग बलोपेतो धनधान्य समन्वितः॥३०॥ दशायुतानि ग्रामाणां बुभुजे भय वर्जितः ॥ तेजसादित्य सदृशः कान्त्या चन्द्रसमप्रभः

पुत्र वसुरथ था कि जो बड़ा बली और चतुरंगिणी सेना और धन धान्य से युक्त था ॥ ३० ॥ और दश हजार नगर का अकंटक राज्य करता था। उसका तेज सूर्य के समान और कान्ति चन्द्रमा के समान थी ॥३१॥ विष्णुके समान पराक्रमी, पृथ्वी के समान क्षमावान, धर्मात्मा, सत्यवादी, और विष्णु की भक्ति में लीन

S2

ए. मा. था ॥३२॥ ब्रह्मको जाननेवाला, शुभ कर्म करनेवाला, और प्रजापालन में तत्पर था, और उस शत्रुके अभिमान को नाश करनेवाला राजाने बहुत से यज्ञ किये थे ॥ ३३ ॥ सदा उसने अनेक प्रकार के दान दिये थे । एक वार वह राजा जो शिकार खेलने गया तो दैव योग से रास्ते को भूलगया ॥ ३४ ॥ और राजाको इतना भी मा. टी.

५१ ॥ ३१ ॥ पराक्रमे विष्णुसमः क्षमया पृथिवीसमः ॥ धार्मिकः सत्यवादी च विष्णुभक्तिपरा-
यणः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मज्ञः कर्मशीलश्च प्रजापालन तत्परः ॥ यजते विविधान् यज्ञान् स राजा
परदर्पहा ॥ ३३ ॥ दानानि विविधान्येव प्रददाति च सर्वदा ॥ एकदा मृगया यातो दैवान्मार्ग
परिच्युतः ॥ ३४ ॥ न दिशोनैव विदिशो वेत्ति तत्र महीपतिः ॥ उपधाय च दोर्मूलमेकाकी
गहने बने ॥ ३५ ॥ श्रान्तश्च क्षुधितोऽत्यन्तं संविवेश महीपतिः ॥ अत्रान्तरे म्लेच्छगणः

ज्ञान नहीं रहा कि यह कौनसी दिशा है कौनसी विदिशा है वह राजा वनमें अकेला घूमकर बांह को सिरहाने लगाकर ॥ ३५ ॥ अधिक भूख और प्यास से पीड़ित तथा परिश्रम से थक जाने के कारण सोगया ॥ इसी बीचमें पर्वत पर रहनेवाले बहुत से म्लेच्छ आ निकले ॥ ३६ ॥ और वे वैरी गण वहां आये कि जहां ५१

शत्रुके बलका नाश करनेवाला राजा सोया था। वे सब भाग्य हीन राजा के पुराने श‍ु थे॥ ३७॥ सो वह सब राजा को चारों ओर से घेर कर पुराने वैर के कारण उन दुष्ट बुद्धियों ने मारो २ ऐसा कहना आरंभ कर दिया॥ ३८॥ पहिले इसने हमारे पिता, भाई, पुत्र, पौत्र, मामा, भानजा, इनको युद्ध में मारा था

पर्वतान्तर वासभाक्॥३६॥ आययौ तत्र यत्रास्ते राजा पर बलार्दनः॥ कृतवैरास्तु ते राज्ञा सर्वे दैवोपतापिताः॥३७॥ परिवार्य ततस्तस्थू राजानं भूरिदक्षिणम्॥ हन्यतां हन्यतां चायं पूर्वं वैर विरुद्धधीः॥ ३८॥ अनेन निहताः पूर्वं पितरो भ्रातरः सुताः॥ पौत्राश्च भागिनेयाश्च मातुलाश्च निपातिताः॥ ३६॥ निष्काशिताश्च स्वस्थानाद्विक्षिप्ताश्च दिशो दश॥ एतावदुक्त्वा ते सर्वे तत्रैनं हन्तुमुद्यताः॥ पाशैश्च पट्टिशैः खड्गैः वाणैर्धनुषि संस्थितैः॥४०॥

॥ ३६॥ और हम लोगों को अपने स्थान से निकाल दिया था सो हम लोग दशो दिशाओं में फैल गये हैं इतना कह वे सब उसे पाश, पट्टिश, मुद्गर, खड्ग, और धनुष में चढ़ाये वाणों से मारने के लिये तयार होगये॥ ४०॥ उन शत्रुओं के ये सब अस्त्र आते हैं परन्तु राजा के शरीर में नहीं घुसते और जब उन म्लेच्छों के

सब अस्त्र निष्फल होगये तब वे सब मृतक के समान होगये ॥ ४१ ॥ जो म्लेच्छ गण राजा को मारने आये थे उनको मारकर एक पग भी आगे को न चल सके उनके सब शस्त्र कुंठित (भोंतरे) होगये और उत्साह हीन तथा कातर और दीन होगये ॥ ४२ ॥ उसी समय उस राजा के शरीर से संपूर्ण अंगों से संपन्न

सर्वाणि शस्त्राणि समापतंति न वै शरीरे प्रविशान्ति तस्य ॥ ते चापि सर्वे हत शस्त्र संघा म्लेच्छा बभूवुर्गत जीवदेहाः ॥ ४१ ॥ यदापि चलितुं तत्र न शेकुस्तेऽरयोभृशम् ॥ शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुः सर्वेषां हतचेतसाम् ॥ दीना बभूवुस्ते सर्वेयेतं हंतुं समागताः ॥४२॥ एतस्मि-न्नेव काले तु तस्य राज्ञः शरीरतः ॥ निःसृता प्रमदा ह्येका सर्वावयवशोभना ॥ ४३ ॥ दिव्य गन्धसमायुक्ता दिव्याभरण भूषिता ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरा भ्रुकुटी कुटिलानना ॥४४॥

और सर्व लक्षण से युक्त एक स्त्री निकली ॥ ४३ ॥ उस स्त्री की देह में सुन्दर गंध लगे रहे थे और वह संपूर्ण अलंकारों से अलंकृत दिव्य माला और वस्त्र को धारण किये क्रोध के मारे भौंह चढ़ाये ॥ ४४ ॥ नेत्रों से घूरती हुई मानो उनसे अग्नि की चिनगारियां उगलती हुई दूसरी काल रात्रि के समान क्रोध किये चक्र को

हाथ में लिये ॥ ४५ ॥ बड़े क्रोध से उन अत्यन्त दुःखी म्लेच्छों की ओर दौड़ी और घोर कर्म करनेवाले उन म्लेच्छों को मारडाला ॥ ४६ ॥ तब राजा जगा और उसने इस अद्भुत कर्म को देखा और म्लेच्छों को मरा देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ४७ ॥ और कहने लगा कि ये म्लेच्छगण तो मेरे बड़े वैरी थे इनको किसने

स्फुरिताभ्यां च नेत्राभ्यां पावकं वमतीं बहु ॥ चक्रोद्यतकरा चैव कालरात्रिरिवापरा ॥ ४५ ॥ अभ्यधावत संक्रुद्धा म्लेच्छानत्यन्त दुःखितान् ॥ निहताश्च यदा म्लेच्छास्ते विकर्म रतास्तथा ॥ ४६ ॥ ततो राजा विबुद्धः सन् ददर्श महदद्भुतम् ॥ हतान्म्लेच्छगणान्दृष्ट्वा राजा हर्ष-मवाप सः ॥ ४७ ॥ इह केन हता म्लेच्छा अत्यन्तं वैरिणो मम ॥ केन चेदं महत्कर्म कृत-मस्मद्धितार्थिना ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ॥ तं स्थितं नृपतिं दृष्ट्वा

मारा और मेरा कल्याण चाहनेवाला कौन है कि जिसने यह बड़ा काम किया है ॥ ४८ ॥ उस राजाको बड़े आश्चर्य में बैठा देखकर इसी अवसर में यह आकाशवाणी हुई ॥ ४९ ॥ कि भगवान को छोड़ और कोई दूसरा रक्षक नहीं है ॥ इस आकाश वाणी को सुन राजा के नेत्र खिलगये और उसे बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५० ॥

54

फिर वह राजा वनसे कुशल पूर्वक राज्य पर आया और वह धर्मात्मा पृथिवी पर इन्द्र के समान राज्य करने लगा ॥ ५१ ॥ वसिष्ठजी बोले ॥ हेराजन् ! इसलिये जो उत्तम मनुष्य इस आमलकी एकादशी का व्रत करते हैं

निकामं विस्मयान्वितम् ॥ ४६ ॥ शरणं केशवादन्यो नास्ति कोऽपिद्धितीयकः ॥ इतिश्रुत्वा काशवाणी विस्मयोत्फुल्ल लोचनः ॥ ५० ॥ वनात्तस्मात स कुशली समायातः स भूमिभुक् ॥ राज्यं चकार धर्मात्मा धरायां देवतेशवत् ॥ ५१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ तस्मादामलकीं राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ ते यान्ति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५२ ॥ इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे आमलक्याख्य फाल्गुन शुक्लैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

वे विष्णुलोक को जाते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥ इति फाल्गुनशुक्लैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ चैत्र कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ कि मैंने फाल्गुन शुक्ल पक्षकी आमलकी नाम एकादशी का माहात्म्य सुना अब चैत्र कृष्णपक्ष की एकादशी का क्या नाम है वह कहिये ॥१॥ और उसकी क्या विधि है क्या फल है सो हे कृष्णचन्द्रजी ! मुझसे कहिये ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजेन्द्र ! मैं उस पाप मोचनी

अथ चैत्रकृष्णैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे श्रुता सामलकी मया ॥ चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥१॥ को विधिः किं फलं तस्या ब्रूहि कृष्ण ममाग्रतः ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि पापमोचनिका व्रतम्॥ यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥ मान्धातोवाच ॥ भगवच्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥ चैत्रमास्यसिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ को विधिः किंफलं तस्याः कथयस्व

की कथा को कहूँगा ॥ २ ॥ जिसे चक्रवर्ती मान्धाता के पूछने से लोमश ऋषिने कही थी ॥ मान्धाता बोले ॥ हे भगवन् ! मैं संसार के हितकी कामना से यह सुना चाहता हूँ कि ॥३॥ चैत्रमास के कृष्ण पक्षकी एकादशी का क्या नाम है और उसकी विधि क्या और फल क्या है आप प्रसन्नता से कहिये ॥ ४ ॥ लोमशऋषि बोले

ए. मा. ५४

चैत्रमास कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम पाप मोचनी है और वह पिशाच योनिको नाश करनेवाली है ॥५॥ हे राजन् ! वह काम, सिद्धि, कल्याण, और धर्मको देनेवाली तथा पापों को नाश करनेवाली है उसकी विचित्र कथा तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ ६ ॥ पहिले जब ऋतुओं के विभाग होने पर वसन्त ऋतु आई और वनमें चारो

प्रसादतः ॥ ४ ॥ लोमश उवाच ॥ चैत्रमास्यसिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी ॥ एकादशी समाख्याता पिशाचत्व विनाशिनी ॥ ५ ॥ शृणु तस्या प्रवक्ष्यामि कामदां सिद्धिदां नृप कथां विचित्रां शुभदां पापघ्नीं धर्मदायिनीम् ॥ ६ ॥ पुरा चैत्ररथोद्देशे अप्सरोगणसेविते ॥ वसन्तसमये प्राप्ते पुष्पैराकुलिते बने ॥ ७ ॥ गन्धर्वकन्यास्तत्रैव रमन्ति सह किन्नरैः ॥ पाकशासन मुख्याश्च क्रीडन्ते च दिवौकसः ॥८॥ नापरं सुन्दरं किंचिद्वनाचैत्ररथाद्वनम् ॥

ओर फूल खिल गये तो कुवेर के चैत्ररथ वनमें वहुत सी अप्सरायें उसमें आनन्द करने लगीं ॥७॥ वहां गंधर्वों की कन्या गन्धर्वों के साथ विहार करने लगीं और इन्द्र आदि देवता भी उसमें क्रीड़ा करने लगे ॥ ८ ॥ उस चैत्ररथ नाम वनसे वढ़कर कोई वन नहीं था उसमें मुनिमण्डल सदा तपस्या करते थे ॥ ९ ॥ और वहीं देव-

भा. टी. ५४

ताओं को साथ लेकर इन्द्र वसन्तकाल में अर्थात् चैत्र वैसाख के महीने में बिहार करता था ॥ उसी चैत्ररथ नाम वनमें मेधावी नाम के एक मुनि रहते थे ॥ १० ॥ एक मंजुघोषा नाम अप्सरा उन महर्षि के भाव को जानकर उनको वश में करने का उपाय करने लगी ॥ ११ ॥ परन्तु मुनि के भय से डरकर उनके आश्रम से एक

तस्मिन्वनेतु मुनयस्तपन्ति बहुलं तपः ॥ ९ ॥ सह देवैस्तु मघवा रमते मधु माधवौ ॥ एको मुनिवरस्तत्र मेधावी नाम नामतः ॥ १० ॥ अप्सरा तं मुनिवरं मोहनायोपचक्रमे ॥ मंजु-घोषेतिं विख्याता भावं तस्य विचिन्वती ॥ ११ ॥ क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयादाश्रम सन्निधौ ॥ गायन्ती मधुरंसाधुपीड्यन्ती विपंचिकाम् ॥ १२ ॥ गायन्ती तामप्यालोक्य पुष्प चन्दन वेष्टिता ॥ कामोऽपि विजयां कांक्षा शिवभक्तं मुनीश्वरम् ॥ १३ ॥ तस्याः शरीर

कोस पर ठहरकर वहां मधुर स्वर से गाने और वीणा को बजाने लगी ॥ १२ ॥ पुष्प चन्दन लगाये उस
१० अप्सरा को गान करते देखकर कामदेव भी शिवभक्त मुनीश्वर को जीतने की अभिलाषा से ॥ १३ ॥ और
शिवजी के वैर को (शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया है यह कथा पुराण में प्रसिद्ध है) स्मरण करके

उस मंजुघोषा के शरीर को स्पर्श कर और उस अप्सरा के भौंह का धनुष बनाकर उसके कटाक्षों की प्रत्यंचा उस पर धनुष चढ़ाई ॥ १४ ॥ और धीरे धीरे नेत्रों को पत्तयुक्त बाण बनाकर उसके स्तनों का तंबू अर्थात् कपड़े का डेरा तैयार कर विजय करने के लिये खड़ा हुआ ॥ १५ ॥ उस अवसर में मंजुघोषा ही कामदेव की

संसर्गं शिव वैरमनुस्मरन् ॥ कृत्वा भ्रुवौ धनुष्कोटि गुणं कृत्वा कटाक्षकम् ॥ १४ ॥ मार्गणौ नयने कृत्वा पत्तयुक्तो यथाक्रमम् ॥ कुचौ कृत्वा पटकुटीं विजयायोपसंस्थितः ॥ १५ ॥ मञ्जुघोषाऽभवत्तत्र कामस्येव वरूथिनी ॥ मेधाविनं मुनिं दृष्ट्वा सापि कामेन पीडिता ॥१६॥ यौवनोद्भिन्न देहोऽसौ मेधाव्यति विराजते ॥ सितोपवीत सहितो दण्डीस्मर इवापरः ॥१७॥ मञ्जुघोषास्थिता तत्र दृष्ट्वा तं मुनिपुंगवम् ॥ मदनस्य वशं प्राप्ता मंदं मन्दमगायत ॥१८॥

सेना के समान होगई और उन मेधावी मुनि को देख काम से पीड़ित होगई ॥ १६ ॥ और उन मुनीश्वर का भी यौवन खिल रहा था । सफेद जनेऊ धारण किये और दण्ड लिये दूसरे कामदेव के समान शोभायमान थे ॥ १७ ॥ मंजुघोषा मुनिश्रेष्ठ मेधावी मुनि को देखकर यहीं ठहर गई और कामदेव के वश होकर धीरे धीरे

गाने लगी ॥ १८ ॥ पायजेव, घुघुरु, और करधनो को बजाती हुई मानो समर सेना संग ले गाती हुई और हावभाव करती हुई मुनि के समीप गई कि जिसको देखकर वह मुनिश्रेष्ठ भी ॥ १६ ॥ सेना सहित कामदेव के मोहजाल में बलपूर्वक आगये और मंजुघोषा ने भी पास में जाकर उन मुनीश्वर को भी कामदेव के वश में

रणद्वलय संयुक्ता सिञ्जन्नूपुर मेखला ॥ गायन्ती भाव संयुक्ता विलोक्य मुनिपुंगवः ॥१६॥ मदनेन ससैन्येन नीतो मोहवशं बलात् ॥ मंजुघोषो समागम्य मुनिं दृष्ट्वा तथा विधम् ॥२०॥ हाव भाव कटाक्षैस्तु मोहयामास चांगना ॥ अधः संस्थाप्य वीणां सा सस्वजे तं मुनी-श्वरम् ॥ २१ ॥ बल्ली वा कुलिता वृक्षं वातवेगेन वेपिता ॥ सोऽपि रेमे तया सार्द्धं मेधावी मुनिपुंगवः ॥२२॥ तस्मिन्नेव वनोद्देशे दृष्ट्वा तद्देहमुत्तमम् ॥ शिवतत्त्वंसविस्मृत्वा कामतत्त्वव-

देखा ॥ २० ॥ फिर वह स्त्री अपने हावभाव कटाक्षों से उन्हें मोह लिया । वह वीणा को नीचे रखकर उन वश में पड़े मुनीश्वर को ॥ २१ ॥ ऐसे आलिंगन करने लगी जैसे वायु के वेग से हिलती हुई लता वृक्ष से लिपट जाती है और वह मुनिश्रेष्ठ मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे ॥ २२ ॥ उस वन में मुनि अप्सरा

की सुंदर देह को देखकर शिवतत्त्व को भूलकर काम तत्त्व के अधीन होगये ॥ २३ ॥ और उन कामी मुनि ने अप्सरा के साथ विहार में दिन रात को भी नहीं जाना ॥ और मुनि के आचार को लोप करने वाला बहुत सा समय बीत गया ॥ २४ ॥ तब मंजुघोषा स्वर्ग में जाने के लिये उद्यत हुई और जब जाने लगी तब रमण

शं गतः ॥२३॥ न निशां न दिनं सोऽपि रमन् जानाति कामुकः ॥ बहुलश्च गतः कालो मुने-राचारलोपतः ॥ २४ ॥ मंजुघोषा देवलोकं गमनायोपचक्रमे ॥ गच्छन्ती प्रत्युवाचाथ रमन्तं मुनिपुंगवम् ॥२५॥ आदेशो दीयतां ब्रह्मन् स्वधाम गमनाय मे ॥ मेधाव्युवाच ॥ अद्यैव त्वं समायाता प्रदोषाता वरानने ॥ २६ ॥ यावत्प्रभात संध्यास्यात्तावत्तिष्ठ ममान्तिके ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भयभीतं बभूव सा ॥ २७ ॥ पुनर्सारमयामास तं मुनिं नृपसत्तमः ॥

करते हुए उन श्रेष्ठ मुनि से बोली ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! अब मुझे अपने घर जाने की आज्ञा दीजिये ॥ मेधावी बोले ॥ हे सुन्दरी ! तू अभी तो संध्या को मेरे पास आई है ॥ २६ ॥ जब तक प्रातःकाल न हो तब तक तू मेरे पास ठहर मुनि की यह बात सुन वह अप्सरा बहुत डरी ॥ २७ ॥ हेराजा ! वह अप्सरा फिर भी मुनि के

साथ विहार करने लगी और मुनि के शाप के भय से बहुत से वर्षों तक ॥ २८ ॥ याने सत्तावन५७ वर्ष नव ६ महीना तीन ३ दिन तक और वह मुनि के साथ में विहार किया परन्तु मुनि को इतना समय भी आधीरात के समान बीत गया ॥ २६ ॥ इतने समय के बीत जाने पर वह फिर उन मेधावी मुनीश्वर से बोली कि हे-

मुनिशाप भयाद्भीता बहुलान् परिवत्सरान् ॥२८॥ वर्षाणि सप्तपंचाशन्नवमासान्दिनत्रयम् ॥ स रेमे मुनिना तस्य निशार्द्धमिव चाभवत् ॥ २६ ॥ सातंपुनरुवाचाथ तस्मिन्काले गते मुनिम् ॥ आदेशो दीयतां ब्रह्मन् गन्तव्यंस्वगृहे मया ॥ ३० ॥ मेधाव्युवाच ॥ प्रातःकालो-ऽधुनैवास्ते श्रूयतां वचनं मम ॥ कुर्वे सन्ध्यादिकं यावत्तावत्त्वं सुस्थिराभव ॥ ३१ ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा सभयाश्चर्यमाकुलम् ॥ स्मितं कृत्वा तु ता किंचित प्रत्युवाच सुविस्मिता

ब्रह्मदेव ! मुझे आज्ञा दीजिये मैं अब अपने घर जाऊँगी ॥ ३० ॥ मेधावी बोले ॥ अभी तो प्रातः काल हुआ है सो तू मेरे वचन को सुन कि जब तक मैं संध्या करूँ तब तक तू चुपचाप बैठी रह ॥ ३१ ॥ मुनि की यह बात सुनकर वह बड़े भय और आश्चर्य से व्याकुल हो हँसकर अचंभे में आकर ॥ ३२ ॥ मंजुघोषा अप्सरा

58

ए. मा. ५७

बोली ॥ हे मुनीश्वर ! आप की संध्या कितने समय तक समाप्त होगी मेरे ऊपर कृपा करके यह तो विचार करो कि कितना काल बीत गया है ॥ ३३ ॥ अप्सरा के वचन को सुनकर और आश्चर्य से नेत्रों को फुलाकर वे मेधावी मुनि जब हृदय में ध्यान करके समय का प्रमाण सोचने लगे कि ॥ ३४ ॥ मुझे तो इस अप्सरा के

॥ ३२ ॥ मंजुघोषोवाच ॥ कियत्प्रमाणा विप्रेन्द्र तव सन्ध्या गताः किल ॥ मया प्रसादं कृत्वा तु गतः कालो विचार्यताम् ॥३३॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ल लोचनः ॥ स ध्यात्वा हृदि विप्रेन्द्रः प्रमाणमकरोत्तदा ॥३४॥ समाश्च सप्तपंचाशद्गता मम तया सह ॥ नेत्राभ्यां विस्फुलिंगान् स मुञ्चमानोऽति कोपनः ॥ ३५ ॥ कालरूपांच तां दृष्ट्वा तपसः क्षयकारिणीम् ॥ दुःखार्जितं मम तपो नीतं तदनयाक्षयम् ॥ ३६ ॥ विचार्येत्थं सकंपोष्ठो

साथ में सत्तावन वर्ष बीत गये तब तो क्रोध में आकर अपने नेत्रोंसे आग का अंगार निकालने लगे ॥ ३५ ॥ और तपस्या को क्षय करने वाली उस कालरूपा को देखकर कहने लगे कि बड़े दुःख से अर्जित की हुई मेरी तपस्या को इसने नाश कर डाला ॥ ३६ ॥ और ओठों को कँपाकर उन व्याकुल इन्द्री वाले मेधावी मुनिने उस

भा. टी. ५७

शाप दिया कि तू पिशाचिनी हो जा ॥ ३७ ॥ अरी पापिनी ! अरी दुराचारिणी ! अरी कुलटे ! हे पातक चाहने वाली ! तुझ को धिक्कार है । वह अप्सरा शाप से दग्ध हो विनय पूर्वक हाथ जोड़ सामने खड़ी हो गई ॥ ३८ ॥ वह कृपा चाहती हुई सुन्दर भौंह वाली मुनि से यह वचन बोली कि हे विप्रेन्द्र ! प्रसन्न होकर शाप

मुनिस्तु व्याकुलेन्द्रियः ॥ तां शशाप च मेधावी त्वं पिशाची भवेतिहि ॥ ३७ ॥ धिक्त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातक प्रिये ॥ तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनता स्थिता ॥ २८ ॥ उवाच वचनं सुभ्रूः प्रसादं वाञ्छतीं मुनिम् ॥ कृत्वा प्रसाद विप्रेन्द्र शापस्योपशमं कुरु ॥ ३९ ॥ सतां संगे हि भवति मित्रत्वं सप्तमे पदे ॥ त्वया सह मम ब्रह्मन् गताः सुबहवः समाः ॥ ४० ॥ एतस्मात्कारणात् स्वामिन् प्रसादं कुरु सुव्रत ॥ मुनिरुवाच ॥ शृणु मे

अनुग्रह कीजिये ॥ ३९ ॥ देखिये सज्जन के संग में सात वार बोलने से अथवा सात पग चलने से मित्रता हो जाती है और हे ब्रह्मदेव ! आप के साथ तो मुझे इतने समय बीत गये हैं ॥ ४० ॥ इस लिये हे स्वामी ! हे सुव्रत ! मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ मुनिबोले ॥ हे कन्याणी ! तू मेरी बात सुन कि जिससे तेरे शाप का

उपशमन हो ॥ ४१ ॥ हे पापिनी ! मैं क्या करूँ तैंने मेरा बड़ा भारी तप नाश किया है परन्तु चैत्र कृष्ण पक्ष की जो सुन्दर एकादशी है उसका नाम पापमोचनी है और वह सब पापों को नाश करनेवाली है हे सुन्दर भौंह वाली ! उसका व्रत करने से तेरी पिशाचयोनि छूट जायगी ॥ ४३ ॥ मेधावी मुनि मंजुघोषा अप्सरा से यह

वचनं भद्रे शापानुग्रहकारकम् ॥ ४१ ॥ किं करोमि त्वया पापे क्षयं नीतं महत्तपः ॥ चैत्रस्य कृष्णपक्षे या भवेदेकादशी शुभा ॥ ४२ ॥ पापमोचनिका नाम सर्वपापक्षयंकरी ॥ तस्या व्रते कृते सुभ्रूः पिशाचत्वं प्रयास्यति ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा तां स मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ॥ तमागतं समालोक्य च्यवनः प्रत्युवाचह ॥ ४४ ॥ किमेतद्विहितं पुत्र त्वया पुण्यक्षयः कृतः ॥ मेधाव्युवाच ॥ पापं कृतं महत्तात रमता चाप्सरा मया ॥ ४५ ॥

कहकर अपने पिता के आश्रम को चले गये, उनको आश्रम में आया देख च्यवन ऋषि बोले ॥ ४४ ॥ कि हे पुत्र ! तुमने यह क्या किया कि अपने पुण्य का नाश कर दिया ॥ मेधावी बोले ! हे पिता जी ! मैंने अप्सरा के साथ विहार करके बड़ा पाप किया ॥ ४५ ॥ अब मुझे कोई प्रायश्चित्त बताइये कि जिससे वह पाप नष्ट हो

जावे ॥ ४६ ॥ च्यवन ऋषि बोले । चैत्र कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम पाप मोचनी है ॥ ४६ ॥ हे पुत्र ! उसका व्रत करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ पिताका यह बचन सुनकर उन्हों ने यह उत्तम व्रत किया ॥ ४७ ॥ इसमें मेधावी मुनिका सब पाप दूर होगया और वह फिर वैसे ही पुण्यवान् धर्मात्मा होगये, और

प्रायश्चित्तं मम ब्रूहि येन पापक्षयो भवेत् ॥ च्यवन उवाच ॥ चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचनी ॥ ४६ ॥ अस्या व्रते कृते पुत्र पापराशिः क्षयं व्रजेत् ॥ इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम् ॥ ४७ ॥ गतं पापक्षयं तस्य पुण्ययुक्तो बभूव सः ॥ साप्येवं मंजुघोषा च कृत्वा तद्व्रतमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ पिशाचत्वं विनिर्मुक्ता पापमोचनिका व्रतात् ॥ दिव्य रूपधरा भूत्वा गता नाकं वराप्सरा ॥ ४९ ॥ लोमशउवाच ॥ इत्थं भूत प्रभावं हि

उसी प्रकार मंजुघोषा भी उस उत्तम व्रत करके ॥ ४८ ॥ उस पाप मोचनी एकादशी के व्रत के प्रभाव से पिशाच योनि से छूटगई और वह सुन्दर अप्सरा दिव्यरूप धारण करके स्वर्ग को चली गई ॥ ४९ ॥ लोमश ऋषि बोले ॥ हे राजा ! पापमोचनी के व्रत का ऐसा प्रभाव है कि जो मनुष्य पापमोचनी का व्रत करते हैं ॥ ५० ॥

60

उनका जो कुछ पाप होता है सो सब दग्ध होजाता है और इसके इतिहास को पढ़ने सुनने से एक हजार गौ देने का फल प्राप्त होता है ॥५१॥ हे राजा ! ब्राह्मण का वध करनेवाला, सोना को चोरी करनेवाला, मदिरा को पीनेवाला और गुरु की शय्या पर जाकर गुरु पत्नी से गमन करनेवाला भी इसके व्रत के प्रभाव से बड़े बड़े

पापमोचनिकाव्रतम् । पापमोचनिकांराजन् ये कुर्वन्तीह मानवाः ॥५०॥ तेषां पापंच यत्किंचि-त्तत्सर्वं क्षीणतां व्रजेत् ॥ पठनाच्छ्रवणादस्या गोसहस्र फलं लभेत् ॥१५॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ व्रतस्य चास्य करणात् पापमुक्ता भवन्ति ते ॥ बहु पुण्य प्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ इतिं श्रीभविष्योत्तरपुराणे पापमोचनिकाख्याने चैत्र कृष्णैकादश्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

महा पातक नष्ट होजाते हैं इस कारण इस एकादशी का व्रत सब व्रतों में श्रेष्ठ और बहुत पुण्य को देनेवाला है ॥ ५२ ॥ चैत्र कृष्णएकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ चैत्र शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है अब आप मुझसे

कहिये कि चैत्र शुक्ल एकादशी का क्या नाम है ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजन्! तुम सावधान होकर एक पुरातन इतिहास सुनो कि जो पहिले समय में वसिष्ठजी ने राजा दिलीप के पूँछने से उनसे कही थी ॥ २ ॥ दिलीप बोले ॥ हे भगवन्! चैत्रमास के शुक्ल पक्षकी एकादशीका क्या नाम है सो सुना चाहता हूँ आप प्रसन्न

अथ चैत्र शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वासुदेव नमस्तुभ्यं कथयस्व ममाग्रतः ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वैकमना राजन् कथामेकां पुरातनीम् ॥ वसिष्ठो यामकथयत् प्राग्दिलीपाय पृच्छते ॥ २ ॥ दिलीप उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः ॥ चैत्रे मासि सिते पक्षेकिन्नामैकादशी भवेत् ॥ ३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ साधु पृष्टं नृपश्रेष्ठ कथयामि तवाग्रतः ॥ चैत्रस्य शुक्ल पक्षे तु कामदा नाम नामतः ॥ ४ ॥

होकर कहिए ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले ॥ हे नृप सत्तम! ॥ तुमने अच्छी बात पूछी अब मैं तुमसे कहता हूँ कि चैत्र शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम कामदा है ॥ ४ ॥ यह एकादशी बड़ी पवित्र और पाप रूपी ईंधन को जलाने के लिए अग्निके समान है हे राजा! इस पापनाशिनी और पुत्रदायिनी कथा को सुनो ॥ ५ ॥

पहिले समय में मनोहर और सुवर्ण तथा रत्नों से विभूषित ऐसे भोगिपुर में पुण्डरीक आदि बड़े विषको धारण करनेवाले स रहते थे ॥ ६ ॥ उस पुर में पुण्डरीक नाम राजा राज्य करता था । और उसमें गंधर्व अप्सरा और किन्नर भी रहते थे ॥ ७ ॥ उसी नगर में सुंदर ललित नाम गन्धर्व और ललिता नाम अप्सरा रहती

एकादशी पुण्यतमा पापेन्धन दवानलः ॥ शृणु राजन् कथामेतां पापघ्नीं पुत्रदायिनीम्
॥ ५ ॥ पुरा भोगिपुरे रम्ये हेमरत्न विभूषिते ॥ पुंडरीक मुखा नागा निवसन्ति मदोत्कटाः
॥ ६ ॥ तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं करोति च ॥ गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव ह्यप्सरोभिः
ससेव्यते ॥ ७ ॥ वराप्सरा तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा ॥ उभौ रागेण संयुक्तौ दंपती
काम पीडितौ ॥ ८ ॥ रेमाते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते सदा ॥ ललितायास्तु हृदये पति·

थी इन दोनों का परस्पर प्रेम होगया और दोनों काम से पीड़ित होगए ॥ ८ ॥ और धन धान्य से युक्त सदा अपने सुन्दर गृह में विहार करते थे और ललिता के हृदय में वह गन्धर्व पति सदा वास करता था ॥ ९ ॥ और ललित के हृदय में वह ललिता स्त्री सदा वसती थी, एक समय पुण्डरीक आदि नाग सभामें बैठे क्रीड़ा

कर रहे थे ॥११॥ और ललिता अपनी स्त्रीके विना गान कर रहा था। सो ललिता के स्मरण में गीत गाने में ललित गन्धर्वकी जिह्वा स्खलित अर्थात् लथड़ गई ॥११॥ नागों में श्रेष्ठ कर्कोटक नागने ललित गंधर्व के मनका भावजान कर गीत के पदको विगड़जाने से पुण्डरीक को लक्ष करा दिया तबतो पुण्डरीक ने क्रोध से अपनी आँखों को लाल

र्वसति सर्वदा ॥ ६ ॥ हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी ॥ एकदा पुण्डरीकाद्याः क्रीडन्तः सदसि स्थिताः ॥ १० ॥ गीतगानं प्रकुरुते ललिता दयितां बिना ॥ पदबन्धे-स्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन् ॥११॥ मनोभावं विदित्वाऽस्य कर्कोटो नागसत्तमः॥पदबन्ध-च्युतिं तस्य पुण्डरीके न्यवेदयत् ॥ १२ ॥ क्रोध संरक्त नयनः पुंडरीकोऽभवत्तदा ॥ शशाप ललितं तत्र मदनातुर चेतसम् ॥१३॥ राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः ॥ यतःपत्नी

लाल करके मनमें काम-पीड़ासे पीड़ित उस ललित गन्धर्व को शाप दिया ॥१३॥ कि हे दुर्बुद्धे ! तू कच्चे मांस को और पुरुषों को खानेवाला राक्षस हो जा क्योंकि तू मेरे सामने गाते हुए स्त्री के वश होगया है ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! वह उसके शापसे राक्षस स्वरूप होगया उसका मुख भयानक होगया आँखें सीमा से बाहर होगई वह ऐंसा

भयानक हो गया कि उसका स्वरूप देखा न जाय ॥१५॥ उसकी भुजायें चार कोस लम्बी और मुख कन्दरा के समान हो गया ॥ १६ ॥ नासिका के छिद्र गुफा के समान और होठ दोनों दो कोस के समान हो गये और हे राजेन्द्र ! उसका शरीर बत्तीस कोस ऊँचा हो गया ॥ १७ ॥ वह राक्षस अपने कर्म का फल भोगने के

वशो जातो गायंश्चैव ममाग्रतः ॥ १४ ॥ वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षो रूपो बभूवह ॥ रौद्रानना विरूपाक्षो हष्टमात्रो भयङ्करः ॥ १५ ॥ बाहू योजन विस्तीर्णौं मुखं कन्दर सन्निभम् ॥ चन्द्र सूर्यनिभे नेत्रे ग्रीवा पर्वतसन्निभा ॥ १६ ॥ नासा रन्ध्रे तु विवरे अधरौ योजनार्धकौ ॥ शरीरं तस्य राजेन्द्र उत्थितं योजनाष्टकम् ॥ १७ ॥ ईदृशो राक्षसः सोऽभूद् भुञ्जानः कर्मणः फलम् ॥ ललिता तमथालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम् ॥ १८ ॥ चिन्तया-

लिये इस प्रकार होगया । ललिता उस अपने पति को ऐसा कुरूप देखकर ॥ १८ ॥ बड़े दुख से पीड़ित हो मनमें चिन्ता करने लगी कि क्या करूँ और कहाँ जाऊँ कि मेरा पति जो शापसे पीड़ित हो रहा है सो मुक्त हो जावे ॥ १९ ॥ मनमें ऐसा विचार कर उसको कहीं सुख नहीं मिला । फिर ललिता अपने पति के साथ

गहन वन में विचरने लगी ॥ २० ॥ और वह कामरूपी राक्षस भी उसी गहन और सघन वन में विचरने लगा। वह राक्षस बड़ा निर्दयी पापी, देखने में भयंकर पुरुषों को भक्षण करने वाला ॥ २१ ॥ राक्षस ऐसा पीड़ित हुआ कि दिन रात उसे चैन नहीं मिला। पतिको इस दशामें देखकर ललिता भी बहुत दुखी हुई

मास मनसा दुःखेन महतार्दिता ॥ किंकरोमि क्वगच्छामि पतिः शापेन पीडितः ॥ १६ ॥
इति संस्मृत्य मनसा न शर्म लभते तु सा ॥ चचार रतिना सार्द्धं ललिता गहने बने॥२०॥
बभ्राम विपिने दुर्गे कामरूपः स राक्षसः ॥ निर्घृणः पापनिरतो विरूपः पुरुषादकः ॥ २१॥
न सुखं लभते रात्रौ न दिवा ताप पीडितः ॥ ललिता दुःखितातीवं पतिं दृष्ट्वा तथा विधम्
॥२२॥ भ्रमन्ती तेन सार्धं सा रुदती गहने वने ॥ कदाचिदगमाद्विन्ध्यशिखरे बहु कौतुके ॥२३॥

॥२२॥ वह उसी सघन वन में रोती हुई उस राक्षस पति के संग घूमती रही और कभी कभी घूमते हुए बिन्ध्या-गिरि के शिखर पर पहुँची कि जहाँ पर अनेक प्रकार के कौतुक होते हैं ॥ २३ ॥ और वहाँ उसने शृङ्गीऋषि का सुन्दर आश्रम देखा और वह ललिता जल्दी से जाकर वहाँ खड़ी हो गई ॥ २४ ॥ मुनिने देखकर कहा

कि तू ऐसी सुन्दरी कौन है और किस की पुत्री है और तू यहाँ क्यों आई है सो मुझसे ठीक ठीक कह दे
ए. ॥ २५ ॥ ललिता बोली ॥ कि एक वीरधन्वा नाम बड़ा महात्मा गन्धर्व हैं मैं उसी की कन्या हूँ और भा.
मा. मेरा नाम ललिता है और मैं पति के कार्य के लिये यहाँ आई हूँ ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मदेव ! मेरा पति शापके दोष टी.

६२ ऋष्यशृंगमुनेस्तत्र दृष्ट्वाश्रमपदं शुभम् ॥ शीघ्रं जगाम ललिता विनयावनता
स्थिता ॥ २४ ॥ प्रत्युवाच मुनिर्दृष्ट्वा का त्वं कस्य सुता शुभे ॥ किमर्थं त्वमिहायाता
सत्यं वद ममाग्रतः ॥ २५ ॥ ललितोवाच ॥ वीरधन्वेति गन्धर्वः सुतां तस्य महात्मनः ॥
ललितां नाम मां विद्धि पत्यर्थमिह चागताम् ॥ २६ ॥ भर्ता मे शापदोषेण राक्षसोऽभून्म-
हामुने ॥ रौद्र रूपो दुराचारस्तं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम् ॥ २७ ॥ साम्प्रतं शाधि मां ब्रह्मन्

से राक्षस हो गया है वह भयानक स्वरूप और दुराचारी है उसे देख मेरा सब सुख लोप हो गया है ॥ २७ ॥
सो हे मुनि ! अब मुझे उपदेश दो कि मैं वह प्रायश्चित्त करूँ कि जिस पुण्यसे मेरा पति राक्षस-योनि से
मुक्त हो जावे ॥ २८ ॥ ऋषि बोले ! हे सुन्दर जघा वाली ! अब चैत्र का शुक्ल पक्ष है उसकी कामदानाम ६२

एकादशी व्रत करने से मनुष्यों की कामना सिद्धि होती है ॥ २६ ॥ हे कल्याणी ! मेरे कहे अनुसार तू विधि पूर्वक उस कामदा एकादशी का व्रत कर और उस व्रतके पुण्य को तू अपने पति को दे दे ॥३०॥ उस पुण्य को देते ही क्षणभर में तेरा पति शाप के दोष से छूट जायगा ॥ मुनिके ऐसे उपदेश को सुन कर ललिता

प्रायश्चित्तं करोमि तत् ॥ येन पुण्येन मे भर्ता राक्षसत्वाद्विमुच्यते । २८ ॥ ऋषिरुवाच चैत्रमासस्य रंभोरु शुक्लपक्षोऽस्ति सांप्रतम् ॥ कामदैकादशी नाम्ना या कृता कामदा नृणाम् ॥ २६ ॥ कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् ॥ तस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम् ॥ ३० ॥ दत्ते पुण्य क्षणात्तस्य शापदोषैः प्रशाम्यति ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं ललिता हर्षिताऽभवत् ॥ ३१ ॥ उपोष्यैकादशीं राजन् द्वादशीदिवसे तदा ॥ विप्रस्यैव समीपेतु वासुदेवाग्रतःस्थिता ॥ ३२ ॥ वाक्यमूचे तु ललिता स्वपत्युत्तारणाय वै ॥ मया

प्रसन्न होगई ॥३१॥ और हे राजा ! एकादशी का विधिपूर्वक उपवास करके द्वादशी के दिन मुनि के समीप ही भगवान् के सामने खड़ी होकर ॥३२॥ ललिता अपने पति के उद्धार के लिये यह बोली किमैंने जो कामदा

64

एकादशी का व्रत और उपवास किया है ॥ ३३ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से इस मेरे पति का राक्षस स्वरूप वदल जाय ललिता के यह कहते ही वह गन्धर्व शाप दोष से ॥३४॥ छूट गया और उसका संपूर्ण पाप नाश हो गया और उस ललित ने दिव्य रूप धारण कर लिया राक्षसपना से छूटकर पहिले के समान फिर गन्धर्व

तु तद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम् ॥ ३३ ॥ तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता॥ ललिता वचनादेव वर्तमानोऽपि तत्क्षणे ॥ ३४ ॥ गत पापः स ललितो दिव्यदेहो बभूवह राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्तो गन्धर्वतां पुनः ॥ ३५ ॥ हेमरत्न समाकीर्णो रेमे ललितया सह ॥ तौ विमानसमारूढौ पूर्वरूपाधिकावुभौ ॥ ३६ ॥ दम्पती चापि शोभेतां कामदायाः प्रभावतः ॥ इति ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥ ३७ ॥ लोकानां च हितार्थाय

हो गया ॥ ३५ ॥ और सुवर्ण तथा रत्नों से आभूषित होकर फिर ललिता के साथ विहार करने लगा और उन दोनों का स्वरूप पहिले से भी सुन्दर होगया और वे दोनों विमान में बैठकर चारो ओर घूमने लगे ॥ ॥ ३६ ॥ कामदा नाम एकादशी व्रत के प्रभाव से वे दोनों स्त्री पुरुष बड़े शोभायमान हो गये ॥ यह जान कर

भो हे राजन्! इसका व्रत बड़े प्रयत्न से करना चाहिये ॥ ३७ ॥ संसार के कल्याण के लिये यह व्रत मैंने तुमसे कहा है। यह एकादशी ब्रह्महत्यादि पापों को नाश करने वाली और राक्षस की योनि से छुड़ाने वाली है ॥ ३८ ॥ इस चराचर त्रिलोकी में इससे बढ़कर कोई व्रत नहीं है इसकी कथा पढ़ने और सुनने से मनुष्य

तवाग्रे कथिता मया ॥ ब्रह्महत्यादि पापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी ॥ ८ ॥ नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये स चराचरे ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३९ ॥

इति श्री वाराह पुराणे कामदानाम चैत्र शुक्लैकादशी माहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथ वैशाष कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वैशाषस्य सितेपक्षे किन्नामैका-दशी भवेत ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सौभाग्यदायिनी राजन्निह लोके परत्र च ॥ वैशाष

को वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ॥ ३९ ॥

इति श्री चैत्र शुक्लैकादशी माहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथ वैशाप कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ वैशाप कृष्ण एकादशीका क्या नाम है हे वासुदेव!

65

आपको नमस्कार है आप उसके माहात्म्य को कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले ॥ हे राजन् ! वैशाष कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम वरूथिनी है यह इसलोक और परलोक दोनों में सुख देने वाली है ॥ २ ॥ यह वरूथिनी एकादशीका व्रत करने से सदा सुख मिलता है पापका नाश और पुण्य तथा सौभाग्य की वृद्धि होती

कृष्णपक्षे तु नाम्ना चैव वरूथिनी ॥ २ ॥ वरूथिन्या व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा ॥ पाप-हानिश्च भवति सौभाग्यं प्राप्तिरेव च ॥३॥ दुर्भगा या करोत्येनां सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ लोकानां चैव सर्वेषां भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी ॥ ४ ॥ सर्वपापहरा नॄणां गर्भवासनिकृन्तनी ॥ वरूथिन्या व्रतेनैव मान्धाता स्वर्गतिं गतः ॥ ५ ॥ धुन्धुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा ॥ ब्रह्मकपाल निर्मुक्तो बभूव भगवान् भवः ॥ ६ ॥ दश वर्ष सहस्राणि तपस्तप्यति यो

है ॥ ३ ॥ जो दुर्भगा स्त्री इस एकादशी के व्रतको करती है उसे सौभाग्य मिलता है और यह एकादशी भुक्ति मुक्ति देनेवाली है ॥४॥ और यह मनुष्यों को पाप से छुड़ाकर आवागमन से छुड़ाने वाली अर्थात् मोक्षपद को देनेवाली है ॥ इस वरूथिनी एकादशी के प्रभाव से ही राजा मान्धाता स्वर्ग को प्राप्त किये हैं ॥ ५ ॥ और भी

बहुत से धन्धुमार आदि राजा स्वर्गवास करते हैं और भगवान् शिवजी ब्रह्म कपाल से निर्मुक्त हुए हैं ॥ ६ ॥ जो मनुष्य दश हजार वर्षतक तपस्या करै उसके बराबर फल इस बरूथिनी एकादशी का व्रत करने से मिलता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में स्वर्ण के तुलादान से जो फल प्राप्त करता है वह फल

नरः ॥ तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतादपि ॥ ७ ॥ रविग्रहे कुरुक्षेत्रे स्वर्णभारं ददाति यः ॥ तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रतान्नरः ॥ ८ ॥ श्रद्धावान् यस्तु कुरुते बरूथिन्या व्रतं नरः ॥ वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च ॥ ९ ॥ पवित्रा पावनी ह्येषा महापातक नाशिनी ॥ भुक्ति मुक्ति प्रदा चापि कर्तॄणां नृपसत्तम ॥ १० ॥ अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते ॥ गजदानाद्भूमिदानं तिलदानं ततोऽधिकम् ॥ ११ ॥ ततः

66

इस एकादशी के व्रत करने से पाता है ॥ ८ ॥ और जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस बरूथिनी एकादशी का व्रत करता है वह इसलोक और परलोक में अपने मनोरथ के फल को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥ यह पवित्र बरूथिनी दूसरों को पवित्र करने वाली और बड़े बड़े पापोंको नाश करने वाली है "हे नृप श्रेष्ठ ! व्रत करने वालों"को

भोग और मोक्ष देने वाली है ॥ १० ॥ हे राजन्! अश्वदान से हाथी का दान श्रेष्ठ है और हाथी के दान से पृथ्वी का दान बड़ा और पृथ्वी दान से तिलदान बड़ा है ॥ ११ ॥ तिलदान से सुवर्ण दान और सुवर्णदान से अन्नदान बड़ा है इस अन्नदान से बढ़ कर न कोई दान हुआ और न है न होगा ॥ १२ ॥ क्योंकि देवता

सुवर्णदानं तु अन्नदानं ततोऽधिकम् ॥ अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥ पितृदेवमनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते ॥ तत्समं कविभिः प्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम ॥१३॥ धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान् स्वयम्॥प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते ॥१४॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ॥ १५ ॥ ते नराः नरकं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन

पितर और मनुष्य सब को अन्नसे ही तृप्ति होती है और हे नृपोत्तम! उसीके समान कवियों ने कन्यादान की महिमा कही है ॥ १३ ॥ कन्यादान के बराबर गौका दान है यह भगवानने स्वयं कहा है इसके अतिरिक्त जितने दान हैं उनमें विद्यादान श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य यह दान करने से वंचित है

उसको यह फल वरूथिनी एकादशी के व्रत से मिलता है । और जो मनुष्य पाप में निरत होकर कन्या के धन से जीवते हैं ॥ १५ ॥ वे मनुष्य महाप्रलय पर्यन्त नरक भोगते हैं इसलिये बड़े प्रयत्न से कन्या के धन का त्याग करना चाहिये ॥ १६ ॥ और जो मनुष्य लोभ से कन्या को वेंचकर उस धन को लेते हैं हे राजेन्द्र !

न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ॥ १६ ॥ यश्च गृह्णाति लोभेन कन्यां क्रीत्वा च तद्धनम् ॥ सोऽन्य जन्मनि राजेन्द्र ओतुर्भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥ कन्यां वित्तेन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलंकृताम् ॥ तत्पुण्यसंख्या कर्तुं हि चित्रगुप्तो नवेत्पलम् ॥ १८ ॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥ शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजन मैथुने ॥ १६ ॥ वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥ द्यूतक्रीड़ां च

सो दूसरे जन्म में बिलाव की योनि पाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य यथाशक्ति वित्त के अनुसार कन्या को अलंकृत्य करके दान करते हैं उनके पुण्य की संख्या को चित्र गुप्त भी नहीं जानते और न तो करही सक्ते हैं ॥ १८ ॥ उसी कन्यादान के फल को मनुष्य वरूथिनी का व्रत करने से प्राप्त करता है,

67

कांसेसे वर्तन में भोजन १ मांस २ मसूर ३ चना ४ कोदो ५ शाक ६ मधु ७ दूसरे का अन्नभोजन ८ और दिन में दोबार का भोजन ६ और मैथुन १० ॥१६॥ इन दश बातों को एकादशो का व्रत करने वाला वैष्णव दशमी के दिन त्याग देवे ॥ और जूआ खेलना १ निद्रा २ ताम्बूल भक्षण ३ और दन्तधावन ४ ॥२०॥

निद्रां च तांबूलं दन्तधावनम् ॥ २० ॥ परापवादं पैशुन्यं पतितैः सहभाषणम् ॥ क्रोधं
चैवानृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत ॥ २१ ॥ कांस्यं मांसं मसूरांश्च चौद्रंवितथभाषणम् ॥
व्यायामं च प्रयासं च पुनर्भोजन मैथुने ॥२२॥ चौरं तैलं परान्नं च द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥
अनेन विधिना राजन् विहिता यैर्वरूथिनी ॥ सर्व पापक्षयं कृत्वा दद्यात्सान्तेऽक्षयां गतिम् ॥२३॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा पूजितो यैर्जनार्दनः ॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥

पराई निन्दा ५ चुग़ली ६ नीचों के संग बात–चीत करना ७ क्रोध ८ असत्य बोलना ६ इन नौ बातों को व्रत करने वाला एकादशी के दिन त्याग देवे ॥ २१ ॥ और कांस्य के पात्र में भोजन १ मांस २ मसूर ३ मधु ४ असत्य ५ व्यायाम ६ तथा परिश्रम ७ दुबारा भोजन ८ मैथुन ॥ २२ ॥ चौर १० तैल ११ और परान्नभोजन

ये बारह १२ बातें व्रत करनेवाला वैष्णव द्वादसी के दिन त्याग देवे ॥ हे राजन्! इस विधि से जो वरूथिनी का व्रत करते हैं वे सब पापों से छुट जाते हैं और अन्त में अक्षय गति को पाते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य भगवान् का पूजन करके एकादशी की रात्रि में जागरण करता है वह सब प्रकार के पापों से छूट

॥ २४ ॥ तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः ॥ नृपारि तनयाद्भीतैर्नरदेव वरूथिनी ॥ २५ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गो सहस्रफलं लभेत् ॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तो विष्णु लोके महीयते ॥ २६ ॥ इति श्री भविष्योत्तर पुराणे वैशाख कृष्णैकादश्या वरूथिन्याख्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

कर परम गति को पाता है ॥२४॥ इसलिये हे राजन्! पाप और नरक से भयमानने वालों को सबप्रकार से वरूथिनी का व्रत करना चाहिये ॥२५॥ हेराजन्! इस कथा को पढ़ने और सुनने से हजार गोदान का फल मिलता है और मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में सुख भोगता है ॥२६॥ वैसाख कृष्णैकादश्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

68

अथ वैशाख शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर ने कहा ॥ हे जनार्दन ! वैसाख शुक्लपक्ष की एकादशी का क्या नाम है और उसका क्या फल है और उसकी क्या विधि है वह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले ॥ हे धर्मनन्दन ! सुनो मैं इस कथा को कहता हूँ इसी एकादशी को श्रीरामचन्द्रजी ने वशिष्ठ जी से पूछा

अथ वैशाख शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वैशाष शुक्लपक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत् ॥ किंफलं कोविधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयामि कथामेतां शृणुत्वं धर्मनन्दन ॥ वसिष्ठो यामकथयत् पुरा रामाय पृच्छते ॥ २ ॥ श्रीराम उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ सर्वपापक्षय करं सर्वदुःखनिकृन्तनम् ॥ ३ ॥ मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरह जानि वै ॥ ततोऽहं भयभीतोऽस्मि

है और रामजी के पूछने पर वसिष्ठजीने इसकी विधि कही थी ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले ॥ हे भगवान् ! व्रतों में सबसे श्रेष्ठ व्रत को सुनना चाहता हूँ जो सब पाप और दुःख को नाश करने वाला होवे ॥ ३ ॥ मैंने सीता के वियोग में बड़े बड़े दुःखों को सहा हूं इस कारण उस दुःख के भयसे डरकर मैं आपसे पूछता हूँ हे महामुनि जी

॥ ४ ॥ वशिष्ठ जी ने कहा ॥ हे राम जी तुमने तो वहुत अच्छी वात पूछी यह तो तुम्हारी नैष्ठिकी बुद्धि और श्रद्धा की वात है । तुम्हारे तो नाम लेने से ही महापातकी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं ॥५॥ तो भी मैं मनुष्य की हितकामना से पवित्र को भी पवित्र करने वाला उत्तम व्रत कहता हूँ ॥ ६ ॥ रामजी ! वैशाष शुक्ल

पृच्छामित्वां महा मुने ॥ ४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकी मतिः त्वन्नाम ग्रहणेनैव पूता भवति मानवः ॥ ५ ॥ तथापि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया पवित्रं पावनानांच व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ६ ॥ वैशाषस्य सितेपक्षे द्वादशी राम या भवेत् ॥ मोहिनी नाम सा प्रोक्ता सर्वपाप हरा परा ॥ ७ ॥ मोहजालात्प्रमुच्येत पातकानां समूहतः अस्या व्रत प्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ८ ॥ अतस्तु कारणाद्राम कर्तव्यैषा भवादृशैः ॥

69

पक्ष की जो द्वादशी विद्धा अर्थात् द्वादशीयुक्त जो एकादशी होती है उसका नाम मोहिनी है वह सब प्रकार के पापों को नाश करने वाली है ॥ ७ ॥ इस व्रत के प्रभाव से मनुष्य मोहजाल और पातकों से छूट जाता है मैं सत्य सत्य कहता हूँ ॥ ८ ॥ इसलिये हे रामजी ! आपके ऐसे नैष्ठिक मनुष्यों को यह व्रत करना चाहिये ।यह

पातक और बड़े बड़े दुःखों को नाश करने वाली ॥ ९ ॥ हे रामजी ! चित्त को एकाग्र करके इसकी कथा को सुनो । इस कथा को सुनने मात्रसे बड़ा से बड़ा पाप दग्ध हो जाता है ॥ १० ॥ सरस्वती नदी के मनोहर तटपर एक सुन्दर भद्रावती नाम नगरी है उस पुरीका द्युतिमान नाम राजा राज्य करता था ॥ ११ ॥ हे रामजी !

पातकानां क्षयकरी महादुःख विनाशिनी ॥ ९ ॥ शृणुष्वैकमना राम कथां पुण्य प्रदां शुभाम् ॥ यस्याः श्रवण मात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ १० ॥ सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा ॥ द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै ॥ ११ ॥ शोमवंशोद्भवोराम धृतिमान् सत्यशंकरः ॥ तत्र वैश्यो निवसति धनधान्य समृद्धिमान् ॥ १२ ॥ धनपाल इति ख्यातः पुण्यकर्म प्रवर्तकः ॥ प्रपा सत्राग्न्यायतन तडागा राम कारकः ॥ १३ ॥ विष्णुभक्ति परः

चन्द्रवंश में उत्पन्न धैर्यवान् और प्रतिज्ञा को पालन करने में दृढ़ था । उसकी नगरी में धनधान्य से सम्पन्न एक वैश्य रहता था ॥ १२ ॥ उसका नाम धनपाल था, और वह सदा पुण्य-कर्म को किया करता था । उसने पौसाला, यज्ञशाला, तालाव, बगीचा आदि बनवाया था ॥ १३ ॥ और अत्यन्त विष्णुभक्त तथा शांत

चित्त था और उसको पाँच पुत्र थे सुमना १ द्युतिमान २ मेधावी ३ सुकृती ॥ ४ ॥ और पाँचवां महापापी धृष्ट बुद्धि था ॥ वह सदा वेश्याओं का संग करता और आततायियों की सभा में बड़ा चतुर था ॥ १५ ॥ जुआ खेलने का व्यसनी, पराई स्त्री में सदा प्रेम रखने वाला, देवता अतिथि,वृद्ध, पितर, और ब्राह्मण इनका

शान्तस्तस्यासन् पञ्चपुत्रकाः ॥ सुमना द्युतिमांश्चैव मेधावी सुकृती तथा ॥ १४ ॥ पंचमो धृष्ट बुद्धिश्च महापापरतः सदा ॥ वारस्त्री संगनिरतो विट्गोष्ठी विशारदः ॥१५॥ द्यूतादि व्यसनासक्तः परस्त्रीरति लालसः ॥ न देवांश्चातिथीन् वृद्धान् पितृंश्चार्चे द्विजानपि ॥१६॥ अन्यायकर्ता दुष्टात्मा पितृद्रव्यक्षयंकरः ॥ अभक्ष्यभक्षकः पापः सुरापानरतः सदा ॥ १७ ॥ वेश्या कण्ठ क्षिप्तबाहुर्भ्रमदृष्टिश्चतुष्पथे ॥ पित्रा निष्कासितो गेहात्परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥

सन्मान नहीं करता था ॥ १६ ॥ और अन्याय करने वाला, दुष्ट कर्म में निरत, और पिता के द्रव्य को नाश करने वाला, पापी, और सदा अभक्ष्य पदार्थ को खानेवाला और मदिरा पीने वाला था ॥ १७ ॥ और वेश्या के गले में हाथ डाल कर उसकी तरफ देखता हुआ सड़कों पर घूमता था। । उसके कर्म से उसके पिता ने उसे

70

घर से निकाल दिया और उसके बन्धु भा यों न भी उसे छोड़ दिया ॥१८॥ और अपने देह के आभूषण तक को वेचकर धन खर्च कर डाला फिर धन के नष्ट हो जाने पर वेश्याओं ने भी उसका साथ छोड़ दिया और उसकी निन्दा फैलने लगी ॥ १६ ॥ फिर जब अन्न वस्त्र से भ्रष्ट होकर भूखों मरने लगा तो उसको बड़ी

॥ १८ ॥ स्वदेह भूषणान्येवं क्षयं नीतानि तेन वै ॥ गणिकाभिः परित्यक्तो निन्दितश्च धन-क्षयात ॥ १६ ॥ ततश्चिन्तापरो जातो वस्त्रहीनः क्षुधार्दितः ॥ किंकरोमि क्व गच्छामि केनोपायेन जीव्यते ॥ २० ॥ तस्करत्वं समारब्धं तत्रैव नगरेतुसः ॥ गृहीतो राजपुरुषै-र्मुक्तश्च पितृगौरवात् ॥ २१ ॥ पुनर्बद्धः पुनर्मुक्तः स राजपुरुषैः भटैः ॥ धृष्टबुद्धिर्दुरा-चारो निबद्धो निगडैर्दृढैः ॥ २२ ॥ कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः ॥ न

चिन्ता हुई कि मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किस प्रकार अपने जीवन का निर्वाह करूँ ॥ २० ॥ यह सोच कर फिर उसने नगर में चोरी करना आरम्भ कर दिया । तब इसे राजपुरुषों ने पकड़ा किन्तु राजा का पुत्र जानकर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ राजा के सिपाहियों ने उसे कई वार बाँधा और छोड़ा अन्त में हारमान

कर उस दुराचारी धृष्टबुद्धि को पक्की बेड़ियों से बाँध दिया ॥ २२ ॥ और कोड़ों से मार उसे बार बार पीड़ा दिया और राजा ने उससे कहा हे दुष्ट ! तू हमारे देश भर में मत रह ॥ २३ ॥ ऐसा कह कर बेड़ी कटवा कर उसे छुड़वा दिया फिर वह राजा के भय से एक कठिन वन में चला गया ॥ २४ ॥ और वह धृष्ट-

स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देश गोचरे ॥ २३ ॥ एव मुक्त्वा ततो राज्ञा मोचितो दृढ़-बन्धनात् ॥ निर्जगाम भयात्तस्य गतोऽसौ गहनं वनम् ॥ २४ ॥ क्षुत्तृषा पीडितश्चायमितं श्चेतश्च धावति ॥ सिंहवान्निजघानासौ मृग सूकर चित्तज्ञान् ॥ २५ ॥ आमिषाहारनिरतो वने तिष्ठति सर्वदा ॥ शरासने शरंकृत्वा निषङ्गं पृष्ठसंगतम् ॥ २६ ॥ अरण्यचारिणो हन्ति पक्षिणश्च चतुष्पदान् ॥ चकोरांश्च मयूरांश्च कंकांस्तित्तरि मूषकान् ॥ २७ ॥ एतानन्यान्

बुद्धि भूख प्यास के मारे इधर उधर घूमने लगा और सिंह के समान मृगा सूकर और चीतों को मारने लगा ॥ २५ ॥ सदा मांस खाना वन में रहना और धनुष पर बाण चढ़ाये पीठ पर तरकस बाँधे ॥ २६ ॥ वन में विहार करने वाले पशु पक्षियों को तथा चकोर, मोर, बगुला, तीतर, और मूसा ॥ २७ ॥ इनको वह

ए. मा. निर्दयी धृष्टबुद्धि नित्यमारकर पूर्वजन्म के संचित पापों से पापरूपी कीचड़ में फँस गया ॥ २८ ॥ और वह दुःख शोक से युक्त दिन रात चिन्ता करने लगा फिर किसी पुण्य के प्रभाव से कौडिन्य ऋषि के आश्रम पर पहुँचा ॥ २९ ॥ जब शोकभार से पीड़ित धृष्टबुद्धि वैशाख मास में गंगास्नान करनेवाले तपोधनी ऋषि के

भा. टी.

७ हन्ति नित्यं धृष्ट बुद्धिः स निर्घृणः ॥ पूर्व जन्म कृतैः पापैर्निमग्नः पापकर्दमे ॥ २८ ॥
दुःखशोक समाविष्टश्चिन्तयन् शोक हर्निशम् ॥ कौंडिन्यस्याश्रमं प्राप्तः कस्माच्चित्पुण्य
गौरवात् ॥ २९ ॥ माधवे मासि जान्हव्यां कृतस्नानं तपोधनम् ॥ आससाद धृष्टबुद्धिः
शोक भारेण पीड़ितः ॥ ३० ॥ तद्वस्त्र विन्दुस्पर्शेन गतपाप्मा हताशुभः । कौडिन्यस्याग्रतः
स्थित्वा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥ ३१ ॥ धृष्टबुद्धिरुवाच ॥ प्रायश्चित्तंवदब्रह्मन्बिनायत्नेन

पास पहुँचा ॥ ३० ॥ तब उनके वस्त्र से गिरे गंगाजल के बूँद के स्पर्श से उस दुष्ट का सब पाप नष्ट होगया और वह हाथ जोड़ कौडिन्य ऋषि के सामने खड़ा होकर कहने लगा ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ऐसा प्रायश्चित्त बतलाइए जो बिना प्रयत्न ही हो जाय, जीवन भर पाप करने से इस समय मेरे पास धन नहीं है

॥ ३२ ॥ ऋषि ने कहा जिसके द्वारा तेरा पाप क्षय होगा उसको तू एकाग्र चित्त से सुन, वैशाष के शुक्लपक्ष में मोहिनी नामक एकादशी होती है ॥ ३३ ॥ यह मनुष्य के सुमेरु पर्वत के समान पापों को नष्ट करती है, इसलिए तू मेरे कहने से इस एकादशी का व्रत कर ॥ ३४ ॥ यह मोहिनी एकादशी का व्रत बहुत से

यद्भवेत् ॥ आजन्मकृतपापस्यनास्तिवित्तंममाधुना ३२ ऋषिरुवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वायेन पापक्षयस्तव ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे मोहिनीनामनामतः ॥ ३३ ॥ एकादशीव्रतं तस्मात् कुरुमद्वाक्यनोदितः ॥ मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं नयति देहिनाम् ॥ ३४ ॥ बहुजन्मार्जितान्येषा मोहिनी समुपोषिता ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा धृष्टबुद्धिर्हसन् हृदि ॥ ३५ ॥ व्रतं चकार विधिवत् कौंडिन्यस्योपदेशतः ॥ कृतेव्रते नृपश्रेष्ठ हतपापो बभूव सः ॥ ३६ ॥

जन्मों के किए हुए पापों को नाश करता है, मुनि की यह बात सुनकर धृष्टबुद्धि अपने मनमें प्रसन्न हो गया ॥ ३५ ॥ और कौंडिन्य मुनि के उपदेश से विधि पूर्वक व्रत किया । हे श्रेष्ठ राजा ! मोहिनी का व्रत करने से वह पाप रहित हो गया ॥ ३६ ॥ उसके बाद गरुड़ के ऊपर सवार होकर सब तरह के उपद्रवों से हीन होकर

विष्णुलोक को गया ॥ ३७ ॥ हे रामचन्द्र तम और मोह को नाश करनेवाला यह ऐसा व्रत है कि इससे परे चराचर तीनों लोकों में कुछ नहीं है ॥ ३८ ॥ हे राजन् तीर्थ, दान और यज्ञ आदि इसके सोलहवें कला के

दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः ॥ जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥ ३७ ॥
इतीदृशे रामचन्द्र तमोमोहनिकृन्तनम् ॥ नातः परतरं किञ्चित् त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३८ ॥
यज्ञादितीर्थदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३९ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणेवैशाखशुक्लमोहिनी एकादशीमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥ १२ ॥

बराबर नहीं है । इसके पढ़ने और सुनने से छः हजार गोदान का फल मिलता है ॥ ३९ ॥ इति श्री कूर्म पुराणे वैशाख शुक्ल मोहिनी एकादशी माहात्म्यं भाषा टीका सम्पूर्णम् ॥ १२ ॥



अथ श्रेष्ठ कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर ने पूछा ॥ हे जनार्दन ! ज्येष्ठ कृष्ण पक्षको एकादशी का क्या नाम है मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले हे राजन् ! संसार के हित के लिये तुमने यह अच्छी बात पूंछो है यह एकादशी बड़े पुण्य को देनेवाली और बड़े बड़े पातकों को

अथ ज्येष्ठकृष्णैकादशीकथाप्रारम्भः ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ श्रोतुमिच्छामिमाहात्म्यं तद्वदस्वजनार्दनः ॥ १ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयाराजन्लोकानांहितकाम्यया ॥ बहुपुण्यप्रदाह्येषामहापातकनाशिनी ॥ २ ॥ अपरानाम राजेन्द्रअपारफलदायिनी ॥ लोके-प्रसिद्धतां याति अपरा यस्तु सेवते ॥ ३ ॥ ब्रह्महत्याभिभूतोऽपि गोत्रहा भ्रूणहा तथा ॥

नाश करनेवाली है ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! इसका नाम अपरा है और यह एकादशी अपार फलको देनेवाली है जो इस अपरा एकादशी का व्रत करता है वह लोक में विख्यात होजाता है ॥ ३ ॥ यहाँ तक कि ब्राह्मण को मारनेवाला, गोत्र में घात करनेवाला, बालकों का घात करनेवाला, दूसरे की निन्दा करनेवाला, और पराई

73

स्त्री से भोग करनेवाला ॥ ४ ॥ हे राजन् ! स अपरा एकादशी का व्रत करने से निश्चय करके पाप नष्ट होजाते हैं । जो झूँठी गवाही देता है, झूठा प्रणाम देता है, सदा झूँठा बोलता है ॥ ५ ॥ और जो ब्राह्मण झूठा वेद पढ़ता है, जो झूठा शास्त्र बनाता है जो ज्योतिषी झूँठा बताता है और जो वैद्य झूँठी औषधी देता है

परापवादवादी च परस्त्रीरसिकोऽपि च ॥ ४ ॥ अपरासेवनाद्राजन् विपाप्मा भवति ध्रुवम् ॥
कूटसाक्ष्यं मानकूटं तुलाकूटं करोति यः ॥ ५ ॥ कूटवेदं पठेद्विप्रः कूटशास्त्रं करोति च ॥
ज्योतिषी कूटगणकः कूटायुर्वेदकोभिषक् ॥ ६ ॥ कूट साक्षि समाह्येते विज्ञेया नरकौकसः ॥
अपरासेवनाद्राजन् पापमुक्ता भवन्ति ते ॥७॥ क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते
स याति नरकं घोरं स्वीयधर्म वहिष्कृतः ॥ ८ ॥ अपरा सेवनात्सोऽपि पापंत्यक्त्वा दिवं

॥ ६ ॥ ये सब कूट मार्ग पर चलनेवाले झूठे गवाह के समान हैं और इन सब कर्मों के द्वारा नरक भोगनेवाले हैं । परन्तु हे राजा ! वह कर्म और उन कर्मों का नरकवास रूपी फल अपरा के व्रत से नष्ट हो जाते हैं ॥ ७॥ जो क्षत्रिय अपने धर्मों को त्यागकर संग्राम से भाग जाता है वह अपने धर्म से रहित होकर घोर नरक को

जाता है ॥ ८ ॥ वह भी अपरा का व्रत करके पाप से मुक्त होकर स्वर्ग को जाता है। और जो शिष्य विद्या पढ़कर गुरू की निन्दा करता है ॥ ९ ॥ वह महापातकी होकर घोर नरक में जाता है सो वह भी मनुष्य अपरा के व्रत के प्रभाव से परम गति को पाता है ॥ १० ॥ कार्तिकी पूर्णिमा के दिन तीनों पुष्कर स्नान

व्रजेत् ॥ विद्यामधीत्य यः शिष्यो गुरुनिन्दां करोति च ॥ ९ ॥ महापातक संयुक्तो निरयं याति दारुणम् ॥ अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥ १० ॥ पुष्करत्रितये स्नात्वा कार्तिक्यां यत्फलं लभेत् ॥ मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे यत्फलं नृणाम् ॥ ११ ॥ काश्यां यत्प्राप्यते पुण्यं शिवरात्रेरुपोषणात् ॥ गयायां पिण्डदानेन यत्फलं प्राप्यते नृभिः ॥ १२ ॥ सिंहस्थिते देवगुरौ गौतमीस्नानतोनरः । यत्फलं समवाप्नोति कुम्भे केदार दर्शनात् ॥ १३ ॥

करने से जो फल मिलता है और मकर राशिके सूर्य होने पर माघ मास में प्रयाग तीर्थ में स्नान करने का जो फल मनुष्यों को मिलता है ॥ ११ ॥ और काशी में शिवरात्रि का व्रत करने से जो पुण्य होता है और गया क्षेत्र में पिण्डदान करने से मनुष्यों को जो फल होता है वही फल अपरा एकादशी के व्रत करने से प्राप्त

होता है ॥ १२ ॥ और मनुष्य को जो फल सिंह के बृहस्पति में गोदावरी स्नान से कुम्भ के बृहस्पति में केदार-नाथ के दर्शन से मिलता है वह फल अपरा एकादशी के व्रत से मिलता है ॥ १३ ॥ और बदरिका-श्रम की यात्रा और बदरीनाथ के दर्शन तथा तीर्थसेवन से जो फल मिलता है। और जो फल सूर्यग्रहण के

बदर्याश्रमयात्रायास्तत्तीर्थ सेवनादपि ॥ यत्फलं समवाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥ १४ ॥
गजाश्वहेमदानेन यज्ञे कृत्स्न सुवर्णदः ॥ तत्फलं समवाप्नोति अपराया व्रतान्नरः ॥ १५ ॥
अर्धप्रसूतां गां दत्वा सुवर्णं वसुधां तथा ॥ नरो यत्फलमाप्नोति अपराया व्रतेन तत् ॥ १६ ॥
पापद्रुमकुठारोऽयं पापेन्धनदवानलः ॥ पापान्धकारसूर्योऽयं पापसारङ्गकेसरी ॥ १७ ॥ अप-

समय कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान करने से मिलता है ॥ १४ ॥ और जो फल हाथी घोड़ों के दान से और यज्ञ में सुवर्णदान से मिलता है वही फल अपरा एकादशी के व्रत से मिलता है ॥ १५ ॥ आधीब्याई गौ के दान से तथा सुवर्ण और पृथिवी के दान से जो फल मिलता है वह अपरा एकादशी के व्रत से मनुष्य को मिलता है ॥ १६ ॥ यह एकादशी का व्रत पापरूपी वृक्ष को काटने में कुल्हाड़ो के समान पापरूपी ईंधन के

लिये दावानल के समान है पापरूपी अन्धकार के लिये सूर्य के समान है और पापरूपी मृग के लिये सिंह के समान है ॥ १७ ॥ इसलिये हे राजन्! पाप से भय माननेवाले मनुष्यों को अपरा एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिये वे पानी में बुलबुले के समान और जीवों में भुनगों के समान ॥ १८ ॥ मरने को ही उत्पन्न होते

रैकादशी राजन् कर्तव्या पापभीरुभिः ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ॥ १८ ॥
जायन्ते मरणायैव एकादश्या व्रतं विना ॥ अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥१९॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ लोकानांच हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २० ॥ इति श्रीब्रह्माण्ड पुराणे ज्येष्ठकृष्णापराख्यै-
कादशी माहात्म्यं समाप्तम् ॥

हैं कि जो एकादशी का व्रत नहीं करते। अपरा एकादशी का उपवास और विष्णुभगवान का पूजन करने से ॥ १९ ॥ मनुष्य सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है, लोकों के हित के लिये यह मैंने तुमसे कहा है। हे राजा! इस कथा को पढ़ने और सुनने से मनुष्य अनेक प्रकार के पापों से छूट जाता है ॥२०॥

॥ इति ज्येष्ठकृष्णैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

ज्येष्ठशुक्लैकादशी कथा ॥ भीमसेन ने पूछा ॥ हे महाबुद्धि ! हे पितामह ! मेरे परम वचन को सुनिये । युधिष्ठिर, कुन्ती, और द्रौपदी ॥ १ ॥ अर्जुन, नकुल, सहदेव, ये सब एकादशी को हे सुव्रत ! कभी भी भोजन नहीं करते हैं ॥ २ ॥ और वे मुझसे भी सदा कहते हैं कि हे वृकोदर ! तू भी भोजन मत कर

अथ ज्येष्ठशुक्लैकादशी कथा ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामह महाबुद्धे शृणुमेपरमं वचः ॥ युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदनन्दिनी ॥ १ ॥ अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत कदाचिदपि सुव्रत ॥ २ ॥ ते मां ब्रुवन्ति वै नित्यं मा भुंक्ष्व त्वं वृकोदर ॥ अहं तानब्रुवं तात बुभुक्षा दुःसहा मम ॥ ३ ॥ दानं दास्यामि विधिवत्पूजयिष्यामि केशवम् ॥ विनोपवासं लभ्येत कथमेकादशीव्रतम् ॥ भीमसेन वचः श्रुत्वा

परन्तु हे तात ! मैं उनसे यह कहता हूँ कि मुझसे विना भोजन किये नहीं रहा जाता ॥ ३ ॥ मैं विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान और भगवान का पूजन करूँगा इसलिये बिना उपवास के मुझे भी एकादशी के व्रत का फल जैसे मिले वह कहिये ॥ ४ ॥ भीमसेन के वचन को सुनकर व्यासजी ने कहा कि तुमको स्वर्ग अधिक

प्यारा है और नरकवास बुरा है ॥ ५ ॥ तो हर महीने के दोनों पक्ष में एकादशी को भोजन मत किया करो॥
भीमसेन बोले ॥ हे महाबुद्धि पितामह ! मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर ! जब एक बार के भोजन
करने पर भी मुझसे नहीं रहा जाता तो उपवास सहित मैं कैसे रह सकता हूँ क्योंकि वृक नाम अग्नि सदा

व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ व्यास उवाच ॥ यदि स्वर्गोत्यभीष्टस्ते नरकोऽभिष्ट एव च ॥ ५ ॥
एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामह महाबुद्धे कथयामि
तवाग्रतः ॥६॥ एकभुक्तेन शक्तोहमुपवासेः कुतो मुने ॥ वृको नामास्ति यो वह्निः स सदा
जठरे मम ॥ ७ ॥ अतीवान्नं यदाश्नामि तदा समुपशाम्यति ॥ एकं शक्तोस्म्यहं कर्तुं चोप-
वासं महामुने ॥ ८ ॥ तदेकं वद निश्चित्ययेन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुता

मेरे पेट में रहती है ॥ ७ ॥ जब मैं बहुत सा अन्न खाता हूँ तभी मुझको शान्ति होती है हे महामुनिजी ।
मुझसे एक उपवास हो सकता है ॥८॥ सो आप मुझे एक व्रत निश्चय करके कहो कि जिससे मेरा कल्याण
हो । तब व्यास जी बोले ॥ तुमने मुझसे मनुष्य के और वेद के कहे हुए धर्म को सुने ॥९॥ परन्तु हे राजन्!

76

कलियुग में उन व्रतों का करना कठिन है उसका सहज उपाय यह है कि जिसमें धन भी थोड़ा खर्च हो और थोड़े कष्ट उठाने से बहुत बड़ा फल मिलै ॥१०॥ वह सब पुराणों का सार मैं तुमसे कहता हूँ कि जो बारहो महीना में दोनों पक्ष की एकादशी के दिन भोजन नहीं करता है ॥ ११ ॥ वह नरक को नहीं जाता है। यह

स्ते मानवा धर्मा वैदिकश्च श्रुतास्त्वया ॥ ९ ॥ कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ॥ सुखोपायं चाल्पधनमल्प क्लेशं महाफलं ॥ १० ॥ पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामिते ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ ११ ॥ एकादश्यां न भुंक्ते यो न याति नरकं तु सः ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् ॥ १२ ॥ भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामह न शक्तोऽहमुपवासे

व्यास जी के वचनको सुनकर भीमसेन पीपल के पत्ते के समान कांप उठे ॥ १२ ॥ फिर महाबाहु भीमसेन डरकर यह वचन बोले ॥ हे पितामह ! मैं क्या करूँ मुझसे उपवास नहीं हो सकता ॥१३॥ हे स्वामी ! मुझसे अधिक फल देने वाले एक व्रत को कहिये। व्यासजी बोले कि वृषराशि अथवा मिथुन राशि के सूर्य में

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की जो एकादशी होती है ॥ १४ ॥ उसका प्रयत्न पूर्वक निर्जल व्रत करना चाहिये, निर्जल व्रत में स्नान और आचमन वर्जित नहीं है ॥ १५ आचमन के परिमाण से अधिक जल पीने से व्रत खण्डित

करोमि किम् ॥ १३ ॥ ततो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकं मम प्रभो ॥ व्यास उवाच ॥ वृषस्थ मिथुनस्थेर्के शुक्लायैकादशी भवेत् ॥ १४ ॥ ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥ स्नाने चाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः ॥१५॥ उपयुञ्जीत नैवान्यव्रतभंगोऽन्यथा भवेत् ॥ उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा जलं बुधः ॥ १६ ॥ अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशं-द्वादशीफलम् ॥ ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां स्नानमाचरेत् ॥ १७ ॥ जलं सुवर्णं दत्वा च

हो जाता है और विवेकी को चाहिये कि एकादशी के सूर्योदय से लेकर द्वादशी के सूर्योदय पर्यन्त जल न पीवे ॥ १६ ॥ इस प्रकार एक निर्जल एकादशी का व्रत करने से विना प्रयत्न मनुष्य बारहो एकादशियों का फल पाता है फिर द्वादशी के दिन प्रातः काल होते ही स्नान करै ॥ १७ ॥ फिर विधिपूर्वक ब्राह्मणों को जल और

सुवर्ण का दान करे फिर वह व्रत करनेवाला कृतकृत्य होकर ब्राह्मणों के साथ भोजन करे ॥ १८ ॥ हे भीमसेन ! इस प्रकार व्रत करने से जो पुण्य होता है उसे सुनो कि एक वर्ष भरमें जितनी एकादशी होती

द्विजातिभ्यो यथाविधि ॥ भुंजीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी ॥ १८ ॥ एवं कृते तु यत्पुण्यं भीमसेन शृणुष्व तत् ॥ सम्वत्सरस्य या मध्ये एकादश्यो भवन्ति वै ॥ १९ ॥ तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ॥ इति मां केशवः प्राह शंख चक्र गदाधरः ॥ २० ॥ एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठस्योदक वर्जितम् ॥ उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर॥२१॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति इमां कृत्वा वृकोदर ॥ २२ ॥

हैं ॥ ॥ १९ ॥ उन सब का फल इसके व्रत करने से होता है इसमें मुझे सन्देह नहीं है । यह फल शङ्ख चक्र और गदा को धारण करनेवाले श्रीविष्णु भगवान ने मुझसे कहा है ॥ २० ॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत निर्जल करने से जो फल मिलता है उसे हे वृकोदर ! सुनो ॥ २१ ॥ वर्ष भर में कृष्ण

और शुक्लपक्ष की जितनी एकादशी हैं उन सब के व्रत का फल इस एक एकादशी के निर्जल व्रत करने से हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ व्रत करने से यह एकादशी धन धान्य को देनेवाली पुत्र और आरोग्यता के फल की देनेवाली है। हे नरसिंह! यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ २४ ॥ बड़े भयानक काले

संवत्सरस्य यावत्यः शुक्लाः कृष्णा वृकोदर ॥ उपोषितास्ताः सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः ॥ २३ ॥ धन धान्यवहाः पुण्याः पुत्रारोग्य फलप्रदाः ॥ उपोषिता नरव्याघ्र इति सत्यं वदामि ते ॥ २४ ॥ यमदूता महाकायाः करालाः कृष्णपिङ्गलाः ॥ दण्डपाशधरा रौद्रा मरणे दृष्टि गोचरम् ॥ २५ ॥ न प्रयान्ति नरव्याघ्र एकादश्यामुपोषणात् ॥ पीताम्बर-धराः सौमाश्चक्र हस्ता मनोजवाः ॥ २६ ॥ अन्तकाले नयन्त्येव मानवं वैष्णवीं पुरीम् ॥

पीले रंगवाले भयंकर दंड और फांसी को हाथ में लिये ऐसे यमदूतों का मरते समय दर्शन नहीं होता है अर्थात् आँखों के सामने यमदूत नहीं आते ॥ २५ ॥ और हे राजन्! इस एकादशी का व्रत करने से पीतांबर को धारण किये सुन्दर स्वरूप चक्र को हाथ में लिये मन के समान वेगवाले विष्णु के दूत ॥ २६ ॥ अन्त समय में

78

उस व्रत करनेवाले मनुष्य को विष्णुलोक को ले जाते हैं इस प्रकार इस एकादशी का निर्जल व्रत करना चाहिये ॥ २७ ॥ फिर जलधेनु का दान करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है यह सुनकर हे जनमेजय ! पाण्डव इस व्रत को करने लगे थे ॥ २८ ॥ उसदिन से भीमसेन ने भी इस सुन्दर निर्जला एकादशी का व्रत किया

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन सोपोष्योदक वर्जिता ॥ २८ ॥ जलधेनुं ततो दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते इति श्रुत्वा तदा चक्रुः पाण्डवा जनमेजय ॥ २८ ॥ ततः प्रभृति भीमेन कृतेयं निर्जला शुभा ॥ पाण्डव द्वादशी नाम्ना लोके ख्याता बभूवह ॥ २९ ॥ भीमसेनो व्रतं चक्रे निर्जलं वसुधाधिप ॥ अत्यन्तक्षुत्तृषाऽविष्टः कथमप्यामय द्वयम् ॥ ३० ॥ यामयोस्तृतियेऽशक्तो गंगा-यामपतच्चिरम् ॥ तत्र स्नात्वा यथेच्छं स किञ्चिच्छ्रमतु लब्धवान् ॥ ३१ ॥ निशा कथंचिद-

और वह इस संसार में पाण्डव द्वादशी के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥२९॥ और हे राजा ! भीमसेन ने निर्जल व्रत किया और अत्यन्त भूख प्यास के मारे ज्यों त्यों करके दो पहर तो बिताये ॥३०॥ तीसरे पहर जब तृषा के मारे नहीं रहा गया तो गंगाजी में स्नान किया वहाँ जब अच्छी तरह मनमाना स्नान कर चुके तब उसे कुछ चैन

हुआ अर्थात् उसकी तृषा कुछ शान्त हुई ॥ ३१ ॥ और जिस प्रकार व्यासजी ने कहा था उसी प्रकार बड़ी कठिनता से भीमसेन ने रात्रि भी बिताई । इसलिये अपराह्नकाल में भीमसेन से व्यासजी ने कहा कि दूसरी बार भी अवश्य स्नान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! वैसे ही तुम भी सब पाप को नष्ट करने के लिये

कामदेवं व्यासोक्तमाचरत् ॥ अतोऽपराह्ने स्नातव्यं द्वितीयं भीमसूचकम् ॥ ३२ ॥ तथा
त्वमपि भूपाल सोपवासार्चनं हरेः ॥ कुरु त्वं च प्रयत्नेन सर्वपाप प्रशान्तये ॥ ३३ ॥
करिष्याम्यद्य देवेश जलवर्ज्य मुपोषणम् ॥ भोक्ष्ये परेऽह्नि देवेश ह्यन्नं च तव वासरात् ॥३४॥
इत्युच्चार्य ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् ॥ सर्वपाप विनाशाय श्रद्धा दम समन्वितः ॥ ३५ ॥
मेरु मन्दरमानं तु स्त्रियोऽथपुरुषस्य यत् ॥ पापं तद्भस्मतां याति एकादश्याः प्रभावतः ॥३६॥

बड़ी उपाय से इस एकादशी का निर्जलाव्रत और भगवान की पूजा करो ॥३३॥ हे देवता देवताओं के स्वामी ! आज मैं एकादशीका निर्जल व्रत करूँगा और हे नाथ द्वादशीके दिनमें ही पारण अर्थात् भोजन करूँगा ॥३४॥ इसके बाद उसने मंत्र को कहकर और जितेन्द्रिय होकर सब पापों को नाश करने के लिए श्रद्धा से व्रत किया

79

॥ ३५ ॥ स्त्रीका किया अथवा पुरुष का किया पर्वत के बराबर भी पाप क्यों न हो एकादशी के प्रभाव से वह सब भस्म हो जाता है ॥ ३६ ॥ और हे राजन् ! जो उसी दिन जलधेनु का दान न कर सके तो उसे घट के ऊपर वस्त्र उढ़ाकर सुवर्ण के सहित घट का दान करे ॥ ३७ ॥ जो इस एकादशी का जल का नियम

न शक्नोति च यो दातुं जलधेनुं नराधिप ॥ सकाञ्चनो घटस्तेन देयो वस्त्रेण संवृतः ॥३७॥ तोयस्य नियमं योऽस्यां कुरुते वै सपुण्यभाक् ॥ स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः ॥ ३८ ॥ पलकोटि सुवर्णस्य यामे यामेऽश्नुते फलम् ॥ तत्सर्वं चाक्षयं प्रोक्तमेतत्कृष्णस्य भाषितम् ॥ ३९ ॥ किंवा परेण धर्मेण निर्जलैकादशी नृप ॥ उपोष्य च नरो भक्त्या वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ ४० ॥ सुवर्णमन्नं वासांसि यदस्यां संप्रदीयते ॥ तदस्य च कुरुश्रेष्ठ सर्व

करता है वही पुण्य का भागी है और जो मनुष्य इस एकादशी के दिन प्रहर प्रहर में स्नान दान जप और होम करता है ॥ ३८ ॥ उसको प्रहर प्रहर में करोड़ पल सुवर्ण दान का फल मिलता है और वह सब अक्षय होता है यह श्रीकृष्णजी ने स्वयं कहा है ॥३९॥ हे राजन् ! जिस मनुष्य ने निर्जला एकादशी का व्रत किया

तो उसे और धर्म करने का क्या काम है क्योंकि इसीके व्रत से मनुष्य को विष्णुलोक का निवास मिलता है ॥ ४० ॥ और एकादशी के दिन जो सुवर्ण अन्न वस्त्र दान किया जाता है कुरुश्रेष्ठ ! वह सब देनेवाले का अक्षय होता है ॥ ४१ ॥ और जो कोई एकादशी के दिन अन्न खाता है वह पाप ही खाता है इस लोक में

मप्यक्षयं भवेत् ॥ ४१ ॥ एकादशीदिने योऽन्नं भुंक्ते पापं भुनक्ति सः ॥ इह लोके स चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ॥ ४२ ॥ ये प्रदास्यन्ति दानानि द्वादशीं समुपोष्य च ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्स्यन्ति परमं पदम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेष्टा सदाऽनृती ॥ मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्निर्जला यैरुपोषिता ॥ ४४ ॥ विशेषं शृणु राजेन्द्र निर्जलैकादशी दिने ॥ यत्कर्तव्यं नरैः स्त्रीभिः श्रद्धा दम समन्वितैः ॥४५॥ जलशायी तु संपूज्यो

चाण्डाल होकर मरने पर परलोक में उसको नरक भोगना पड़ता है ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य ज्येष्ठशुक्ला द्वादशी युक्त एकादशी का व्रत समाप्त करके अन्न वस्त्रादि दान देवेंगे वे मोक्ष को पावेंगे ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण को मारनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुसे द्रोह करनेवाला, और सदा असत्य बोलनेवाला ये सब भी निर्जला का

व्रत करके सब पापों से छूट जाते हैं ॥ ४४ ॥ और हे राजन् ! इसमें एक विशेष बात सुनो कि निर्जला एकादशी के दिन श्रद्धा से और इन्द्रियों को रोककर स्त्री पुरुषों को इसका व्रत करना चाहिये ॥ ४५ ॥ वह यह है कि जलशायी भगवान् का पूजन करे और जलशायी धेनुका तथा प्रत्यक्ष गौका दान करे अथवा

देया धेनुश्च तन्मयी ॥ प्रत्यक्षा वा नृपश्रेष्ठ घृतधेनुरथापिवा ॥ ४६ ॥ दक्षिणाभिश्च श्रेष्ठाभिर्मिष्टान्नैश्च पृथग्विधः ॥ तोषणीयाः प्रयत्नेन द्विजा धर्मभृतांवर ॥ ४७ ॥ तुष्टो भवति वै क्षिप्रं तैस्तुष्टैर्मोक्षदा हरिः ॥ आत्मद्रोहः कृतस्तैस्तु यैर्नैषा समुपोषिता ॥ ४८ ॥ पापात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते नात्र संशयः ॥ कुलानां च शतं साग्रमनाचाररतं सदा ॥४६॥

हे नृपश्रेष्ठ ! घृत धेनुका दान करै ॥ ४६ ॥ और उसके साथ हे धर्मश्रेष्ठ ! दक्षिणा के सहित अनेक प्रकार के सुन्दर सुन्दर पक्वानों से प्रयत्न पूर्वक ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करै ॥ ४७ ॥ हे धर्मश्रेष्ठ ! उनके सन्तुष्ट करने से मोक्ष को देनेवाले भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं । जिन्होंने इस एकादशी का व्रत नहीं किया उन्होंने अपनी आत्मा से विरोध किया ॥ ४८ ॥ और वे पापी, दुराचारी, दुष्ट हैं इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । जिसने

इस एकादशी का व्रत किया उसने दुराचारी, पापी होकर भी अपने एक सौ पुरुषों को आगे के और एकसौ पुरुष पीछेके ॥ ४९ ॥ अपने सहित भगवान् के भवन में पहुंचा दिया । और जिन्होंने शान्त और दान में परायण होकर भगवान् का पूजन किया ॥ ५० ॥ और इस एकादशी का व्रत करके रात्रिको जागरण किया वह

आत्मना सह तैर्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम् ॥ शान्तैर्दानपरैश्चैव अर्चद्भिश्च तथा हरिम् ॥५०॥ कुर्वद्भिर्जागरं रात्रौ यैरेषा समुपोषिता ॥ अन्नं पानं तथा गावो वस्त्रं शय्यासनं शुभम् ॥ ५१ ॥ कामण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जला दिने ॥ उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूत द्विजोत्तमे ॥ ५२ ॥ स सौवर्णेन यानेन स्वर्गलोकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्तयेत ॥ ५३ ॥ उभौ तौ स्वर्गतौ स्यातां नात्र कार्या विचारणा ।

भी अपनी आगे पीछे की सौ पीढ़ी को स्वर्ग में भेज दिया । अन्न, जल, गौ, वस्त्र, शय्या, औरसुन्दर आसन ॥ ५१ ॥ कमण्डलु, छाता इन सबको निर्जला एकादशी के दिन दान करना चाहिये और जो सुपात्र ब्राह्मण को उपानह देता है ॥ ५२ ॥ वह सोने के विमान में बैठकर स्वर्ग को जाता है इसमें संशय नहीं है । जो मनुष्य

81

इस कथा को भक्ति से पढ़ते और सुनाते हैं ॥ ५३ ॥ वे दोनों स्वर्ग को जाते हैं इसमें विचार करने की आव-
श्यकता नहीं है । जो फल सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान और श्राद्ध करने से मिलता है वही फल
एकादशी की कथा सुनने से मिलता है ॥ ५४ ॥ इति ज्येष्ठशुक्ल निर्जलैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

यत्फलं सन्निहत्यायां राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्य स्तदस्याः श्रवणादपि
॥५४॥ इति श्रीमहाभारते पाझयोक्तं ज्येष्ठशुक्लानिर्जलैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथाषाढ कृष्णैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ज्येष्ठशुक्ले निर्जलाया माहात्म्यं
वै श्रुतं मया ॥ आषाढ़ कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे
मधुसूदन ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ व्रतानामुत्तमं राजन् कथयामि तवाग्रतः ॥ २ ॥ सर्वपाप-

अथ आषाढ़ कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर ने कहा ॥ मैंने ज्येष्ठशुक्ला निर्जला एकादशी का माहात्म्य
सुना । अब आषाढ़ कृष्णपक्ष की एकादशी का क्या नाम है ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! वह आप कृपा करके मुझ
को सुनाइये ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजन् ! व्रतों में से उत्तम व्रत मैं तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥ आषाढ़ कृष्ण

पक्ष की एकादशी सब पापों को नाश करनेवाली और सुख भोग तथा परमपद (मोक्ष) को देनेवाली है। आषाढ़ कृष्णपक्ष में योगिनी नाम की ॥ ३ ॥ जो एकादशी है सो हे राजन् ! बड़े बड़े पातकों को नाश करने वाली है और संसार-रूपी सागर में डूबते हुए मनुष्यों को सनातन से नौका के समान तारनेवाली है ॥ ४ ॥

क्षयकरं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ॥ आषाढस्यासिते पक्षे योगिनीनाम नामतः ॥ ३ ॥ एका-
दशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥ संसारार्णव मग्नानां पोतरूपा सनातनी ॥ ४ ॥ जग-
त्त्रये सारभूता योगिनीति नराधिप ॥ कथयामि कथां तस्याः पौराणीं पापहारिणीम् ॥५॥
अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः ॥ तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः ॥६॥
तस्य पत्नी सुरूपासीद्विशालाक्षीति नामतः ॥ स तस्याः स्नेह संयुक्तः कामपाश वशंगतः

हे राजन् ! वह योगिनी एकादशी तीनों लोक में सारभूत अर्थात् मुख्य है अब पापों को भस्म करनेवाली पुराणों में कही उसकी कथा कहता हूँ ॥ ५ ॥ अलकापुरी का स्वामी कुबेर शिवजी का भक्त था ॥ उसके बगीचे का माली हेममाली नाम का एक यक्ष था ॥ ६ ॥ उसकी महासुन्दरी स्त्री का नाम विशालाक्षी

82

था। वह उसपर अत्यन्त आसक्त हो कामके वश हो गया ॥ ७ ॥ वह शिवजी के पूजन के समय पर नित्य पुष्प लाया करता था, सो वहाँ एक दिन अपनी स्त्री का मुख देखकर उस पर मोहित हो गया ॥ ८ ॥ और मानसरोवर से फूल लाकर अपने घर में बैठ रहा और स्त्री के प्रेम में फँसकर वह कुबेर के घर पुष्प लेकर

॥ ७ ॥ शिवपूजन बेलायां नित्यं पुष्पाणि चानयत् ॥ एकस्मिन् दिवसे तस्या मुखं दृष्ट्वा-विमोहितः ॥८ ॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहेस्थितः ॥ पत्नी प्रेम समायुक्तो न कुबेरालयं गतः ॥ ९ ॥ कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् ॥ मध्यान्हसमये राजन् पुष्पाणि प्रसमीक्षत ॥ १० ॥ हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह ॥ यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः ॥११॥ कस्मान्नायाति भो यक्षा हेममाली दुरात्मवान् ॥ निश्चयः क्रियतामस्य

नहीं गया ॥ ९ ॥ हे राजन्! कुबेरजी शिवालय में पूजन कर रहे थे उन्हें फूलों की राह देखते देखते मध्याह्न का समय हो गया ॥१०॥ उधर हेममाली अपनी स्त्री के साथ विहार करने लगा फिर विलंब होने के कारण कुबेर क्रोध करके बोले ॥ हे यक्षो। दुष्ट हेममाली क्यों नहीं आया और बार बार कहा कि उसके न आने के

कारण को निश्चय करो ॥ १२ ॥ यक्षों ने कहा हे महाराज ! वह हेममाली तो अपनी स्त्री पर असक्त हो उसके साथ इच्छापूर्वक रमण कर रहा है । उनका वचन सुनकर कुबेर बहुत ही क्रोधित हुए ॥ १३ ॥ और उस फूल लानेवाले हेममाली को शीघ्र बुलाया और यह भी विलंब हुआ जान कर भय से व्याकुल हो नेत्र

प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १२ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ वनिता कामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप ॥ तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ॥ १३ ॥ आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम् ॥ ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुल लोचनः ॥ १४ ॥ आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः ॥ तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्त लोचनः ॥ १५ ॥ प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताधरः ॥ धनद उवाच ॥ रे पाप दुष्ट दुर्वृत्त कृतवान् देव हेलनम् ॥१६॥ अतो

कातर किये ॥ १४ ॥ आया और कुबेर के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ उसे देखकर कुबेर क्रोधित हुए और क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये ॥ १५ ॥ और क्रोध के मारे उनके ओठ कांपने लगे इस प्रकार विवश हो कुबेर ने उस यक्ष को शाप दिया ॥ कुबेर बोले ॥ हे पापी ! दुष्ट ! दुर्बुद्धि ! तैंने देवता के काय में विलंब

किया ॥ १६ ॥ इसलिये तू कोढ़ी हो जा और अपनी स्त्री से सदा अलग रह और इस स्थान से पतन होकर नीच स्थान में चला जा ॥ १७ ॥ जब कुवेर ने ऐसा शाप दिया तो वह उस स्थान से गिरा और शरीर में कुष्ठ होने से उस यक्ष को भयानक वन में न तो अन्न मिला और न तो जल मिला और न तो सुख हुआ

भवश्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सदा ॥ अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छस्थानमथाधमम्॥१७॥ इत्युक्ते वचने तेन तस्मात् स्थानात् पपात सः ॥ महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठ पीड़ित विग्रहः॥१८॥ न वै तोयं न भक्ष्यं च वने रौद्रे लभत्यसौ ॥ न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि ॥ १६ ॥ छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः ॥ शिव पूजा प्रभावेण स्मृतिस्तस्य न गच्छति ॥ २० ॥ पातके नाभिभूतोऽपि कर्म पूर्वमनुस्मरन् ॥ भ्रममाणस्ततो गच्छद्धि-

और न तो रात्रि में उसे नीद आई ॥ १६ ॥ छाया में जाने से उस यक्ष की शरीर में पीड़ा और घाम में जाने से जलन होने लगती थी, परन्तु शिवजी की पूजाके प्रभाव से उसकी स्मरण शक्ति नष्ट नहीं हुई थी ॥२०॥ पाप युक्त होने पर भी अपने पूर्व जन्म के कर्मों को स्मरण करता हुआ वन में घूमता हुआ हिमालय पर्वत

पर गया ॥ २१ ॥ और वहां उसने तपस्वियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय जी के दर्शन किया । हे राजन् ! जिनकी आयु ब्रह्मा के सात दिनकी है ॥ २२ ॥ वह यक्ष मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में गया कि जो ब्रह्मा की सभा के समान था । फिर उस दुराचारी यक्ष ने दूरसे ही मुनि के चरणों को प्रणाम किया ॥ २३ ॥ उन श्रेष्ठ मुनि

मार्द्रिं पर्वतोत्तमम् ॥ २१ ॥ तत्रापश्यन् मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोनिधिम् ॥ यस्यायुर्विद्यते राजन् ब्रह्मणो दिन सप्तकम् ॥ २२ ॥ आश्रमं स गतस्तस्य ऋषेर्ब्रह्मसदः समम् ॥ ववंदे चरणौ तस्य दूरतः पापकर्मकृत् ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कुष्ठिनं तदा ॥ परोपकरणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्मात्कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरो ह्यसि ॥ इत्युक्तः प्रत्युवाचाथ मार्कण्डेयेन धीमता ॥ २५ ॥ हेममाल्युवाच ॥

मार्कण्डेयजी ने उसे कुष्ठी देख परोपकार करने के लिये उसे अपने समीप बुलाकर कहा ॥ २४ ॥ मार्कण्डेय पूछने लगे ॥ कि तुझको यह कुष्ठ रोग किस कारण से हो गया और तू ऐसा निन्दित क्यों हो रहा है परम बुद्धिमान मार्कण्डेयजी के इस प्रकार पूछने पर वह यक्ष कहने लगा ॥ २५ ॥ कि मैं यक्षों के राजा कुबेर का

84

सेवक हूँ और हेममाली मेरा नाम है ! हे मुनीश्वर मैं मानसरोवर से पुष्पों को नित्य ताड़ लाकर ॥ २६ ॥ कुवेरजी को शिवपूजन के समय दिया करता था परन्तु एक दिन मुझ को विलंब होगया ॥ २७ ॥ प्रभो ! एक दिन मेरे चित्त में कामदेव ने सताया जब मैं व्याकुल हुआ तो अपनी स्त्री के सुख में आसक्त हो गया

यक्षराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः ॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ॥ २६ ॥ शिवपूजन वेलायां कुवेराय समर्पये ॥ एकस्मिन् दिवसे काले लोपश्च विहितो मया ॥२७॥ पत्नी सौख्यप्रसक्तेन कामव्याकुल चेतसा ॥ ततः क्रुद्धेन शप्तोऽहं राजराजेन वै मुने ॥२८॥ कुष्ठाभिभूतः संजातो वियुक्तः कान्तया सह ॥ अधुना तव सान्निध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभकर्मणा ॥२९॥ सतां स्वभावतश्चित्तं परोपकरणक्षमम् ॥ इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ शाधि मां च कृतैनसम्

हे मुनिराज ! इसी पर कुवेर ने क्रोध करके मुझे शाप दे दिया ॥ २८ ॥ उसी कारण मैं कुष्ठी होगया और स्त्री से भी मेरा वियोग होगया, अब अपने किसी शुभ कर्म के प्रभाव से आपके पासतक आन पहुँचा हूँ ॥२९॥ सज्जनों के हृदय स्वभाव से ही परोपकारी होते हैं सो हे मुनिराज ! यह समझ कर इस पापी को शिक्षा

दीजिये ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले ॥ कि तूने यहां सत्य सत्य सब कहा है असत्य नहीं बोला है इसलिये मैं तुझको कल्याण करनेवाले व्रत को कहता हूँ ॥ ३१ ॥ तू आषाढ़ कृष्णपक्ष की योगिनी एकादशी का व्रत कर । इस व्रत के पुण्य से तेरा पाप नष्ट हो जायगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ मुनिका यह बचन सुन

॥ ३० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ त्वया सत्यमिह प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः ॥ अतो व्रतोपदेशं ते करिष्यामि शुभप्रदम् ॥ ३१ ॥ आषाढे कृष्णपक्षे त्वं योगिनी व्रतमाचर ॥ अस्य व्रतस्य पुण्येन कुष्ठात्त्वं मुच्यसे ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा दण्डवत् पतितो भुवि ॥ उत्थापितश्च मुनिना बभूवातीव हर्षितः ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयोपदेशेन कृतं तेन व्रतोत्तमम् ॥ तद्व्रतस्य प्रभावेण देवरूपो बभूव सः ॥ ३४ ॥ संयोगं कान्तया लेभे बुभुजे

उस यक्ष ने पृथिवी में गिरकर उनको दण्डवत् किया और जब मुनिने उठाया तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेय जी के उपदेश से उस यक्ष ने उस उत्तम व्रत को किया और उस व्रत के प्रभाव से वह देव रूप होगया ॥ ३४ ॥ उसका स्त्री से संयोग होगया और वह उत्तम सुख भोगने लगा । हे राजन् ! इस योगिनी

एकादशी का व्रत इस भांति उत्तम कहा है ॥ ३५ ॥ अट्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन देने से जो फल मिलता है वही फल इस योगिनी एकादशी के व्रत से मनुष्य को मिलता है ॥ ३६ ॥ यह बड़े बड़े पापों को नाश करनेवाली और बड़े पुण्य फल को देनेवाली है । इसकी कथा पढ़ने सुनने से मनुष्य को हजार गौदान

सौख्यमुत्तमम् ॥ ईदृग्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनी व्रतम् ॥ ३५ ॥ अष्टाशीति सहस्राणि द्विजान् भोजयते तु यः ॥ तत्फलं समवाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥ ३६ ॥ महापाप प्रशमनी महापुण्य फलप्रदा ॥ पठनाच्छ्रवणादस्यागो सहस्रफलं लभेत् ॥ ३७ ॥ इति श्री ब्रह्म वैवर्तपुराणे आषाढकृष्ण योगिन्यैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

आषाढ शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आषाढस्य सिते पक्षे किंनामैकादशीभवेत् कथयस्व प्रसादेन विष्णोराराधनायमे ॥ आषाढ शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी पितः ॥

करने का फल मिलता है ॥ ३७ ॥ इति श्री आषाढ कृ० योगिन्यैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ आषाढ शुक्लैकादशी व्रत कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे कृष्णभगवान ! आषाढ शुक्ल पक्षकी एका-

दशी का नाम है और उसमें किस देवता का पूजन होता है और उसके व्रत को करने की क्या विधि है सो सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजन्! इस एकादशी के महात्म्य को ब्रह्माजी ने महापुरुष नारदजी के लिये कहा था सो इस आश्चर्य करनेवाली कथा को तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥ नारदजी ने पूछा।

कादशी भवेत् ॥ को देवः कोविधिस्तस्या एतदाख्याहि केशव ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥
कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम् ॥ कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥२॥
नारद उवाच ॥ वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ साधुपृष्टं कलिप्रिय ॥ नातः परतरं लोके पवित्रं
हरिवासरात् ॥४॥ एकादश्या व्रतं पुण्यं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ न कृतं यैर्नरैर्लोके ते नरा-
निरयैषिणः ॥ ५ ॥ पद्मा नामेति विख्याता शुचौह्येकादशी सिता ॥ हृषीकेशप्रीतये तु

हे पिता! प्रसन्न होकर कहिये कि भगवान् के आराधना के लिये आषाढ़ शुक्ल में जो एकादशी होती है उसका क्या नाम है ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले। हे मुनिश्रेष्ठ! तुम विष्णु के भक्त हो अर्थात् परम वैष्णव हो हे कलि
१५ प्रिय! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी संसार में इस एकादशी से बढ़कर कोई पवित्र नहीं है ॥ ४ ॥ इस एका-

दशी का व्रत पवित्र और पापों को नाश करनेवाला और सब प्रकार के मनोरथ को सिद्ध करनेवाला है इस संसार में जिन्होंने इस व्रत को नहीं किया वे मनुष्य नरकगामी हैं ॥ ५ ॥ आषाढ़ शुक्ला एकादशी का नाम पद्मा है। भगवान की प्रसन्नता के लिये इसका उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ६ ॥ मैं अब एक पुराण की सुन्दर

कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ६ ॥ कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ यस्याः श्रवण-मात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ ७ ॥ मान्धाता नाम राजर्षिर्विवस्वद्वंशसम्भवः॥ बभूव चक्र-वर्ती स सत्यसंधः प्रतापवान् ॥८॥ धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयोव्याधयस्तथा ॥ ६ ॥ निरान्तकाः प्रजास्तस्यधनधान्य समन्विताः ॥

कथा तुमसे कहता हूँ कि जिसको सुनने से महापाप नाश हो जाता है ॥ ७ ॥ सूर्यवंश में मान्धाता नाम का एक राजर्षि था, वह चक्रवर्ती, और सत्य प्रतिज्ञावाला और बड़ा प्रतापी था॥८॥ वह अपनी प्रजा को अपने पुत्रों के समान धर्म से पालन करता था। उसके राज्य में अकाल आधि और व्याधि ये कुछ नहीं होते थे ॥६॥ उसकी प्रजा निष्कण्टक धन धान्य से पूर्ण थी और उस राजा के खजाने में अन्याय से उपार्जित धन नहीं आता

था ॥१०॥ उसको इस प्रकार राज्य करते २ बहुत से वर्ष बीत गये ॥ फिर कभी पाप कर्म के फल से॥११॥ उसके राज्य में तीन वर्ष तक जल नहीं बरसा और उसकी प्रजा दुर्भिक्ष से पीड़ित हो दुखित हो बड़ी डामाडोल हो गई ॥ १२ ॥ और उसके देश में अन्न न होने के कारण मनुष्य ऐसे पीड़ित हो गये यज्ञादि कर्म सभी लुप्त

नान्यायोपार्जितं द्रव्यं कोशे तस्य महीपतेः ॥ १० ॥ तस्यैवं कुर्वतो राज्यं बहु वर्षगणोगतः कदाचिदथ संप्राप्ते विपाके पापकर्मणः ॥११॥ वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकाः ॥ तेनो-द्विग्नाः प्रजास्तस्य बभूवुः क्षुधयाऽर्दिताः ॥१२॥ स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययन वर्जिता ॥ बभूवुर्विषयास्तस्य सस्याभावेन पीडिताः ॥ १३ ॥ अथ प्रजाः समागत्य राजानमिदमब्रु-वन् ॥ श्रूयतां वचनं राजन् प्रजानां हितकारकम् ॥१४॥ आपो नारा इति प्रोक्ताः पुराणेषु

प्राय होगये ॥ १२ ॥ फिर प्रजागण सब इकट्ठे होकर राजा के पास आये और उनसे यह कहा कि महाराज ! हम लोगों के हित की वचन सुनिये ॥ १४ ॥ पण्डितों ने पुराणों में जल को नरा कहता है वही जल भग-वान् के रहने का स्थान है इसलिये भगवान् को नारायण कहते हैं ॥१५॥ मेघरूपी सनातन विष्णु सर्वव्यापी

87

ए. मा. ८६

हैं और वे ही मेघरूप से वृष्टि करते हैं वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा होती है ॥१६॥ तो हे महाराज ! उसी अन्न के अभाव से आपकी प्रजा का नाश हो रहा है हे राजन् ! वह बात करो कि जिससे देश में कुशलक्षेम हो जावे ॥ ७ ॥ राजा ने कहा ॥ हे प्रजाओ ! तुम सब सत्य कहते हो इसमें कोई बात मिथ्या

मनीषिभिः ॥ अयनं ता भगवतस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१५॥ पर्जन्यरूपी भगवान् विष्णुः सर्वगतः सदा ॥ स एव कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ १६ ॥ तदभावेन नृपते क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः ॥ तथा कुरु नृपश्रेष्ठ योगक्षेमो यथा भवेत् ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ सत्यमुक्तं भवद्भिश्च न मिथ्याऽभिहितं वच ॥ अन्नं ब्रह्ममयं प्रोक्तमन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥ अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते ॥ इत्येवं श्रूयते लोके पुराणे बहुविस्तरे ॥ १९ ॥

नहीं है । क्योंकि अन्न को ब्रह्ममय कहा है और अन्न में ही सब कुछ स्थित है ॥ १८ ॥ अन्न से ही जीव होते हैं और अन्न ही जगत् का आधार है यही सुनते आये हैं और यही पुराणों में भी विस्तार से लिखा है॥१९॥ राजा के अपराध से प्रजा को पीड़ा होती है मैं बुद्धि से विचारता हूँ तो मुझे अपना दोष नहीं दिखाता

भा. टी. ८६

है ॥ २० ॥ तो भी मैं राजा के हित के लिये प्रयत्न करूँगा ऐसी बुद्धि करके बहुत सी सेना साथ लेकर ॥ २१ ॥ और एक विधाता को प्रणाम कर एक सघन वन में गया और तपस्या रूपी संपत्ति से समृद्ध मुख्य २ मुनियों के आश्रम में घूमने लगा ॥ २२ ॥ तो राजा ने वहाँ ब्रह्मा के पुत्र अंगिराऋषि को देखा कि

नृपाणामपचारेण प्रजानां पीडनं भवेत् ॥ नाहं पश्याम्यात्मकृतं दोषं बुध्या विचारयन् ॥ २० ॥ तथापि प्रयतिष्यामि प्रजानां हितकाम्यया ॥ इति कृत्वा मतिं राजाऽपरिमेय बलान्वितः ॥ २१ ॥ नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं बनम् ॥ चचार मुनिमुख्या- नामाश्रमास्तपसैधितान् ॥ २२ ॥ ददर्शाथब्रह्मसुतमृषिमंगिरसं नृपः ॥ तेजसा द्योतित दिशम् द्वितीयमिव पद्मजम् ॥ २३ ॥ तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा अवतीर्य च वाहनात् ॥

जिनके तेज से दिशायें प्रकाशित हो रही हैं और वे दूसरे ब्रह्मा के समान बैठे हैं ॥ २३ ॥ उनको देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने रथ से उतर कर उस जितेन्द्री राजाने हाथ जोड़कर उनके चरणों में प्रणाम किया ॥ २४ ॥ मुनिने स्वस्तिवाचन पूर्वक राजा को आशीर्वाद दिया और राजा के राज्य

88

की और सेना आदि सात अंगों की कुशल पूछी ॥ २५ ॥ राजाने अपनी कुशल कहकर मुनि से कुशल पूछी फिर मुनि ने राजा से आने का कारण पूछा तब राजा ने श्रेष्ठ मुनि से अपने आनेका कारण कहा ॥ २६ ॥ राजा बोला ॥ हे भगवन् ! धर्मयुक्त पृथिवी का पालन करने पर भी हमारे राज्य में अतर्पण होगया

नमश्चक्रेऽस्य चरणौ कृताञ्जलिपुटो वशी ॥ २४ ॥ मुनिस्तमभिनन्द्याथ स्वस्तिवाचन पूर्वकम् ॥ पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वङ्गेषु भूपतेः ॥ २५ ॥ निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छानामयं नृपः ॥ ततश्च मुनिना राजा पृष्टागमन कारणः ॥ अब्रवीन्मुनिशार्दूलं स्वस्यागमन कारणम् ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्धर्मविधिना मम पालयतोमहीम् ॥ अनावृष्टिः सम्प्रवृत्ता नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २७ ॥ संशयच्छे-

है दुर्भिक्ष के कारण हमारी प्रजा अत्यन्त पीड़ित है इसका कारण नहीं जाना जाता ॥ २७ ॥ मैं इस सन्देह को दूर करने के लिये इस वन में आपके पास आया हूँ हमारे कल्याण के लिये कोई उपाय बताइये और प्रजा को सुखी करिये ॥ २८ ॥ ऋषि ने कहा हे राजन् ! यह सतयुग सब युगों में श्रेष्ठ है इसमें वेद मुख्यमार्ग है

धर्म चारो चरण से खड़ा है ॥ २९ ॥ और इस युग में ब्राह्मणों को छोड़ दूसरे लोग तपस्या करनेवाले नहीं हैं ॥ परन्तु तुम्हारे राज्य में एक शूद्र तपस्या कर रहा है ॥ ३० ॥ उसके अयोग्य कर्म से मेघ जल नहीं वरसता है उस तपस्वी शूद्रको मारने का प्रयत्न करो जिससे वह दोष मिटजावे ॥ ३१ ॥ राजाने कहा ॥ कि मैं

दनार्थेऽत्र ह्यागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ योगक्षेम विधानेन प्रजानां निर्वृतिं कुरु ॥ २८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एतत्कृतयुगं राजन् युगानामुत्तमं स्मृतम् ॥ अत्र ब्रह्मोत्तरा लोका धर्मश्चात्र चतुष्पदः ॥ २९ ॥ अस्मिन् युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणा नेतरे जनाः ॥ विषये तव राजेन्द्र वृषलो यत्तपस्यति ॥ ३० ॥ अकार्य कारणात्तस्य न वर्षति बलाहकः ॥ कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यति ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ नाहमेनं वधिष्यामि तपस्यन्तमनागसम् ॥ धर्मोपदेशं कथय उपसर्ग विनाशने ॥ ३२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ यद्येवं तर्हि नृपते कुरुष्वैकाद-

उस तपस्या करते हुए निरपराधी शूद्र को नहीं मार सकूंगा इस उपद्रव को दूर करने के लिये कोई धर्म का उपदेश कहिये ॥३२॥ तब ऋषिने कहा कि ॥ यदि ऐसा है तो हे राजन् तुम एकादशी का व्रत करो । आषाढ

82

शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम पद्मा है ॥ ३३ ॥ उसके व्रत के प्रभाव से अवश्य वर्षा होगी यह एकादशी सब सिद्धियों को देनेवाली और सब उपद्रवों को नाश करनेवाली है ॥ ३४ ॥ इसीलिये हे राजन् ! तुम परिवार सहित इस व्रत को करो । राजा मुनिका यह वचन सुनकर अपने घर पर आया ॥ ३५ ॥ और जब

शीव्रतम् ॥ शुचिमासे सिते पक्षे पद्मा नामेति विश्रुता ॥ ३३ ॥ तस्या व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम् ॥ सर्वसिद्धिप्रदा ह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी ॥ ३४ ॥ अस्या व्रतं कुरु नृपः सप्रजः सपरिच्छदः ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा राजा स्वगृहमागतः ॥ ३५ ॥ एवं कृते व्रते राजन् प्रववर्ष बलाहकः ॥ जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्य शालिनी ॥ ३७ ॥ हृषीकेशप्रसादेन जनाः सौख्यं प्रपेदिरे ॥ एतस्मात्कारणादेव कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ भुक्ति

आषाढ़ महीना आया तो संपूर्ण प्रजाओं के सहित राजाने इस पद्मा एकादशी का व्रत किया ॥३६॥ हे युधिष्ठिर ! राजा मान्धाता को इस प्रकार व्रत करने से अच्छी वर्षा मेघों ने किया पृथिवी जल से भरगई और पृथ्वी अन्न से परिपूर्ण होगई ॥ ३७ ॥ और विष्णु भगवान के प्रसाद से मनुष्य सब सुखी होगये इसलिये

आषाढ़ शुक्ल एकादशी का उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ३८ ॥ यह व्रत लोगों को भोग और सुख का देने-वाला है। और इस एकादशी की कथा पढ़ने और सुनने से मनुष्य अनेक प्रकार के दुःख और पापों से छूट जाता है ॥ ३९ ॥ इति श्री ब्रह्माण्ड पुराणे आषाढ़ शुक्लैकादशी महात्म्यं संपूर्णम् ॥

मुक्ति प्रदं चैव लोकानां सुखदायकम् ॥ पठनाच्छ्रवणादस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ इति श्रीब्रह्माण्ड पुराणे आषाढ शुक्लपक्षैकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ॥ इयमेकादशी राजञ्छयनीत्यभिधीयते ॥ विष्णोः प्रसाद सिध्यर्थ-मस्यां च शयनव्रतम् ॥ १ ॥ कर्तव्यं राजशार्दूल जनैर्मोक्षेच्छुभिः सदा ॥ चातुर्मास्य व्रतारंभोऽप्यस्यमेव विधीयते ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं कृष्ण प्रकर्तव्यं श्रीविष्णोः

90

इसी आषाढ़ शुक्ल पक्ष एकादशी को विष्णु शयनी कहते हैं। इसमें विष्णु शयन व्रत और चातुर्मास्य व्रत की विधि भविष्य पुराण में कही है ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजन्! इसी एकादशी को देवशयनी कहते हैं विष्णु को प्रसन्न होने के लिये इसमें शयन व्रत करने को कहा है ॥१॥ हे नृपश्रेष्ठ! मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्यों

को यह व्रत सदा करना चाहिए और इसी एकादशी से चातुर्मास व्रत का आरंभ होता है ॥ २ ॥ युधिष्ठिरने कहा ॥ हे कृष्णजी ! विष्णु शयन का व्रत कैसे करना चाहिये सो हे प्रभु ! उस चातुर्मास के व्रतों को कहिये ॥३॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे युधिष्ठिर ! सुनो मैं गोविन्द के शयन का व्रत कहूंगा और चातुर्मास्य में जो व्रत कहे हैं

शयन व्रतम् ॥ तद्ब्रूहि कृपया देव चातुर्मास्य व्रतानि च ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुपार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्द शयन व्रतम् ॥ चातुर्मास्ये च यान्युक्तान्यासंस्तानि व्रतानि च ॥ ४ ॥ कर्कराशि गते सूर्ये शुचौ शुक्ले तु पक्षके ॥ एकादश्यां जगन्नाथं स्वापयेन्मधु-सूदनम् ॥ ५ ॥ तुलाराशिस्थिते तस्मिन् पुनरुत्थापयेद्धरिम् ॥ आषाढस्य सिते पक्षे एका-दश्यामुपोषितः ॥ ६ ॥ चातुर्मास्य व्रतानां तु कुर्वीत नियमंतु तत् ॥ स्नापयेत प्रतिमां

उनको भी कहूंगा ॥४॥ आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन जब कर्क राशि के सूर्य हों उस दिन जगन्नाथ भगवान् को शयन करावे ॥ ५ ॥ और जब तुलाराशि के सूर्य होवें तब भगवान् को जाग्रत कर। आषाढ़शुक्ल एका-दशी के दिन उपवास युक्त रहकर ॥ ६ ॥ नियमपूर्वक चातुर्मास का व्रत आरंभ करे। और शंखचक्र गदा को

धारण किये भगवान् की मूर्ति को स्नान करावे ॥ ७ ॥ फिर हे युधिष्ठिर ! पीतांबर धारण कराके सुन्दर सौम्यमूर्ति भगवान को सफेद वस्त्रों की शय्या पर तकिया से युक्त शय्या पर सफेद वस्त्र बिछाकर भगवान को सुलावे ॥८॥ और पहिले इतिहास पुराण को जाननेवाला वेदपाठी ब्राह्मण, भगवान् को दही, दूध, घी, सहद

विष्णोः शंखचक्रगदाधराम् ॥ ७ ॥ पीताम्बर धरां सौम्यां पर्यङ्के वै सितेशुभे ॥ सितवस्त्र समाच्छन्ने सोपाधाने युधिष्ठिर ॥ ८ ॥ इतिहास पुराणज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्र सिताजलैः ॥६॥ समालेप्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भूरिशः ॥ पूजयेत्कुसुमैः शस्तैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥ १० ॥ सुप्ते त्वयिजगन्नाथे जगत्सुप्तं चराचरम् ॥ विबुद्धेत्वाथ बुद्धयेते जगत्सर्वं चराचरम् ॥ ११ ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा युधिष्ठिर ॥ प्रभाषे·

और शर्करा का एक में मिलाकर पंचामृत और जल से स्नान करावे ॥ ९ ॥ सुन्दर चन्दन का लेप करे हे पाण्डव ! बहुत से धूप दीप तथा उत्तम २ पुष्पों की माला से उनका पूजन करै और इस मन्त्र को पढ़ै॥१०॥ हे जगन्नाथजी ! तुह्मारे शयन करने पर चराचर सब जगत् सोता है और तुम्हारे जागने पर सब जगत जागता

है ॥११॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार विष्णु की उस प्रतिमा का पूजन करके मनुष्य हाथ जोड़ भगवान के आगे प्रार्थना कर कहे कि ॥ १२ ॥ वर्षा के चार महीने अर्थात् विष्णु प्रबोधिनी एकादशी तक मैं इन शुद्ध नियमों का पालन करूँगा, हे स्वामी ! तुम उन नियमों को निर्विघ्न पूर्ण करो ॥ १३ ॥ ऐसे विनीत और शुद्ध हृदय

ताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटो नरः ॥ १२ ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि॥ ग्रहीष्ये नियमान् शुद्धान् निर्विघ्नान् कुरु मे प्रभो ॥१३॥ इति संप्रार्थ्य देवेशं प्रह्वः संशुद्ध मानसः॥ स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं च धृतव्रतः ॥ १४ ॥ गृह्णीयान्नियमानेतान् दन्तधावन पूर्वकम् ॥ व्रतप्रारंभ कालास्तु प्रोक्ताः पञ्चैव विष्णुना ॥ १५ ॥ एकादशी द्वादशी च पूर्णिमा च तथाष्टमी ॥ कर्कटाख्या च संक्रान्तिस्तेषु कुर्याद्यथाविधिः ॥ १६ ॥ चतुर्धागृह्य

से विष्णु भगवान् की प्रार्थना कर स्त्री हो चाहे पुरुष व्रत करनेवाला मेरा भक्त धर्म के लिये ॥ १४ ॥ दतवन आदि कर्मों को कर नियमों को ग्रहण करे। विष्णु ने व्रत आरंभ करने के पाँच ही काल कहे हैं ॥ १५ ॥ एकादशी द्वादशी पूर्णिमा अष्टमी और कर्ककी संक्रान्ति इनमें विधिपूर्वक ॥ १६॥ मनुष्य चार प्रकार से ग्रहण

करके चातुर्मास्य व्रत का आरंभ करे और कार्तिक शुक्ल द्वादशी को चातुर्मास्य व्रत को समाप्त करे ॥ १७ ॥ इस चातुर्मास्य व्रत के आरम्भ और समाप्ति में गुरु शुक्र का बाल्य वृद्धत्व और इनके अस्त होने आदि का निषेध नहीं है। मनुष्य चातुर्मास्य व्रत करने में पहिले अखंड तिथिका विचार करे अर्थात् व्रतारंभ काल में

चैचीर्णं चातुर्मास्य व्रतं नरः ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥१७॥ न शैशवं न मौढ्यं च शुक्र गुर्वोर्न वा तिथेः ॥ खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्य विधौ नरः ॥ १८ ॥ अशुचिर्वाशुचिर्वापि यदि स्त्री यदिवा पुमान् ॥ व्रतमेकं नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १९ ॥ प्रतिवर्षं तु यः कुर्याद्व्रतं वै संस्मरन् हरिम् ॥ देहान्तेति प्रदीप्तेन विमानेनार्क तेजसा ॥ ॥ २० ॥ मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि कर्तॄणां तु

तिथि की न्यूनता न होवे ॥ १८ ॥ अशुद्ध हो या शुद्ध हो स्त्री हो या पुरुष हो इस एक ही व्रत करने से अनेक पातकों से छूट जाता है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य प्रति वर्ष भगवान का स्मरण कर इस व्रत को आरंभ से समाप्ति पर्यन्त करता है देह मरने पर सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर बैठ कर ॥ २० ॥ विष्णु लोक में जाता है

और महा प्रलय पर्यन्त आनन्द करता है और उन चातुर्मास्य व्रत करने वालों का अलग अलग फल कहूँगा ॥ २१ ॥ देवताओं के मन्दिर में नित्य सफाई करना जल से धोना गोबर से लीपना और रंग से उस स्थान में चित्र खींचना ॥ २२ ॥ इन बातों से हे राजा ! जो कोई आलस्य छोड़ कर चातुर्मास्य व्रत करता है और

पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥ देवतायतने नित्यं मार्जनं जल सेचनम् ॥ प्रलेपनं गोमयेन रंगव-ल्ल्यादिकं तथा ॥ २२ ॥ यः करोति नरश्रेष्ठ चातुर्मास्यमतान्द्रितः ॥ समाप्तौ च यथा शक्त्या कुर्याद्ब्राह्मण भोजनम् ॥ २३ ॥ सप्तजन्मसु विप्रेन्द्र सत्यधर्मपरोभवेत् ॥ दध्नाक्षीरेण चाज्येन क्षौद्रेण सितया तथा ॥ २४ ॥ स्नापयद्विधिनादेवं चातुर्मास्ये जनाधिप ॥ स याति विष्णुसारूप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २५ ॥ नृपो भूमि प्रदद्याद्यो यथा शक्त्या च काञ्चनम्

उसकी समाप्ति के समय यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन कराता है ॥ २३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! वह सात जन्म पर्यन्त सत्य धर्म में तत्पर रहता है । और हे राजन् ! जो दही, दूध, घी, शर्करा, सहद, इन पाँचों पदार्थों से चतुर्मास्य में भगवान को विधि पूर्वक स्नान कराता है वह विष्णु की सरूपता को प्राप्त हो अक्षय सुखको भोगता है ॥ २५ ॥

जो राजा भगवान के लिये यथाशक्ति भूमि और सुवर्ण का दान फल और दक्षिणा सहित ब्राह्मणों को देता है ॥ २६ ॥ वह स्वर्ग में दूसरे इन्द्र के समान होकर स्वर्ग में अक्षय सुख को भोग करता है और उसे विष्णुलोक तक प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥ और व्रत करने वाला जो मनुष्य भगवान के

विप्राय देवमुद्दिश्य सफलं च सदक्षिणम् ॥ २६ ॥ अक्षयाँल्लभते भोगान् स्वर्गे इन्द्र इवापरः
लोकं स समवाप्नोति विष्णोरत्र न संशयः ॥२७॥ देवायहेमपद्मं तु दद्यान्नैवेद्य संयुतम् ॥
गन्धपुष्पाक्षताद्यैर्यो देवब्राह्मणयोरपि ॥ २८ ॥ पूजां यः कुरुते नित्यं चातुर्मास्ये व्रतीनरः ॥
अक्षयं सुखमाप्नोति पुरन्दर पुरं व्रजेत् ॥ २९ ॥ यस्तुवै चतुरोमासानस्तुलस्या हरि-
मर्चयेत् ॥ तुलसी कांचनीं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत ॥ ३० ॥ कांचनेन विमानेन वैष्णवीं

निमित्त सोने का कमल बनाकर नैवेद्य सहित दान करता है और जो देवता तथा ब्राह्मण को गंध पुष्प अक्षत आदि से ॥ २८ ॥ चातुर्मास में पूजन करता है वह अक्षय सुख को भोग कर स्वर्ग लोक में वास करता है ॥ २९ ॥ और चार महीने तक तुलसी दल से भगवान की पूजा करता है और सोने की तुलसी बनवाकर

93

भगवान को समर्पण कर ब्राह्मण को देता है ॥ ३० ॥ वह सोने के विमान में बैठकर विष्णु लोक में वास करता है और जो मनुष्य भगवान को गुग्गुल की धूप देता है और घी का दीपक जलाकर समर्पण करता है ॥ ३१ ॥ और हे युधिष्ठिर ! जो धूप दान और दीप दान किया करता है वह अधिक सुख को भोगनेवाला

लभते गतिम् ॥ देवाय गुग्गुलं यो वै दीपं चार्पयते नरः ॥३१॥ समासौ धूपिकां दद्याद्दीपि-
कां च महामते ॥ सभोगी जायते श्रीमांस्तथाऽसौभाग्यवानपि ॥ ३२ ॥ प्रदक्षिणास्तु यः
कुर्यान्नमस्कारान् विशेषतः ॥ अश्वत्थस्याथवा विष्णोः कार्तिक्यावधि सम्भवम् ॥ ३३ ॥
विष्णु लोकमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ सन्ध्याद्दीप प्रदोयस्तुप्रांङ्गणे द्विजदेवयोः ॥३४॥
समासौ दीपिकां दद्याद्वस्त्रं चैकं च कांचनम् ॥ वैकुण्ठं समवाप्नोति तेजस्वी स भवेदिह ॥

श्रीमान और सौभाग्यवान होता है ॥३२॥ और जो मनुष्य कार्तिक मास तक पीपल वा भगवान की प्रदक्षिणा और उनको नमस्कार विशेष करता है ॥ ३३ ॥ वह विष्णु लोक में वास करता है ॥ यह सत्य सत्य है इसमें संशय नहीं करना चाहिये और जो संध्या के समय ब्राह्मण और देवताओं के आंगन में दीपक जलवाता

है ॥ ३४ ॥ और चातुर्मास्य व्रत को समाप्त होने पर दीपक एक वस्त्र और सुवर्ण दान देता है उसे वैकुण्ठ मिलता है और वह इस लोक में तेजस्वी होता है ॥ ३५ ॥ और जो मनुष्य श्रद्धा भक्ति से भगवान का चरणामृत पीता है वह विष्णु लोक में पहुंचता है और फिर इस संसार में उत्पन्न नहीं होता ॥ ३६ ॥ और जो

॥ ३५ ॥ विष्णुपादोदकं यस्तु पिबेच्छ्रद्धासमन्वितः विष्णु लोकमवाप्नोति न चास्मिन् जायते नरः ॥ ३६ ॥ शतमष्टोत्तरं यस्तु गायत्री जपमाचरेत् ॥ त्रिकालं वैष्णवे हर्म्ये न स पापे न लिप्यते ॥ ३७ ॥ पुराणं शृणुयान्नित्यं धर्मशास्त्रमथापिवा ॥ काञ्चनेन युतं वस्त्रं पुस्तकं च निवेदयेत् ॥ ३८ ॥ पुण्यवान् धनवान् भोगी सत्यशौचपरायणः ॥ ज्ञानवाँल्लोक विख्याता बहुशिष्य सुधार्मिकः ॥ ३९ ॥ नाममंत्र व्रतपरः शंभोर्वा केशवस्य च

मनुष्य तीनों काल में भगवान के मन्दिर में जाकर एकसौ आठ बार गायत्री का जप करता है वह पाप से लिप्त नहीं होता ॥ ३७ ॥ जो नित्य पुराण वा धर्मशास्त्र सुनता है उसपर सुवर्ण सहित वस्त्र और पुस्तक चढ़ाता है ॥ ३८ ॥ वह पुण्यवान्, धनवान्, सुख भोगनेवाला और सत्य कहनेवाला पवित्र होता है और ज्ञानवान् लोक

में प्रसिद्ध और धार्मिक हो जाता है और उसके अनेक शिष्य भी हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य चतुर्मासव्रत में शिव वा विष्णु के मन्त्रों का अनुष्ठान करता है और समाप्त होने पर उन देवताओं की सुवर्ण की प्रतिमा ब्राह्मण को देता है ॥ ४० ॥ वह पुण्यवान पापों से रहित हो जाता है और जो अपनी नित्य क्रिया को

समाप्तौ प्रतिमा दद्यात्तस्य देवस्य काञ्चनीम् ॥४०॥ पुण्यवान् दोष निर्मुक्तः संभवेच्च गुणालयः ॥ कृतनित्य क्रियो भूत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥४१॥ सूर्यमंडलमध्यस्थं देवं ध्यात्वा जनार्दनम् ॥ समाप्तौ काञ्चनम् दद्याद्रक्तवस्त्रं च गां तथा ॥ ४२ ॥ आरोग्यं पूर्णमायुश्च कीर्तिर्लक्ष्मी बलं लभेत् ॥ भक्त्या व्याहृतिभिर्मन्त्रैर्गायत्र्या वा व्रतान्वितः ॥ ४३ ॥ अष्टोत्तर शतं चाथ अष्टाविंशतिमेव वा ॥ तिल होमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये दिने दिने ॥ ४४ ॥

समाप्त करके सूर्य भगवान को विधि पूर्वक अर्घ्य देता है ॥४१॥ और जो मनुष्य सूर्यमण्डल में स्थित विष्णु भगवान का ध्यान करता है और समाप्त होने पर सोना, लालवस्त्र, और गौ का दान करता है ॥ ४२ ॥ वह आरोग्य, पूर्ण आयु, कीर्ति लक्ष्मी, और बल को प्राप्त करता है। जो भक्ति पूर्वक व्रत करके व्याहृति से युक्त

मन्त्रों से अथवा गायत्री मन्त्र से ॥४३॥ चातुर्मास में नित्य एक सौ आठ वा अट्ठाइस तिलों की आहुति देता है ॥ ४४ ॥ और चातुर्मास व्रत समाप्त होने पर विद्वान ब्राह्मणों को तिल पात्र देता है तो मन वचन कर्म से किये संचित पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥ फिर उसे रोग नहीं होते हैं और उसे उत्तम संतति मिलती है

तिल प्रात्रं समाप्तौ तु दद्याद्विप्राय धीमते ॥ वाङ्मनः कायजनितैः पापैर्मुच्येत संचितैः ॥
॥४५॥ न रोगैरभिभूयेत लभते सन्ततिमुत्तमाम् ॥ अन्नहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः
॥४६॥ समाप्तौ घृत कुंभं तु दद्यात्सद्वस्त्र काञ्चनम् ॥ आरोग्यं कान्तिमतुलां पुत्रसौभाग्यसंपदः
शत्रुक्षयं च लभते ब्रह्मणा प्रतिमो भवेत् ॥ अश्वत्थसेवां यः कुर्यात् सर्व पापैः प्रमुच्यते
॥ ४८ ॥ विष्णुभक्तो भवेत्पश्चादन्ते वस्त्रं प्रदापयेत् ॥ सकाञ्चनं ब्राह्मणाय न वै रोगान्

और जो मनुष्य आलस्य छोड़कर चार महीना तक अन्न का हवन करता है ॥ ४६ ॥ और व्रत के समाप्त होने पर घृतपात्र, सुन्दर वस्त्र, और सुवर्ण ब्राह्मण को देता है वह आरोग्यता, अतुल कान्ति पुत्र, सौभाग्य, संपदा ॥ ४७ ॥ को पाता है और उसके शत्रु भी नाश हो जाता है और वह स्वयं ब्रह्मा के समान हो जाता है

और जो पीपल वृक्ष की सेवा करता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ ४८ ॥ और विष्णु का परम भक्त हो जाता है और व्रत के अन्त में सुवर्ण सहित जो वस्त्र का दान ब्राह्मण को देता है वह सदा के लिए रोग से मुक्त हो जाता है ॥ ४९ ॥ और जो मनुष्य विष्णु की परमप्रिया सुन्दर तुलसी को धारण करता है वह विष्णु

स विन्दति ॥ ४९ ॥ तुलसी धारयेद्यस्तु विष्णु प्रीतिकरी शुभाम् ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्विष्णुमुद्दिश्यपाण्डव ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे दूर्वाममृतसंभवाम् ॥ ५१ ॥ सदा प्रातर्वहेन्मूर्ध्नित्वं दूर्वे इति मन्त्रतः । व्रतान्ते च कुरुश्रेष्ठदूर्वां स्वर्णविनिर्मिताम् ॥ ५२ ॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ॥ ५३ ॥ तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम् ॥

लोक में निवास करता है और सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ५० ॥ हे युधिष्ठिर ! व्रत के उपरान्त विष्णु भगवान् के लिये ब्राह्मण भोजन करावे । जो मनुष्य भगवान के शयन करने पर अमृत से उत्पन्न हुई दूर्वा को ॥ ५१ ॥ सदा प्रातःकाल शिरपर दूर्वा के मन्त्र से धारण करता है और हे पाण्डव ! व्रत के अन्त ६४

में सोने की दूर्वा वनवा कर ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! दक्षिणा सहित इस मन्त्र के दान करता है कि । हे दुर्वे !
जैसी तू शाखाप्रशाखा से पृथिवी तलपर फैली है ॥ ५३ ॥ वैसे ही मुझे भी अजर और अमर सन्तान दे तो
उसका कभी बुरा नहीं होता और वह पापों से छूट जाता है ॥ ५४ ॥ और सन्सार में सब प्रकार के सुख को

नाशुभं प्राप्नुयाज्ञातु पापेभ्यः प्रविमुच्यते ॥ ५४ ॥ भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् स्वर्गलोके
महीयते ॥ गीतं तु देव देवस्य केशवस्य शिवस्य वा ॥ ५५ ॥ करोति पुरतो नित्यं जा-
गृतेः फलमाप्नुयात् ॥ चातुर्मास्यव्रती दद्याद्घंटां देवाय सुस्वराम् ॥ ५६ ॥ सरस्वति
जगन्नाथे जगज्जाड्यापहारिणी ॥ साक्षाद्ब्रह्म कलत्रं च विष्णुरुद्रादिभिःस्तुता ॥ ५७ ॥
गुरोरवज्ञया यच्चानध्यायेऽध्ययनं कृतम् ॥ तन्ममध्यानोत्पन्नं जाड्यं हर वरानने ॥ ५८ ॥

भोगकर स्वर्ग में सुख भोगता है । जो मनुष्य देवताओं के देव भगवान के वा शिव जी के आगे गीत ॥५५॥
गाता है उसे जागरण का फल मिलता है । जो चातुर्मास्य का व्रत करके सुन्दर बजते हुए घण्टे को देवता के
लिये दान करता है ॥ ५६ ॥ और कहे कि हे सरस्वती ! हे जगत् की स्वामिनी ! हे जगत् की जड़ता दूर

96

करनेवाली हे साक्षात् ब्रह्मा की स्त्री तू विष्णु और शिव से स्तुतिं की गई है ॥ ५७ ॥ गुरु की अवज्ञा करके अनध्याय के दिन पढ़कर जो मैंने पाप किया है सो हे सुन्दर मुखी ! उस मेरे अध्ययन से उत्पन्न हुई जड़ता को दूर करो ॥ ५८ ॥ और हे ब्रह्माणी ! हे लोकको पावन करनेवाली ! घण्टा के दान से प्रसन्न हो। जो

घण्टादानेन तुष्टत्वं ब्रह्माणी लोकपावनी ॥ विप्रपादविनिर्मुक्तं तोयं यः प्रत्यहं पिबेत् ॥५९॥ चातुर्मास्ये नरो भक्त्या मद्रूपं ब्राह्मणं स्मरन् ॥ मनोवाक्कायजनितैर्मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ ६० ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेत श्रीरायुस्तस्य वर्धते ॥ समाप्तौ गोयुगंदद्याद् गामेकां वा पयस्विनीम् ॥ ६१ ॥ अत्राप्यशक्तौ राजेन्द्र दद्याद्वासोयुगं व्रती ॥ ब्राह्मणं वन्दते वस्तु सर्वदेवमयं श्रुतम् ॥ ६२ ॥ कृत कृत्यो भवेत्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ समाप्तौभोजयेद्विप्रा-

कोई मनुष्य चातुर्मास्य व्रत में ब्राह्मण के चरण को धोकर चरणामृत पीता है ॥ ५९ ॥ और उन ब्राह्मणों को मेरा स्वरूप जानता है वह मन, वचन, और कायकृत पापों से छूट जाता है ॥ ६० ॥ वह सदा रोग से मुक्त हो जाता है ॥६०॥ और उसकी लक्ष्मी और आयुष्य बढ़ती है। और व्रत समाप्त होने पर जो दो गौओं का

दान करता है अथवा दूध देनेवाली एक ही गौ को ब्राह्मण के लिये देता है ॥ ६१ ॥ और हे राजेन्द्र ! जो इतनी शक्ति न हो तो व्रत करनेवाला दो वस्त्र का ही दान करे। और जो मनुष्य सर्वदेवमय ब्राह्मण को नमस्कार करता है ॥६२॥ वह कृतकृत्य हो जाता है और सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य व्रत समाप्त

नायुर्वित्तं च विन्दति ॥ ६३ ॥ संस्पृशेत् कपिलां योवै नित्यं भक्ति समन्वितः ॥ तामेवा-लंकृतां दद्यात् सवत्सां दक्षिणायुताम् ॥ ६४ ॥ तस्मादस्य प्रदानेन कीर्तिरस्तु सदा मम ॥ एवं व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३८ ॥ गन्धर्व विद्या सम्पन्नः सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥ सार्वभौमो भवेद्राजा दीर्घायुश्च प्रतापवान् ॥ सर्वसेदिन्द्रवत्सर्गे वत्सरान् रोम सम्मितान् ॥ ६५ ॥ नमस्करोति यः सूर्यं गणेशं वापि नित्यशः ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते कान्ति-

करके ब्राह्मण को भोजन देता है उसे आयु और धन प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से नित्य कपिला गौ को स्पर्श करता है और दक्षिणा वस्त्र तथा आभूषण और बछड़े समेत ब्राह्मण को दान करता है ॥ ६४ ॥ वह सार्वभौम, दीर्घायु, और प्रतापी राजा होता है। और शरीर में जितने रोम होते हैं उतने ही

प्र. मा. वर्ष इन्द्र के समान स्वर्ग में रहता है ॥ ६५ ॥ जो मनुष्य सूर्य वा गणेशजी को नित्य प्रणाम करता है उसे आयु, आरोग्यता, ऐश्वर्य, और उत्तम कान्ति मिलती है ॥ ६६ ॥ और गणेशजी के प्रसाद से अपनी अभिलाषा को पाता है और उसको सब स्थान में विजय होती है इसमें विचार का काम नहीं है ॥ ६७ ॥ गणेश भा. टी.

९६ मुत्तमाम् ॥ ६६ ॥ विघ्नराजप्रसादेन प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ॥ सर्वत्र विजयं चैत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ विघ्नेशार्कौ सुवर्णस्य सेन्दूरारुणसन्निभौ ॥ निवेदयेद्ब्राह्मणाय सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६८ ॥ यस्तु रौप्यं शिवप्रीत्यै दद्याद्भक्त्या ऋतुद्वये ॥ ताम्रं वा प्रत्यहं दद्यात् स्वशक्त्या शिवतुष्टये ॥ ६९ ॥ सुरूपाँल्लभते पुत्रान् रुद्रभक्ति परायणान् ॥ समासौ मधुपूर्णं तु पात्रं राजतमुत्तमम् ॥ ७० ॥ प्रदद्यात्ताम्रदाने तु ताम्रपात्रं गुडान्वितम् ॥ यस्तु

और सूर्य की सिन्दूर के समान रक्तवर्ण सुवर्ण की मूर्ति ब्राह्मण को दान करने से सब काम और अर्थ सिद्ध होते हैं ॥६८॥ और जो चातुर्मास में भक्तिपूर्वक शिवजी के लिये चांदी का दान करता है वा शिवजी को प्रसन्न करने के लिये शक्ति के अनुसार तांबे का नित्यदान करता है ॥ ६९ ॥ वह शिव के भक्त सुन्दर और ९६

रूपवान् सन्तान को पाता है । और जो व्रत की समाप्ति में चाँदी के बर्तन में सहद रखकर ब्राह्मण को देता है ॥७०॥ अथवा तामें के बर्तन में गुड़ भरकर दान करता है । और जो भगवान् के शयन करने पर अपनी शक्ति के अनुसार सोनेका दान करता है ॥ ७१ ॥ और जो मनुष्य तिलों के सहित वस्त्र का जोड़ा दान करता है

सुप्ते हृषीकेशे स्वर्णं दद्यात् स्वशक्तितः ॥ ७१ ॥ वस्त्रयुग्मतिलैः सार्धं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इह भुक्त्वा महाभोगानन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ७२ ॥ वस्त्रदानं तु यःकुर्याच्चातुर्मास्ये द्विजातये ॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥ ७३ ॥ शय्यां दद्यात् समाप्तौ तु वासः काञ्चन पादिकाम् ॥ अक्षय्यं सुख माप्नोति धनं स धनदोपमम् ॥ ७४ ॥ यो गोपी चन्दनं दद्यान्नित्यं वर्षासु मानवः ॥ श्रीपतिस्तस्य सन्तुष्टो भुक्तिं मुक्तिं ददाति च ॥७५॥

वह सब पापों से छूट जाता है और यहाँ अनेक प्रकार के सुखको भोगकर अन्त में शिवलोक में वास करता है ॥७२॥ और जो कोई चातुर्मास में ब्राह्मण को वस्त्र दान देता है और चन्दन पुष्प आदि से पूजन करके विष्णु भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न हों ऐसा कहता है ॥ ७३ ॥ और व्रत को समाप्त करके शय्यादान तथा सुवर्ण

की पट्टी देवे तो वह कुबेर के समान और अक्षय सुखको प्राप्त करता है ॥७४॥ और जो मनुष्य वर्षा काल में गोपीचन्दन ब्राह्मण को देता है उससे भगवान प्रसन्न होकर उसे भोग और मोक्ष देते हैं ॥ ७५ ॥ और व्रत की समाप्ति में एक तुला प्रमाण गोपीचन्दन का दान करे वा उसका आधा अथवा

समाप्तावर्पितद्द्यात्तुला परिमितं शुभम् ॥ तदर्धं वा तदर्द्धं वा सवस्त्रं च सदक्षिणम् ॥ ७६ ॥ यस्तु स्वपे हृषीकेशे प्रत्यहं तु व्रतान्वितः ॥ दद्याद्दक्षिणयासार्द्धं शर्करामथवा गुडम् ॥ ७७ ॥ एवं व्रते तु संपूर्णे कुर्वन्नुद्यापनं बुधः ॥ प्रत्येकं ताम्रपात्राणि पलाष्टकमितानि तु ॥ ७८ ॥ वित्तशाठ्यमकुर्वाणश्चतुष्पलमितानि वा ॥ अष्टचत्वारि चैकं वा शर्करा पूरितानिच ॥ ७९ ॥ दक्षिणा फलवासोभिः प्रत्येकं संयुतानि च ॥ सप्तधान्यानि विप्रेभ्यः

उसका भी आधा दान करने से तथा दक्षिणा सहित वस्त्रदान करने से अक्षय सुख और अन्त में मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ जो व्रत करनेवाला पुरुष देव शयनी में नित्य दक्षिणा सहित गुड़ अथवा शर्करा (चिनी) ब्राह्मण को देता है वह भी मुक्ति को पाता है ॥ इस प्रकार विष्णु शयनी का व्रत करके मनुष्य उद्यापन करे ।

और आठ आठ पलके परिणाम का ताम्बे का पात्र बनवावै ॥७८॥ इसमें कृपणता न करे और यदि शक्ति न हो तो चार चार पल का ही बनवावे ॥ चाहे आठ पात्र बनवावे चाहे एक ही पात्र बनाकर उसमें गुड़ अथवा शर्करा भरे ॥ ७८ ॥ और प्रत्येक के साथ दक्षिणा फल और वस्त्र रखे और अन्न सहित श्रद्धासे

श्रद्धया प्रतिपादयेत् ॥ ८० ॥ ताम्रपात्रं सवस्त्रं च शर्करा हेम संयुतम् ॥ सूर्यप्रीतिकरं यस्माद्रोगघ्नं पापनाशनम् ॥ ८१ ॥ पुष्टिदं कीर्तिदं नृणां नित्यं सन्तानकारकम् ॥ सर्वं कामप्रदं स्वर्ग्यमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ८२ ॥ तस्मादस्य प्रदानेन कीर्तिरस्तु सदाममम ॥ एवं व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ८३ ॥ गन्धर्व विद्या सम्पन्नः सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥ राज्यार्थी लभते राज्यं पुत्रार्थी लभते सुतान् ॥ ८४ ॥ अर्थार्थी प्राप्नुयादर्थं निष्कामो मोक्ष-

ब्राह्मण को देवे ॥ ८० ॥ ताम्र पात्र में शर्करा भर कर उसे वस्त्र और सुवर्ण सहित जो दान करता है उससे सूर्यभगवान प्रसन्न होकर उसको मोक्ष देते हैं ॥ ८१ ॥ यह व्रत मनुष्यों को नित्य पुष्ट और कीर्ति को देने वाला और सुन्दर सन्तान देनेवाला है । सब कामना और स्वर्ग को देनेवाला और आयुष्य को बढ़ानेवाला

ए. मा. ९८

बड़ा उत्तम है ॥ ८२ ॥ और दान देकर ब्राह्मण से ऐसा कहे कि इस पात्र के दान से मेरी सदा कीर्ति हो। जो कोई इस प्रकार व्रत करता है उसके पुण्य का फल सुनो ॥ ८३ ॥ वह मनुष्य गन्धर्व विद्या में प्रवीण और सब स्त्रियों को प्रिय होता है। और राज्य को चाहने वाला राज्य और पुत्र को चाहनेवाला पुत्र लाभ करता

भा. टी.

माप्नुयात् ॥ यस्तु वै चतुरो मासान् शाकं मूलफलादिकम् ॥ ८५ ॥ नित्यं ददाति विप्रेभ्यः शक्त्यायत्संभवेन्नृप ॥ व्रतान्ते वस्त्रयुग्मं च शक्त्या दद्यात्सदक्षिणम् ॥ ८६ ॥ सुखी भूत्वा चिरं कालं राजयोगी भवेन्नरः ॥ सर्वदेव प्रियं यस्माच्छाकं तृप्तिकरं नृणाम् ॥ ८७ ॥ ददामि तेन देवाद्याः सदा कुर्वन्तु मङ्गलम् ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु ऋतुद्वये ॥८८॥ ब्राह्मणाय सुशीलाय दिनेश प्रीतयेऽनघ ॥ दद्यात्कटुत्रयं मर्त्यो गृहपर्याप्तमादरात् ॥ ८९ ॥

है ॥ ८४ ॥ धन को चाहनेवाला लक्ष्मी को और निष्काम व्रत तथा दान करनेवाला मोक्ष को पाता है। जो कोई चार महीने तक शाक, मूल, फल आदि ॥ ८५ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार नित्य ब्राह्मणों को देता है और हे राजा! फिर वह व्रत के अन्त में शक्ति के अनुसार दक्षिणा सहित वस्त्रों का जोड़ा दान करता है

९८

॥८६॥ वह मनुष्य चिरकाल तक सुखी होकर राजयोगी होता है ॥ और शाक दान के समय ब्राह्मण से कहे कि यह शाक सब देवताओं का प्यारा और मनुष्यों को तृप्ति करने वाला है ॥ ८७ ॥ सो शाक मैं आपको अर्पण करता हूँ इससे देवता आदि सदा मंगल करें। और भगवान् के शयन करने पर मनुष्य से चातुर्मास

दक्षिणा वस्त्र सहितं मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ कटुत्रयमिदं यस्माद्रोगघ्नं सर्वदेहिनाम् ॥ ९० ॥
तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु भास्करः ॥ एवं कृत्वा व्रतं सम्यक्कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥९१॥
कृत्वा स्वर्णमयीं शुण्ठीं मरीचं मागधीमपि ॥ सवस्त्रं दक्षिणायुक्तं दद्याद्विप्राय धीमते ॥९२॥
एवं व्रतं यः कुरुते सर्जीवेच्छरदां शतम् ॥ प्राप्नुयादीप्सितानर्थानंतेस्वर्गं व्रजेन्नृप ॥ ९३ ॥
मुक्ताफलानि यो दद्यान्नित्यं विप्राय सन्मतिः ॥ अन्नवान् कीर्तिमान् श्रीमान् जायते वसुधा-

में प्रति दिन ॥ ८८ ॥ सूर्य की प्रसन्नता के लिये सुशील ब्राह्मण को उसके घर के योग्य सोंठ मिर्च पीपल इनको आदर सहित दान करे ॥ ८९ ॥ हे सुव्रत ! दक्षिणा और वस्त्र सहित इस मन्त्र से ब्राह्मण को देवे कि यह सोंठ मिर्च पीपल प्राणियों के रोग को नाश करनेवाली है ॥ ९० ॥ इसलिये इसके दान से सूर्यभग-

वान प्रसन्न होवें। फिर बुद्धिमान् को चाहिये कि व्रत करके अच्छी तरह उसका उद्यापन करे ॥ ६२ ॥ जो कोई इस व्रत को ऐसा करता है वह सौ वर्ष तक जीता है और हे राजन्! वह अपनी अभिलाषाओं को प्राप्त कर अन्त समय स्वर्ग को जाता है ॥ ६३ ॥ जो बुद्धिमान् ब्राह्मण को नित्य मोतियों का दान करता है वह

धिप ॥ ६४ ॥ तांबूलदानं यः कुर्याद् वर्जयेद्विजितेन्द्रियः। रक्त वस्त्र द्वयं दद्यात् समाप्तौ च सदक्षिणम् ॥ ६५ ॥ महालावण्य माप्नोति सर्वरोग विवर्जितः ॥ मेधावी सुभगः प्राज्ञो रक्तकण्ठश्च जायते ॥ ६६ ॥ गन्धर्वत्वमवाप्नोति स्वर्गं लोकंचगच्छति ॥ ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् ॥ ६७ ॥ तस्य प्रदानाद् ब्रह्माद्याः श्रियं ददतु पुष्कलम् ॥ चातुर्मास्ये प्रतिदिनं सुवासिन्यै द्विजाय च ॥ ६८ ॥ नारींवा पुरुषो वापि हरिद्रां संप्रयच्छति ॥

पुरुप अन्नवान् कीर्ति मान् और लक्ष्मीवान् हो जाता है ॥ ६४ ॥ जो पुरुष इन्द्रियों को वशमें करके ताम्बूल ब्राह्मण को दान करता है और अपने चार महीने तक ताम्बूल का त्याग करता है और व्रत को समाप्त करके दक्षिणा सहित लाल वस्त्र का जोड़ा दान करता है ॥६५॥ तो वह सब रोगों से मुक्त होकर बड़ा सुन्दर, बुद्धि

मान, रूपवान्, पण्डित और मधुर कण्ठ हो जाता है ॥ ९६ ॥ और वह गन्धर्व के समान गान करने लगता है अन्त में स्वर्ग को जाता है । ताम्बूल कैसा है कि लक्ष्मी और कल्याण का करनेवाला तथा ब्रह्मा शिव और विष्णुकी मूर्ति है ॥९७॥ उसको दान कर जैसे ब्रह्मा आदि देवता अधिक प्रसन्न होकर उस मनुष्यों को उत्तम

लक्ष्मीमुद्दिश्य गौरी वा समाप्तो राजतं नवम् ॥ ९९ ॥ हरिद्रापूरितं कृत्वा तत्पात्रं दक्षिणान्वितम् ॥ प्रदद्याद्भक्ति संयुक्तं देवीमे प्रीयतामिति ॥ १०० ॥ भर्त्रासह सुखं भुक्ते नारी नार्या तथा पुमान् ॥ सौभाग्यमक्षयं धान्यं धनपुत्र समुन्नातिम् ॥ १०१ ॥ संप्राप्य रूप लावण्ये देवीलोके महीयते ॥ उमामहेशमुद्दिश्य चातुर्मास्ये दिने दिने ॥ १०२ ॥ संपूज्य विप्रमिथुनं तस्मै यश्च स्वशक्तितः ॥ दद्यात् सदक्षिणं हेम उमेशः प्रीयतामिति ॥ १०३ ॥

लक्ष्मी देते हैं ॥ और चातुर्मास में जो सुवासिनी (सोहागिन) और ब्राह्मण को ॥९८॥ स्त्री हो वा पुरुष ही लक्ष्मी वा गौरी के लिये हलदी का दान करे और व्रत समाप्त होने पर नवीन चाँदी के ॥ ९९ ॥ बर्तन में हलदी भरकर दक्षिणा सहित भक्ति पूर्वक यह कहकर दान करता है कि इससे देवी मुझपर प्रसन्न हों ॥१००॥

101

तो स्त्री पति के साथ और पति स्त्री के साथ सुख भोगता है। और सौभाग्य, अक्षय, धान्य, धन, पुत्र, और संपदा ॥१०१॥ तथा रूप और लावण्य को पाकर देवी के लोक में सुख भोगता है। और चातुर्मास में नित्य शिव पार्वती के लिये ॥ १०२ ॥ ब्राह्मण को स्त्री पुरुष के सहित सुवर्ण यह कह कर दान करे कि, शिवजी

उमेश प्रतिमां हैमीं दद्यादुद्यापने बुधः ॥ पंचोपचारैः संपूज्य धेन्वा च वृषभेणच ॥ १०४ ॥ भोजयेदपि मिष्टान्नं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ संपत्तिरक्षया कीर्तिर्जायते व्रत वैभवात् ॥१०५॥ इह भुक्त्वाऽखिलान् कामानन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ फलदानं तु यः कुर्य्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥ १०६ ॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये ॥ सर्वान् मनोरथान् प्राप्य सन्ततिं चानपायिनीम् ॥१०७॥ फलदानस्य माहात्म्यात् मोदते नन्दने बने ॥ पुष्पदान व्रते चापि

इससे प्रसन्न हों ॥ १०३ ॥ और व्रत करनेवाले को चाहिये कि शिवजी की सुवर्ण की प्रतिमा बनवाकर व्रत की समाप्ति के दिन उद्यापन काल में दान करे ॥ और जो मनुष्य बैल सहित गौ का पंचोपचारसे पूजन करके ॥ १०४ ॥ मिठाई या पक्वान्न खिलाता है उसका फल सुनों कि उसके यहाँ इस वृत के प्रभाव से सदा स्थिर

रहनेवाली संपत्ति और अचल कीर्ति होती है ॥१०५॥ और मनुष्य इस जन्म में संपूर्ण सुख और संपत्ति का भोग करके अन्त में शिवलोक में वास करता है। जो आलस्य को छोड़कर फल ब्राह्मण को दान करता है ॥ १०६ ॥ और व्रत की समाप्ति के समय ब्राह्मण को चाँदी का दान करता है वह सब मनोरथ और दीर्घ

स्वर्ण पुष्पादि दापयेत् ॥ १०८ ॥ स सौभाग्यपरं पार्थ गन्धर्वपदमाप्नुयात् ॥ वासुदेवे प्रसुप्तेतु चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥ १०९ ॥ नित्यं वामनमुद्दिश्य दध्यन्नं स्वादुषड्रसैः ॥ भोजयेदथवा दद्यादकाश्यां न भोजयेत् ॥ ११० ॥ दानमेवं प्रकुर्वीत ग्रहणादौ तथैवच ॥ अशक्तौ नित्यदाने तु कुर्यात्पञ्चसु पर्वसु ॥ १११ ॥ भूताष्टम्याममायां च पूर्णिमायां तथैव च ॥ प्रत्यर्कं वारमथवा प्रतिभार्गव वासरम् ॥ ११२ ॥ एवं कृत्वा समाप्तौ तु यथाशक्ति

आयु वाले सन्ततियों को पाकर ॥ १०७ ॥ फल दान के प्रभाव से स्वर्ग में इन्द्र के नन्दन वन में वास करता है। और पुष्प दान के व्रत में भी जो सुवर्ण का पुष्प बनाकर ब्राह्मण को दान करता है ॥ १०८ सो परम सौभाग्य और सुख को प्राप्त होकर गंधर्व लोक में वास करता है। और विष्णु के शयन करने पर आलस्य

को छोड़ कर चातुर्मास पर्यन्त ॥१०६॥ वामन जी के नाम पर स्वादयुक्त अन्न और छ रसों के सहित नित्य ब्राह्मण को भोजन देवे अथवा दान करके देवे यदि एकादशी होवे तो ब्राह्मण को भोजन न करावे ॥ ११० ॥ इस प्रकार चातुर्मास में दान करे । और जो नित्य दान करने की सामर्थ्य न हो तो पाँच पर्वोंपर ही करे

महीं ददेत् ॥ अशक्तौ भूमिदाने तु धेनुंदद्यादलंकृताम् ॥ ११३ ॥ तथाप्यशक्तौ वासश्च सरुक्मे पादुके तथा ॥ अक्षय्यमन्नमाप्नोति पुत्रपौत्रादि संपदम् ॥११४॥ सुस्थिरां विष्णु-भक्तिं च प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ नित्यं पयस्विनी दद्यात सालंकारां शुभावहाम् ॥ ११५ ॥ सवत्सां दक्षिणोपेतां स सर्वज्ञानवान् भवेत् ॥ न पर प्रेष्यतां याति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥११॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभिः सहितो नरः ॥ वर्षिकांश्चतुरोमासान् प्राजापत्यं चरेन्नरः॥११७॥

॥१११॥ चतुर्दशी अष्टमी, अमावस्या, और पूर्णिमा इनमें अथवा प्रत्येक रविवार और शुक्रवार को ॥११२॥ इस प्रकार व्रतको करके समाप्ति के दिन यथाशक्ति न हो तो वस्त्र और सोना के सहित खड़ाऊँ ब्राह्मण को देवे । इससे मनुष्य अक्षय अन्न, पुत्र, पौत्र आदि संपत्ति को ॥ ११४ ॥ और विष्णु की अचल भक्ति को

पाकर अन्त में विष्णु लोक को जाता है। जो कोई वस्त्र आभूषण कल्याण करने वाली दूध देने वाली गौ को दान करता है ॥ ११५ ॥ और साथ में बछड़ा और दक्षिणा देता है तो वह मनुष्य परम ज्ञानी होता है और दूसरे की सेवकाई न करके मोक्ष को पाता है ॥ ११६ ॥ और वहाँ वह मनुष्य पितृगणों के साथ अक्षय सुख

समाप्तौ गो युगं दत्त्वा कृत्वा ब्राह्मण भोजनम् ॥ सर्वपाप विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ११८ ॥ एकांतरोपवासे तु सीराण्यष्टौ प्रदापयेत् ॥ वस्त्रकाञ्चनयुक्तानि बलीवर्दयुतानिच ॥ ११९ ॥ अनडुद्द्वय संयुक्तं लांगलं कर्षण क्षमम् । सर्वोपस्करसंयुक्तं ददामि प्रीतये हरेः ॥ १२० ॥ शाकमूल फलैर्वापि चातुर्मास्यं नयेन्नरः ॥ सप्तौ गो प्रदाने न सगच्छेद्विष्णु मंदिरम् ॥ १२१ ॥ पयोव्रती तथाऽप्नोतिं ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ व्रतांते च तथा

भोगता है। जो मनुष्य वर्षाकाल के चारमास पर्यन्त प्राजापत्य व्रत करता है ॥ ११७ ॥ और प्रजापत्य व्रत को समाप्त होने पर दो गौ दान करे और ब्राह्मण को भोजन करावे तो वह सब पापों से शुद्ध होकर सनातन ब्रह्म में मिल जाता है ॥ ११८ ॥ और जो एक दिन बीच में गौ ब्राह्मण को देकर व्रत करता है और व्रत के

बीच ही में वस्त्र सोना और बैल सहित आठ हलों को दान करके ब्राह्मण को देता है ॥ ११९ ॥ और जोतने के योग्य हलमें बैल की जोड़ी जोतकर सब सामग्री सहित इकट्ठा कर कहे कि मैं भगवान की प्रसन्नता के लिये यह ब्राह्मण को दान करता हूँ ॥ १२० ॥ अथवा मनुष्य शाक, मूल, फल खाकर चातुर्मास्य को व्यतीत करे

१०२ दद्याद्गामेकाञ्च पयस्विनीम् ॥ १२२ ॥ नित्यं रम्भा पलाशे च यो भुंक्ते तु ऋतु द्वये वस्त्रयुग्मं च कांस्यं च शक्त्यादत्वा सुखी भवेत ॥१२३॥ कास्यं ब्रह्मा शिवो लक्ष्मीः कांस्यमेव विभावसुः ॥ कांस्यं विष्णु मयं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छमे ॥ १२४ ॥ नित्यम् पलाशभोजी च तैलाभ्यंगविवर्जितः ॥ स निहन्त्यतिपापानि तूल राशिमिवानलः ॥ १२५ ॥ ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च बालघानकरश्चयः ॥ असत्यवादिनो येच स्त्रीघाती व्रतघातकाः ॥ १२६ ॥

और जब व्रत समाप्त हो जावे तव सुन्दर सींग तथा दुग्ध देने वाली गौ अलंकृत करके ब्राह्मण को देने से व्रती मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ १२१ ॥ और जो चातुर्मास में केवल दूध पीकर व्रत करता है वह सनातन ब्राह्मण लोक को जाता है परन्तु व्रत की समाप्ति में दूध देने वाली एक गो ब्राह्मण

को अवश्य देवे ॥ १२२ ॥ और जो वर्षाकाल के चार मास तक नित्य केले के पत्ते पर भोजन करता है और शक्ति के अनुसार वस्त्र के जोड़े और कांसे के पात्र का दान करता है वह संपूर्ण सुखी हो जाता है ॥ १२३॥ कांस्यपात्र ब्राह्मण को देने के समय ऐसा कहे कि कांसे में ही ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी हैं कांसे में ही अग्नि हैं कांसा विष्णुमय है इसलिये यह कांसा मुझको शान्ति देवे ॥१२४॥ व्रत करनेवाला जो मनुष्य नित्य पलाश

अगम्यागामिनश्चैव विधवागामिनस्तथा ॥ चाण्डालीगामिनश्चैव विप्रस्त्री गामिनस्तथा ॥१२७॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता भवन्त्येतद्व्रतेन च ॥ समाप्तौ कांस्यपात्रं तु चतुःषष्ठिपलैर्युतम् ॥१२८॥ सवत्सां चैव गां दद्यात सालंकारां पयस्विनीम् ॥ अलंकृताय विदुषे सुवस्त्राय

के पत्ते में भोजन करता है और चातुर्मास पर्यन्त शरीर में तेल नहीं लगाता है तो वह अपने अनेक पापों का नाश कर देता है जैसे रुई के राशि को अग्नि जला देता है॥१२५॥ और जो मनुष्य ब्राह्मण का वध करनेवाला मदिरा पीनेवाला, बालक घातक करनेवाला, और असत्य बोलनेवाला तथा स्त्री से धर्म का और व्रत का घात करनेवाला ॥१२६॥ और जो चचेरी माता, बहिन, मौसी, वा उसकी कन्या में गमन करनेवाला और विधवा स्त्री से गमन करनेवाला चाण्डाली में गमन करनेवाला तथा ब्राह्मण की स्त्री में गमन करनेवाले ॥१२७॥ ये

सब इस व्रत के प्रभाव से पाप रहित हो जाते हैं। और व्रत की समाप्ति में चौसठ पल का कांसे का वर्तन ॥ १२८ ॥ और दूध देनेवाली बछड़ा समेत गौ को वस्त्र और भूषण से अलंकृत करके विद्वान् ब्राह्मण के लिये दान देवे ॥ १२९ ॥ जो व्रत करनेवाला मनुष्य भूमि को लीपकर भगवान को स्मरण करके अन्नभोजन करता

सुवेपिणे ॥१२९॥ भूमौ विलिप्य सो भुंक्ते देवं नारायणं स्मरन् ॥ दद्याद्भूमिं यथाशक्तिं कृष्यां बहुजलान्वितम् ॥१३०॥ आरोग्यपुत्र सम्पन्नो राजा भवति धार्मिकः ॥ शत्रोर्भयं न लभते विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १३१ ॥ अयाचिते त्वनड्वाहं सहिरण्यं सचन्दनम् ॥ षड्रसंभोजनं दद्यात् सयाति परमां गतिम् ॥ १३२ ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे नक्तं च कुरुते

है और व्रत के अन्त में यथाशक्ति जल के समीप की खेती के योग्य भूमि को दान करता है ॥ १३० ॥ वह आरोग्य, पुत्रवान्, और धार्मिक राजा होता है। और उसको शत्रु का भय नहीं होता और वह अन्त में विष्णु लोक में निवास करता है ॥१३१॥ और जो पुरुष विना मांगे ब्राह्मण को सुवर्ण चन्दन सहित बैल का दान देकर उसे छ रसयुक्त भोजन कराता है वह परम गति को प्राप्त करता है ॥ १३२ ॥ जो भगवान के शयन

में रात्रि का व्रत करता है और पीछे ब्राह्मण भोजन कराता है वह शिव लोक में आनन्द भोगता है ॥१३३॥ और जो मनुष्य एक वार थोड़ा सा भोजन कर व्रत में दृढ़ रहता है और चार महीने तक भगवान का पूजन करता है वह स्वर्ग भोगता है ॥१३४॥ और वृत के समाप्त होने पर उसे चाहिये कि यथाशक्ति ब्राह्मण को

व्रतम् ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छिवलोके महीयते ॥१३३॥ एकभुक्तं नरः कृत्वा मिताशी च दृढव्रतः ॥ योऽर्चयेच्चतुरोमासान् वासुदेवं सनाकभाक् ॥ १३४ ॥ समाप्तौ भोजयेद्विप्रान् शक्त्यादद्याच्च दक्षिणाम् ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः॥१३५॥ शय्यां सोपस्करां दद्याच्छिवलोके महीयते ॥ पादाभ्यंगं नरोयस्तु वर्जयेच्च ऋतुद्वये ॥ १३६ ॥ समाप्तौ च यथाशक्तिं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥दत्वा च दक्षिणां शक्त्या स गच्छेद्विष्णुमान्दिरम् ॥१३७॥

भोजन कराकर दक्षिणा देवे जो मनुष्य भगवान के शयन में अर्थात् चारमास पर्यन्त पृथ्वी पर शयन करता है ॥१३५॥ और वृत की समाप्ति के दिन जो मनुष्य सामग्री सहित शय्यादान करता है वह सुख भोग के सहित शिवलोक में वास करता है। और जो इन दो ऋतुओं में पैरों में तेल अथवा उबटन नहीं लगाता है

109

॥१३६॥ और व्रत को समाप्त होने पर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराके अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा देता है वह सुखपूर्वक विष्णुलोक में निवास करता है ॥१३७॥ और जो मनुष्य आषाढ़ से लेकर कार्तिक पर्यन्त नख छेदन नहीं कराता है वह सदा आरोग्य, पुत्रवान्, और धार्मिक राजा होता है ॥१३८॥

आषाढादि चतुर्मासान् वर्जयेन्नख कृन्तनम् ॥ आरोग्य पुत्रसंपन्नो राजा भवति धार्मिकः ॥ १३८ ॥ पायसं लवणं चैव मधुसर्पिः फलानि च ॥ चातुर्मास्ये वर्जयेद्यो गौरीशंकर तुष्टये ॥१३९॥ कार्तिक्यां च पुनस्तानि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ स रुद्रलोकमाप्नोति रुद्र-व्रतनिषेवणात् ॥१४०॥ यवान्नं भक्षयेद्यस्तु शुभं शाल्यन्नमेव वा ॥ पुत्र पौत्रादिभिः सार्द्धं शिवलोके महीयते ॥ १४१ ॥ तैलाभ्यंगपरित्यागी विष्णुभक्तः सदा व्रती ॥ वर्षासु विष्णु-

और जो मनुष्य शिव पार्वती की प्रसन्नता के लिये खीर, लवण (निमक) घी, और ऋतु में होनेवाले फलों को चतुर्मास में त्याग करता है ॥१३९॥ और कार्तिक पूर्णिमा के दिन फिर उन वस्तुओं को ब्राह्मण के लिये दान करता है वह रुद्र व्रत करने से रुद्रलोक में वास करता है ॥१४०॥ जो मनुष्य चातुर्मास में जौ अथवा सावांका

चावल खाता है वह पुत्र पौत्र समेत शिवलोक में सुख भोगता है ॥१४१॥ जो चातुर्मास में तैल न लगाकर विष्णु का भक्त हो सदा व्रत कर भगवान का पूजन करता है उसको मोक्ष प्राप्त होता है ॥१४२॥ और उस मनुष्य को चाहिये कि व्रत समाप्त होनेपर कांसे के वर्तन में तेल भरकर और उसमें सोना रखकर ब्राह्मण को दान

मभ्यर्च्य वैष्णवीं लभते गतिम् ॥१४२॥ समाप्तौ कांस्यपात्रं च सुवर्णेन समन्वितम् ॥ तैलेन पूरितं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १४३ ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् शाकानि परिवर्जयेत् ॥ व्रतान्तेहरिमुद्दिश्य पात्रं राजतमेव हि ॥ १४४ ॥ वस्त्रेण वेष्टितं शाकदशकेन प्रपूरितम् ॥ समभ्यर्च्य यथाशक्त्या ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥ १४५ ॥ तेभ्यो दद्याद्दक्षिणया व्रत संपूर्ति हेतवे ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥ १४६ ॥ गोधूम बर्जनं कृत्वा

करे ॥१४३॥ और जो मनुष्य वर्षा के चार महीने भर शाक नहीं खाता है और व्रत के अन्त में भगवान् की प्रसन्नता के लिये चाँदी के पात्र को ॥१४४॥ कपड़े में लपेटकर और उसके साथ शाक कद्दू आदि रखकर और वेदपाठी ब्राह्मण को विधिपूर्वक पूजन करके ॥१४५॥ उस व्रत को सुफल होने के लिये दक्षिणा सहित दान

106

करता है तो वह शिवजी की कृपा से परमपद को पाता है ॥ १४६ ॥ और जो मनुष्य गेहूं के अन्न को छोड़ अन्य पदार्थ खाकर वृत करता है और कार्तिक में सुवर्ण गेहूँ और वस्त्र का दान करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ १४७ ॥ और ब्राह्मण को देने के समय यह कहे कि गेहूँ सब जीवों के बल और पुष्टि

भोजनव्रतमाचरेत् ॥ कार्तिके स्वर्णगोधूमान् वस्त्रं दत्त्वाश्वमेधकृत ॥ १४७ ॥ गोधूमाः सर्वजन्तूनां बलपुष्टि विवर्धनाः ॥ मुख्याश्च हव्यकव्येषु तस्मान्मे ददतु श्रियम् ॥ १४८ ॥ आषाढादिचतुर्मासान् वृन्ताकं वर्जयेन्नरः ॥ कारवेल्लफलं वापि तथालाबुं पटोलकम् ॥१४९॥ यद्यत्फलं प्रियतरं तच्चापि परिवर्जयेत् ॥ चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रौप्याण्येतानि कारयेत् ॥१५०॥ मध्ये विद्रुमयुक्तानि ह्यर्चयित्वा तु शक्तितः ॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं ब्राह्मणायातिभक्तितः

को बढ़ानेवाले हैं और हव्य कव्य में प्रसिद्ध है वे गोधूम मुझको लक्ष्मी देवे ॥ १४८ ॥ मनुष्य आषाढ़ से लेकर कार्तिक पर्यन्त वैगन, करैला, घिया, परवर न खावे ॥ १४९ ॥ और जो जो फल बहुत प्रिय हो उसे भी चातुर्मास्य वृत में त्याग करे, और वृत को पूर्ण होने पर इन सब को चाँदी का बनवावै ॥ १५० ॥ और

उसके मध्य में मूँगा लगवावे फिर यथाशक्ति उसका पूजन करके दक्षिणा सहित बड़ी भक्ति और श्रद्धा से युक्त हो ब्राह्मण को दान करे ॥ १५१ ॥ और अपने इष्टदेव को स्मरण कर कहे कि अमुक देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हो जावें, इस प्रकार व्रत करनेवाला मनुष्य दीर्घायु आरोग्यता, और पुत्र पौत्र की सुन्दरता ॥ १५२ ॥ अक्षय

॥ १५१ ॥ अभीष्टं देवमुद्दिश्य देवो मे प्रीयतामिति ॥ सदीर्घमायुरारोग्यं पुत्रपौत्रान् सुरूपताम् ॥ १५२ ॥ अक्षय्यां संपदं कीर्तिं लब्ध्वा स्वर्गे महीयते (२४) ॥ श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधिभाद्रपदे तथा ॥ १५३ ॥ दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत् ॥ चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्तिनाम् ॥ १५४ ॥ कूष्माण्डं राजमाषश्च मूलकं गृञ्जनं तथा ॥ करमर्दं चेक्षुदण्डं चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः ॥ १५५ ॥ मसूरं बहुबीजं च वृन्ताकं चैत्र

संपत्ति और कीर्ति प्राप्त करके स्वर्ग में सुख भोगता है ॥ (२४) श्रावण में शाक छोड़ देवे भादों में दही छोड़ देवे ॥१५३॥ आश्विन में दुग्ध कार्तिक में दाल न खावे। यह चार बात चारो आश्रमवालों की हैं ॥१५४॥ और पेठा, उड़द, मूली, गाजर, करोंदा, ईख, इनको चतुर्मासा में मनुष्य न खावे ॥ १५५ ॥ मसूर, वैगन और

107

जिसमें बहुत बीज हों ऐसे फलों का भी त्याग करे। हे विप्र! पण्डितों ने यह नित्य व्रत कहा है ॥ १५६ ॥ विशेष करके बैर, आँवला, लौकी और इमली आदि को विष्णुशयन पर्यन्त अर्थात् आषाढ़ से कार्तिक पर्यन्त त्याग करे ॥ १५७ ॥ और भक्तिमान् मनुष्य मचान, पलंग आदि पर का शयन करना त्याग करे और बिना

वर्जयेत् ॥ नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥ १५६ ॥ विशेषाद्बदरीं धात्री मलाबुंचिंचिणीं त्यजेत् ॥ वार्षिकांश्चतुरोमासान् प्रसुप्ते च जनार्दने ॥ १५७ ॥ मञ्च खट्वादि शयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥ अनृतौ वर्जयेद्भार्यामृतौ गच्छन्न दुष्यति ॥ १५८ ॥ मधुवल्लीं च शिग्रुंच चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः ॥ वृन्ताकं च कलिंगं च बिल्वोदुम्बरभिस्सटाः ॥ १५९ ॥ उदरं यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः (२५) ॥ उपवासं तथा नक्तमेकभुक्तमयाचितम् ॥१६०॥

ऋतु के स्त्री में गमन न करे ऋतु समय में गमन करने का दोष नहीं है ॥ १५८ ॥ जो चातुर्मास में महुआ, सैजन इनको न खावे, और बैगन, कलिंदा, बेल, गूलर, और भिस्सर नामके शाक का त्याग करे ॥ १५९ ॥ पूर्व में कहे पदार्थों को देवशयनकाल में भोजन करके जो पेट में पकाता है उससे विष्णुभगवान् बहुत दूर हो

जाते हैं। और जो मनुष्य उपवास, रात्रिव्रत, एकभुक्त, अथवा अयाचित व्रत ॥१६०॥ इनको करे असमर्थ हो तो प्रातःकाल और सन्ध्याकाल को नियम से स्नान पूजन आदि करने ही से वह मनुष्य विष्णुलोक में निवास करता है ॥१६१॥ जो मनुष्य विष्णुके आगे गाता–वजाता है उसे गंधर्वलोक मिलता है। जो गुड़ को त्यागने

अशक्तस्तु यथा कुर्यात् सायं प्रातरखण्डितम् ॥ स्नानपूजादिकं यस्तु स नरो हरिलोकभाक् ॥ १६१ ॥ गीतवाद्यपरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात ॥ मधुत्यागी भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ १६२ ॥ लोभच्च सन्ततिं दीर्घां पुत्र पौत्रादिवर्धिनीम् ॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन् सुदर्शाङ्गः प्रजायते ॥१६३॥ कौसुंभ तैल संत्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥ मधूकतैल त्यागाच्च सुसौभाग्यफलं लभेत् ॥ १६४ ॥ कटुतिक्ताम्ल मधुरं कषाय लवणान् रसान् ॥

से मिठाई आदि पदार्थों को छोड़ देता है वह राजा होता है ॥ १६२ ॥ वह पुत्र पौत्र आदि को बढ़ानेवाली दीर्घ आयुषवाले सन्तान को पाता है। और हे राजन्! तैल को छोड़ देने से मनुष्य का सुन्दर शरीर मिलता है ॥१६३॥ और कुसुम (बरै) का तेल त्याग करने से शत्रुनाश हो जाता है और महुआ का तेल छोड़ देने

से सौभाग्य का फल मिलता है ॥ १६४ ॥ और जो कोई मनुष्य कड़ुवा, तीता, मधुर, कसैला, और लवण इन रसों का त्याग करता है वह रूपवान् हो जाता है उसे सदा दुर्गन्धि नहीं आती है ॥ १६५ ॥ और पुष्प आदि के भागों को त्याग करने से मनुष्य स्वर्ग में विद्याधर होता है और योगाभ्यासी होकर ब्रह्मपदवी पाता

वर्जयेत्सच वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयात्सदा ॥ १६५ ॥ पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत् ॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदवीमियात् ॥ १६६ ॥ ताम्बूलवर्जनाद्रोगी सद्यो मुक्तामयो भवेत् ॥ पादाभ्यंगपरित्यागाच्छिरोभ्यंगस्य पार्थिव ॥१६७॥ दीप्तिमान् दीप्तिकिरणो यक्षद्रव्यपतिर्भवेत् ॥ दधिदुग्धपरित्यागी गोलोकं लभते नरः ॥ १६८ ॥ इन्द्रलोकमवाप्नोति

है ॥ १६६ ॥ चातुर्मास्य में तांबूल छोड़ने से रोगी निरोगी हो जाता है। पैर और शिर में तेल लगाना छोड़ने से हे राजा ॥ १६७ ॥ कुबेर के समान कांतिमान् और दीप्यमान हो जाता है। और जो चातुर्मास में दही–दूध को छोड़ता है वह मनुष्य गौलोक में निवास करता है ॥ १६८ ॥ और बड़ए में रींधे हुए भात आदि

पक्कान्न को न खाने से इन्द्रलोक मिलता है। और एक दिन छोड़ कर व्रत करने से ब्रह्मलोक में सुख पाता ॥ १६९ ॥ और जो मनुष्य वर्षा के चार महीने में नख और केश का छेदन नहीं कराता है तो वह मनुष्य ब्रह्मलोक में वास करता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७० ॥ और जो चातुर्मास्य व्रतपूर्वक "नमोनारायण"

स्थालीपाकविवर्जनात् ॥ एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६९ ॥ चतुरो वार्षिकान्
मासान् नख रोमाणि धारयेत् ॥ कल्पस्थायी भवेद्राजन् स नरो नात्रसंशयः ॥ १७० ॥
नमोनारायणायेति जपित्वाऽनंतकं फलम् ॥ विष्णुपादाम्बुजस्पर्शात् कृतकृत्यो भवेन्नरः॥१७१॥
लक्षप्रदक्षिणाभिर्यः सेवते हरिमव्ययम् ॥ हंसयुक्तं विमानेन स याति वैष्णवीं पुरीम्॥१७२॥
त्रिरात्र भोजनत्यागात मोदते दिवि देववत् ॥ परान्नभोजनात् राजन् देवो वै मानुषोभवेत्

इस मन्त्र का जप करता है उसे अनन्त फल मिलता है और नित्य विष्णु के चरण कमल का स्पर्श करता है तो वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ १७१ ॥ और जो मनुष्य अविनाशी विष्णुभगवान् की एक लाख प्रदक्षिणा करता है वह हंसयुक्त विमान में बैठ कर विष्णुलोक को जाता है ॥ १७२ ॥ जो तीन रात्रि तक

भोजन को त्याग देता है वह स्वर्ग में देवताओं के समान स्वर्ग के सुख को भोगता है ॥ और जो मनुष्य दूसरे के अन्न त्याग करता है वह मनुष्य देवता का स्वरूप हो जाता है ॥ १७३ ॥ और जो मनुष्य चातुर्मास में प्राजापत्य व्रत करता है वह कायिक, वाचिक, मानसिक, इन तीन प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है इसमें

॥ १७३ ॥ प्राजापत्यं परेद्योवै चातुर्मास्ये व्रतं नरः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वै स्त्रिविधैर्नात्र संशयः ॥१७४॥ तप्तकृच्छ्राति कृच्छ्राभ्यां यःक्षपेच्छयनं हरेः ॥ स याति परमं स्थानं पुनरावृत्ति वर्जितम् ॥ १७५ ॥ चान्द्रायणेन यो राजन् क्षिपेन्मास चतुष्टयम् ॥ दिव्यदेहो भवेत्सोथ शिवलोकं च गच्छति ॥ १७६ ॥ चातुर्मास्य नरो योवैत्यजेदन्नादिभक्षणम् ॥ स गच्छेद्धरि सायुज्यं न भूयस्तु प्रजायते ॥ १७७ ॥ भिक्षा भोजी नरो यो हि स भवेद्वेदपारगः ॥ पयो-

संशय नहीं है ॥१७४॥ और तप्तकृच्छ्र अतिकृच्छ्र व्रत के द्वारा चातुर्मास को व्यतीत करता है वह आवागमन से मुक्त होकर अक्षय सुख को प्राप्त करता है ॥ १७५ ॥ और हे राजन्! जो चान्द्रायण व्रत करके चातुर्मास को बिताता है वह दिव्य स्वरूप होकर शिवलोक में निवास करता है ॥ १७६ ॥ और जो मनुष्य चातुर्मास में

फलाहार करके काल यापन करता है वह भगवान के सायुज्य पद को पहुंचता है और फिर उसका जन्म किसी लोकमें नहीं होता ॥ १७७ ॥ और जो मनुष्य चातुर्मास में भिक्षा से प्राप्त अन्न को खाकर रहता है वह वेद वेदान्त का जाननेवाला हो जाता है। और हे राजन्! जो मनुष्य दूध को पीकर चातुर्मास का व्रत

व्रतेन यो राजन् क्षिपेत् मासचतुष्टयम् ॥ १७८ ॥ तस्य वंशसमुच्छेदः कदाचिन्नोपपद्यते ॥ पञ्चगव्याशनः पार्थचान्द्रायणफलं लभेत् ॥ १७९ ॥ दिनत्रयं जलत्यागात् नरोगैरभिभूयते ॥ एवमादिव्रतैः पार्थ तुष्टिमाप्नोति केशवः ॥ १८० ॥ दुग्धाब्धिर्वीचि शयने भगवाननन्तो यस्मिन् दिने स्वपिति चाथ विबुध्यते च ॥ तस्मिन्ननन्य मनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति

करता है ॥ १७८ ॥ उसके वंश का विच्छेद (नाश) कभी नहीं होता। और जो पंचगव्यपीकर चार महीना बिताता है हे युधिष्ठिर! उसे चान्द्रायण व्रत का फल मिलता है ॥ १७९ ॥ और जो तीन दिन तक निर्जल रहता जाता है उसके समीप रोग कभी नहीं आते और आये हुए भाग जाते हैं हे युधिष्ठिर! इन व्रतों को करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८० ॥ दूध के समुद्र की लहर में जिस दिन भगवान् शयन करते हैं और जिस

110

मा.

२०६

दिन जागते हैं उस दिन मन लगाकर व्रत करनेवाले मनुष्यों को भगवान प्रसन्न होकर मोक्ष देते हैं ॥१८१॥ विष्णोशयन्येकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ श्रावण कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे भगवान् ! आषाढ़ शुक्लपक्ष में जो देवशयनी

च गतिं गरुडासनोऽसौ ॥ १८१ ॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे कृष्णयुधिष्ठिर संवादे विष्णोः शयन्येकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ श्रावणकृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आषाढ़ शुक्लपक्षे तु यद्देवशयन व्रतम् ॥ तन्मया श्रुतपूर्वं हि पुराणे बहुविस्तरम् ॥१॥ श्रावणे कृष्णपक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत् ॥ एतत्कथय गोविन्द वासुदेव नमोस्तुते ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजन्

का व्रत होता है और पुराण में कहा है वह तो मैंने पहिले भी विस्तार पूर्वक सुना हूँ ॥ १ ॥ हे गोविन्द ! वासुदेव ! श्रावण कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है उसका क्या नाम है सो कहिये आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी बोले । हे राजन् ! मैं उस पापको नाश करनेवाले व्रतको तुमसे कहूँगा कि जिसे नारदजी

मा. टी.

१०४

ने पूछा था और ब्रह्माजीने कहा था ॥ ३ ॥ हे वत्स ! मैं उसी पापनाशक उत्तम व्रतको तुमसे कहता हूँ ॥ नारदजी बोले ॥ हे भगवान् ! हे कमलासन ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि ॥ ४ ॥ हे स्वामी ! श्रावण कृष्ण एकादशी का क्या नाम है । उसका मुख्य देवता कौन है और उसकी क्या विधि और क्या पुण्य है सो

प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ नारदाय पुरा राजन् पृच्छते च पितामहः ॥ ३ ॥ परं यदुक्तवांस्तात तदहं ते वदामि च ॥ नारदउवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहं कमलासन ॥ ४ ॥ श्रावणस्यासिते पक्षे किं नामैकादशी भवेत् ॥ को देवः कोविधिस्तस्याः किं पुण्यं कथय प्रभो ॥ ५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया ॥ ६ ॥ श्रावणैकादशी कृष्णा कामिकेति च

कहिये ॥५॥ नारदजीके वचन को सुनकर ब्रह्माजी बोले ॥ ब्रह्माजी कहने लगे ॥ हे नारद ! सुनो मैं संसार की हितकी कामनासे तुमसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ श्रावण कृष्ण एकादशी का नाम कामिका है उसके सुनने मात्र से वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥७॥ उस दिन जो कोई शंख चक्र गदा धारण किये लक्ष्मी सहित भगवान्

का पूजन करता है कि जिनका नाम हरि, विष्णु, माधव, और मधु सूदन भी है ॥ ८ ॥ और जो कोई उनका ध्यान यज्ञ और पूजन करता है उसका फल सुनो कि गंगा काशी, नैमिपारण्य, पुष्कर आदि तीर्थों में स्नान करने से भी ॥ ९ ॥ वह फल नहीं मिलता कि जो फल विष्णु भगवान् के पूजन से मिलता है। केदारनाथ में

नामतः ॥ तस्याः श्रवण मात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥७॥ तस्यां यः पूजयेद्देवं शंख चक्र गदाधरम् ॥ श्रीधराख्यं हरिं विष्णुं माधवं मधुसूदनम् ॥८॥ यजते ध्यायते यो वै तस्य पुण्य-फलं शृणु ॥ न गंगायां न काश्यां वै नैमिषे न च पुष्करे ॥ ९ ॥ तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं विष्णुपूजनात् ॥ केदारे च कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ १० ॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात ॥ गोदावर्यां गुरौ सिंहे व्यतीपाते च गण्डके ॥ ११ ॥ न तत्फलम-

और सूर्य ग्रहण के समय स्नान दान करने से ॥ १० ॥ भी वह फल नहीं मिलता कि जो श्रीकृष्णजी के पूजन से मिलता है। और जब सिंहका बृहस्पति होता है तब गोदावरी में और व्यतीतपात में गंडकी नदी में स्नान करने से ॥ ११ ॥ भी वह फल नहीं मिलता जो एकादशी के दिन श्रीकृष्ण जी के पूजन से मिलता

है । समुद्र और वन से युक्त पृथ्वी का जो दान करता है ॥ १२ ॥ उसका और कामिका एकादशी का व्रत करता है इन दोनों का बराबर फल मिलता है । और जो मनुष्य सामग्री समेत दूध देनेवाली गौ के दान से फलको पाता है ॥ १३ ॥ वही फल कामिका एकादशीका व्रत करनेवाला पाता है और जो मनुष्य श्रावण

वाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ॥ स सागर वनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम् ॥ १२ ॥ कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौ स्मृतौ ॥ प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात् सोपस्करां नरः ॥ १३ ॥ तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रत कारकः ॥ श्रावणे श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः ॥ १४ ॥ तेनैव पूजिता देवा गन्धर्वोरगपन्नगाः ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कामिकादिवसे हरिः ॥१५॥ पूजनीयो यथा शक्त्या मनुष्यैः पापभीरुभिः ॥ संसारार्णव मग्ना ये

में श्रीधर भगवान् का पूजन करता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य मानो सब देवता गंधर्व और सर्प नाग आदि सबको प्रसन्न करलिया इस लिये बड़े साधन से कामिका एकादशी के दिन ॥ १५ ॥ पाप से भय माननेवाले मनुष्यों को यथाशक्ति भगवान्का पूजन करना चाहिये । जो संसार रूपी समुद्र में डूब रहे हैं और पाप रूपी

कीचड़ में फँसे हुए हैं ॥ १६ ॥ उनके कल्याण के लिए कामिका एकादशी का व्रत सबसे श्रेष्ठ है। इससे बढ़कर कोई पवित्र और पापको नाश करनेवाली नहीं है ॥१७॥ हे नारद! ऐसाही जानना क्योंकि पूर्वकाल में श्री विष्णु भगवान ने इसे इस प्रकार आपही कहा है ब्रह्मविद्या जानने वाले मनुष्यों को जो फल मिलता

पापपंक समाकुलाः ॥१६॥ तेषामुद्धरणार्थाय कामिका व्रतमुत्तमम् ॥ नातः परतरा काचित् पवित्रा पापहारिणी ॥ १७ ॥ एवं नारद जानीहि स्वयमाह पुरा हरिः ॥ अध्यात्मविद्या-निरतैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥ १८ ॥ ततो बहुतरं विद्धि कामिका व्रत सेवनात् ॥ रात्रौ जाग-रणं कुर्यात् कामिका व्रतकृन्नरः ॥ १९ ॥ न पश्यति यमं रौद्रं नैव पश्यति दुर्गतिम् ॥ न गच्छति कुयोनिं च कामिका व्रत सेवनात् ॥ २० ॥ कामिकाया व्रतेनैव कैवल्यं योगिनो

है ॥ १८ ॥ उससे बहुत बढ़कर कामिका के व्रत करने से मिला जानना चाहिये। कामिका व्रत करनेवाला मनुष्य रात्रि में जागरण करै ॥ १९ ॥ फिर वह मनुष्य न तो भयंकर यम दूतों को देखता है और न तो अपने लिये नरक को देखता है और न तो वह इस कामिका एकादशी के व्रत करने के प्रभाव से कुयोनि में

जन्म ले सकता है ॥ २० ॥ कामिका के व्रत करने से योगियों को कैवल्य पद प्राप्त होता है । इसलिए सब प्रकार से इन्द्रियों को वश में रखकर इसका व्रत करना चाहिये ॥ २१ ॥ जो मनुष्य तुलसी दलसे भगवान् का पूजन करता है वह पापों से ऐसा लिप्त नहीं होता जैसे जल से कमल लिप्त नहीं रहता ॥ २२ ॥ एकभार

गताः ॥ तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कर्तव्यो नियतात्मभिः ॥ २१ ॥ तुलसी प्रभवैः पत्रैर्योनरः पूजयेद्धरिम् । न वै स लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ २२ ॥ सुवर्णभारमेकं तु रजतं च चतुर्गुणम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति तुलसीदल पूजनात् ॥ २३ ॥ रत्नमौक्तिक वैदूर्य प्रवालादिभिरर्चितः ॥ न तुष्यति तथा विष्णु स्तुलसी पूजनाद्यथा ॥ २४ ॥ तुलसी मञ्जरीभिस्तु पूजितो येन केशवः ॥ आजन्म कृत पापस्य तेन संमार्जिता लिपिः

113

सुवर्ण और उससे चौगुनी चाँदी इनके आभूषण दान करने से जो फल मिलता है वही फल तुलसी दल भगवान को चढ़ाने से मिलता है ॥ २३ ॥ रत्न, मोती, वैदूर्य मणि, मूँगा आदि से पूजन करने से भगवान ऐसे प्रसन्न नहीं होते कि जैसे तुलसी दल को चढ़ाने से प्रसन्न होते हैं ॥ २४ ॥ जिसने तुलसी की मंजरी से

भगवान का पूजन किया उसने अपने जन्मभर किये हुए पापकी संख्या को मिटा दिया है ॥ २५ ॥ जो दर्शन से पापों को नाश कर देती हैं, स्पर्श करनेसे शरीर को पवित्र कर देती हैं, प्रणाम करने से संपूर्ण रोगों से मुक्त करदेती हैं, उनको जल देने से यम के भय को दूर कर देती हैं और वृक्ष लगाने से श्रीकृष्ण भगवान

॥ २५ ॥ या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसिनी सिक्तान्तकत्रासिनी ॥ प्रत्यासत्ति विधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति फलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥२६॥ दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रौ हरेर्दिने ॥ तस्य पुण्यस्य संख्यानं चित्र गुप्तोपि वेत्तिन ॥ २७ ॥ कृष्णाग्रे दीपको यस्य ज्वलेदेकादशीदिने पितरस्तस्य तृप्यन्ति अमृतेन दिविस्थिताः ॥ २८ ॥ घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा

के निकट वास कराती हैं और भगवान के चरणों में चढ़ाने से मुक्ति देती हैं ऐसी तुलसीजी को नमस्कार है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य एकादशी के दिन रात को दीपक चढ़ाता है उसके पुण्य की संख्या को चित्र गुप्त भी नहीं कह सकते ॥ २७ ॥ जिस मनुष्य का दीपक एकादशी के दिन भगवान के सामने जलता है उसके पितर

स्वर्ग में बैठे अमृत पान करते हैं ॥ २८ ॥ घीका अथवा तिल के तेल का दीपक जलाने से मनुष्य सौ करोड़ दीपकों के साथ सूर्य लोक में निवास करता है ॥ २९ ॥ यह मैंने तुमसे कामिका एकादशी की महिमा कही इसलिये मनुष्यों को इसको करना चाहिये इसका व्रत सब प्रकारके पापों को नष्ट करनेवाला है ॥ ३० ॥

पुनः ॥ प्रयाति सूर्य लोकेऽसौ दीपकोटिशतैर्वृतः ॥ २९ ॥ अयं तवाग्रे कथितः कामिका महिमा मया ॥ अतोनरैः प्रकर्तव्या सर्वपातकहारिणी ॥ ३० ॥ ब्रह्महत्यापहरणो भ्रूणहत्या-बिनाशिनी ॥ त्रिदिवस्थानदात्री च महापुण्य फलप्रदा ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा महात्म्यमेतस्यानरः श्रद्धासमन्वितः ॥ विष्णु लोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥

इस एकादशी की महिमा ब्रह्महत्या और गर्भ हत्या को भी नष्ट करनेवाली तथा महापुण्य और स्वर्ग को देनेवाली है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इसका माहात्म्य कहता और सुनता है उसे सुनकर सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है ॥ ३२ ॥

इति श्रावण कृष्णैकादशी माहात्म्यं सम्पूर्णम् ।

ए. मा. ११३

अथ श्रावणशुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे मधुसूदन ! श्रावण शुक्ल पक्ष की एकादशी का क्या नाम है सो मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले ॥ हे राजन् ! मैं बड़े बड़े पापों को नाश करनेवाली कथा कहता हूँ तुम सावधान होकर सुनो कि जिसके सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है ॥ २ ॥ पहिले

अथ श्रावणशुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ श्रावणस्य सिते पक्षे किं नामैकादशी भवेत् ॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां परम् ॥ यस्याः श्रवण मात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥ २ ॥ द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मती पुरे ॥ राजा महीजिदाख्यातो राज्यं पालयति स्वकम् ॥ ३ ॥ पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम् ॥ अपुत्रस्य सुखं नास्ति

द्वापर युग के आदि में माहिष्मती पुर में महीजित् नाम राजा अपना राज्य करता था ॥ ३ ॥ वह पुत्र हीन था इसलिये राज्य का सुख अच्छा नहीं लगता था क्योंकि पुत्र हीन को इस लोक और परलोक में सुख नहीं होता ॥ ४ ॥ इस राजा को पुत्र के लिये यत्न करते करते बहुत सा समय बीत गया, परन्तु मनुष्यों को

सब सुख देनेवाला ऐसा पुत्र राजा को नहीं प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ राजा अपनी वृद्धावस्था को देख चिन्ता करने लगा और सभा में प्रजाओं के बीच यह वचन बोला ॥ ६ ॥ हे प्रजाओं ! इस जन्म में तो मैंने कोई पाप नहीं किया है और न मैंने किसी ब्राह्मण और न किसी का धन अन्याय से लेकर खजाने में रख छोड़ा है ॥ ७ ॥

इह लोके परत्र च ॥ ४ ॥ यततोऽस्य सुतप्राप्तौ कालो बहुतरो गतः ॥ नप्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो नृणाम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वात्मानं प्रवयसं राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥ सदोगतः प्रजामध्ये इदं वचनमब्रवीत ॥६॥ इह जन्मनि भो लोका न मयापातकं कृतम् ॥ अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोशे मयानहि ॥७॥ ब्रह्मस्वं देवद्रविणां न गृहीतं मया क्वचित् ॥ न्यासापहारो न कृतः परस्य बहुपापदः ॥ ८ ॥ शिष्टाः सुपूजिता लोका धर्मेण विजिता मही ॥ दुष्टेषु

और न तो मैंने कभी ब्राह्मण और देवता का धन लिया है और न तो मैंने अधिक पापको देनेवाली किसी की धरोहर को हड़प लिया है ॥ ८ ॥ मैंने तो धर्म से पृथ्वी को अपने वश में किया है और प्रजाओं का पालन पुत्र के समान किया है और जो दुष्ट हैं उनको दण्ड दिया है ॥ ९ ॥ बड़े लोगों को द्वेष करते हुए भी

मैंने उनका सत्कार किया है हे श्रेष्ठब्राह्मणों ! इस प्रकार धर्म मार्ग में चलते हुए मेरे गृह में पुत्र का सुख नहीं इसका विचार करिये ब्राह्मण इस बात को सुनकर पुरोहित और प्रजा सहित ॥ ११ ॥ राजा के सहित सलाह करके बड़े सघन वन को गये और इधर उधर ऋषियों के रहने के आश्रमों को देखने लगे ॥२२॥ फिर

पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमेष्वपि ॥९॥ शिष्टाः सुपूजिताः लोकाः द्वेष्याश्चापि महाजनाः ॥ इत्येवं व्रजतो मार्गे धर्मयुक्ते द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥ कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विचार्यं-ताम् ॥ इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा सप्रजाः सपुरोहिताः ॥११॥ मन्त्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम् ॥ इतस्ततश्च पश्यन्तश्चाश्रमानृषिसेवितान् ॥१२॥ नृपतेर्हितमिच्छन्तौ ददृशुर्मु-निसत्तम ॥ तप्यमानं तपोघोरं चिदानन्दं निरामयम् ॥ निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सना-

राजा के हितकी कामना से उन प्रजाओं ने श्रेष्ठ मुनि को कठिन तपस्या करते हुए देखा कि जो सच्चिदानन्द आनन्दकन्द, अनामय, निराहारी, जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, सनातन ॥२३॥ धर्मतत्त्व को जाननेवाला सब शास्त्र में कुशल दीर्घायु महात्मा और ब्रह्म के समान थे, और उनका नाम लोमश ऋषि था ॥ १४ ॥ एक कल्पवती

ने पर उनका एक रोम गिर जाता है इसलिये उनका नाम लोमश है वे महामुनि तीनों काल की बात को जाननेवाले थे ॥ १५ ॥ उनको देखकर सब प्रसन्न होगये और श्रेष्ठ मुनि के पास गये और न्याय तथा योग्यता पूर्वक उन सबने उन ऋषि को नमस्कार किया ॥ १६ ॥ और विनय से नम्र होकर सब आपस

तनम् ॥ १३ ॥ लोमशं धर्मतत्वज्ञं सर्वशास्त्र विशारदम् ॥ दीर्घायुषं महात्मानंमनेकब्रह्म सम्मितम् ॥ १४ ॥ कल्पे गते यस्यैकस्मिन्नेकलोम विशीर्यते ॥ अतो लोमशनामानं त्रिकालज्ञं महामुनिम् ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे आजग्मुस्तस्य सन्निधिम् ॥ यथान्यायं यथार्हते नमश्चक्रुर्यथोदितम् ॥ १६ ॥ विनयावनताः सर्वे ऊचुश्चैव परस्परम् ॥ अस्मद्भाग्यवशादेव प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः ॥ १७ ॥ तां स्तथा प्रणतान्

में कहने लगे कि हम सबों के भाग्य से ही इन श्रेष्ठ मुनि का दर्शन हुआ है ॥ १७ ॥ सब लोगों को प्रणाम
२० करते देख श्रेष्ठ मुनि लोमशजी बोले ॥ लोमश मुनि पूछने लगे कि तुम लोग यहाँ क्यों आये हो इसका कारण कहो ॥ १८ ॥ और तुम सबों ने मेरा दर्शन पाते ही आनन्द की ध्वनि से क्यों मेरी स्तुति करते हो ॥

अब जो कुछ तुम्हारा हित होगा उसे मैं अवश्य करूँगा ॥ १९ ॥ हमारे ऐसेका जन्म केवल परोपकार के लियेही है इसमें संशय नहीं है। प्रजाओं ने कहा ॥ हे भगवन्! सुनिये—हमलोग अपने आने का कारण कहते हैं ॥ २० ॥ और अपने सन्देह को दूर करने के लिये आपके पास आये हैं ब्रह्मा से परे और आपसे

११५ दृष्ट्वा ह्युवाच मुनिसत्तमः ॥ लोमश उवाच ॥ किमर्थ मिह संप्राप्ताः कथयध्वंच कारणम् ॥ १८ ॥ मद्दर्शनाह्लाद गिराः भवन्तः स्तुवते किमु ॥ असंशयं करिष्यामि भवेतां यद्धितं भवेत् ॥१९॥ परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः ॥ जना उचुः ॥ श्रूयतामभिधास्यामो वयमागमन कारणम् ॥ २० ॥ संशयच्छेदनार्थाय तव सन्निधिमागताः ॥ पद्मयोनेः पर तरस्त्वत्तः श्रेष्ठ न विद्यते ॥ २१ ॥ अतःकार्यवशात्प्राप्ताःसमीपं भवतो वयम् ॥ मही

श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥ २१ ॥ इसी कारण एक कार्य के लिये हम लोग आपके पास यह आये हैं कि महिजित नाम राजा हैं उनको इस समय पुत्र नहीं है ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मदेव! हम सब महीजित राजा की प्रजा हैं और उसने हमें पुत्र के समान पाला है उसके पुत्र हीन होने से हम भी उसके दुःख से दुःखी हैं ॥ २३ ॥ और ११५

नैष्ठि की बुद्धि करके हम सब तपस्या करने के लिये यहाँ आये हैं हे द्विजोत्तम ! उसीके भाग्य से हमने आपके दर्शन किया ॥ २४ ॥ बड़ों के दर्शन से ही मनुष्यों की कामना सिद्ध हो जाती है । हे मुनि राज ! जिस प्रकार राजा को पुत्र की प्राप्ति हो वैसा ही उपदेश दीजिये ॥ २५ ॥ उन प्रजाओं के वचन को सुनकर मुनि

जिन्नामराजाऽसौ पुत्रहीनोस्ति सांप्रतम् ॥ २२ ॥ वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन् पुत्रवत्तेन पालिताः तं पुत्र रहितं दृष्ट्वा तस्य दुःखेन दुःखिता ॥ २३ ॥ तपः कर्तुमिहायाता मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम् ॥ तस्य भाग्यवशाद्दृष्टास्त्वमस्माभिर्द्विजोत्तम ॥ २४ ॥ महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ उपदेशं वद मुने राज्ञः पुत्रो यथा भवेत् ॥२५॥इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यान मास्थितः ॥ प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्मपुरातनम् ॥२६॥ लोमश उवाच

कुछ देर तक ध्यान में मग्न हो गए और फिर उस राजा के पूर्व जन्म को अवस्था जानकर बोले ॥ २६ ॥ लोमश ऋषि कहने लगे ॥ कि पूर्व जन्म में यह राजा दरिद्री बनियाँ और बड़ा घाती था, यह एक गाँव से दूसरे गाँव में व्यापार करता फिरता था ॥ २७ ॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन जब मध्यान्ह

कें सूर्य तप रहे थे उसी समय ग्राम की सीमा (सिवान) पर ॥ २८ ॥ एक मनोहर जलाशय को देख उस वैश्य का मन जल पीने को हुआ । वहीं पर हालकी व्याई बछड़े सहित एक गौ भी आई ॥ २९ ॥ वह प्यास की मारी घाम से व्याकुल उस जलाशय के जल को पीने लगी ॥ इस वैश्य ने जल पीती हुई उस गौको हटाकर

पूर्वं जन्मनि वैश्योऽयं धनहीनो नृशंसकृत ॥ वाणिज्य कर्मनिरतो ग्रामाद् ग्रामान्तरं भ्रमन् ॥ २७ ॥ ज्येष्ठमासि सिते पक्षे द्वादशी दिवसे तथा ॥ मध्याह्ने द्युमणौ प्राप्ते ग्राम सीम्नि तृषाकुलः ॥ २८ ॥ रम्यं जलाशयं दृष्ट्वा जलपाने मनोदधौ ॥ सद्यः सूता सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता ॥ २९ ॥ तृषातुरा निदाघार्ता तस्य चापः पपौ तु सा ॥ पिबन्ती वारयित्वा तामसौ तोयं वयं पपौ ॥ ३० ॥ कर्मणस्तस्य पाकेन पुत्रहीनोनृपोऽभवत् ॥ पूर्वजन्म कृतात्पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ३१ ॥ जनाऊचुः ॥ पुण्या

आप जल पी लिया ॥ ३० ॥ उसी कर्म के फल से यह राजा पुत्रहीन हुआ है और पूर्व जन्म में इसने जो पुण्य किया है उससे यह अकण्टक राज्य पाया है ॥ ३१ ॥ लोगों ने कहा ॥ हे मुनीश्वर ! पुण्य के बल से

पापों का नाश हो जाता है ऐसा पुराणों में सुना जाता है सो आप किसी ऐसे पुण्य का उपदेश दीजिये जिससे राजा के संचित पाप नष्ट हो जावें ॥ ३२ ॥ और आप के प्रसाद से उसको पुत्र हो । यह सुन लोमश

त्पाप क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने ॥ पुण्योपदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ॥ ३२ ॥ यथा भवत्प्रसादेन पुत्रोऽस्य भविता तथा ॥ लोमश उवाच ॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता ॥३३॥ एकादशी तिथिश्चास्ति कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः ॥ यथाविधि यथान्यायं यथोक्तं जागरान्वितम् ॥३४॥ तस्याः पुण्यं सुविमलं देयं नृपतये जनाः ॥ एवं कृते सुनियतं राज्ञः पुत्रो भविष्यति ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा ते लोमश वच स्तं प्रणम्य द्विजोत्तमम् ॥ प्रजग्मुः स्वगृहान् सर्वे हर्षोत्फुल्लविलोचनः ॥ ३६ ॥ श्रावणं तु समासाद्य स्मृत्वा लोमश

ऋषि बोले । कि श्रावण के शुक्ल पक्ष की पुत्रदा नाम एकादशी प्रसिद्ध है ॥ ३३ ॥ उसी का व्रत तुम सब विधि पूर्वक जैसा शास्त्रों में लिखा है वैसा जागरण सहित करो ॥ ३४ ॥ और व्रत को समाप्त करके उस व्रत का निर्मल पुण्य उस राजा को देदो ऐसा करने से राजा को अवश्य पुत्र प्राप्त होवेगा ॥ ३५ ॥ वे लोमश

118

ऋषि का वचन सुनकर और मुनीश्वर को विधि पूर्वक प्रणाम कर अपने नेत्रों को प्रसन्न किये अपने अपने घर को गए ॥ ३६ ॥ जब श्रावण का महीना आया तब लोमश ऋषिका कहा वचन स्मरण करके सब लोगों

भाषितम् ॥ राज्ञाः सह व्रतं चक्रुः सर्वे श्रद्धासमन्विताः ॥ द्वादशी दिवसे पुण्यं ददुर्नृपतये जनाः ॥ ३७ ॥ दत्ते पुण्ये तु सा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ॥ प्राप्ते प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्र मूर्जितम् ॥ ३८ ॥ एवमेषा नृपश्रेष्ठ पुत्रदानाम विश्रुता ॥ कर्तव्या सुखमिच्छद्भि रिहलोके परत्र च ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिं लभेत् ॥ ४० ॥

इतिश्रीभविष्योत्तर पुराणे श्रावण शुक्लैकादशी माहात्म्यं समाप्तम् ॥

ने राजा के सहित श्रद्धा पूर्वक पुत्रदा एकादशी का व्रत किया और द्वादशी के दिन सब लोगों ने अपना पुण्य राजा को दिया ॥ ३७ ॥ उस पुण्य को देते ही राजा की रानी को सुन्दर गर्भ रह गया और जब प्रसवकाल आया तो उस रानी से तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥ सो हे नृप श्रेष्ठ ! जो इस एकादशी के माहात्म्य

को सुनेगा वह सब पापों से छूट जायगा और यहाँ पुत्र का सुख पाकर परलोक में स्वर्ग के सुख को भोगकर परम गति को पावेगा ॥ ४० ॥

इति श्रावण शुक्लैकादशी माहात्म्यं समाप्तम् ।

अथ भाद्रपद कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणुष्वैकमना राजन् कथयिष्यामि विस्तरात् ॥ अजेति नाम्ना विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ २ ॥ पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतं तस्याः करोति यः ॥ पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि ॥ ३ ॥ नातः परतरा राजन् लोकद्वयहितावहा ॥ सत्यमुक्त मया ह्येतन्नासत्यं भाषितं

अथ भाद्र पद कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे जनार्दन ! भाद्र पद के कृष्ण पक्ष की एकादशी का क्या नाम है उसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजा ! तुम एकाग्र मन से सुनो मैं उसे विस्तार पूर्वक कहूँगा । उसका नाम अजा प्रसिद्ध है और सब पापों को नाश करने वाली है ॥ २ ॥ जो

कोई भगवान का पूजन करके उसका व्रत कहता है तो व्रत को सुनने से ही उसके पाप नाश हो जाते हैं ॥ ३॥ हे राजा ! दोनों लोकों में इससे बढ़कर कोई हित करनेवाली नहीं है मैंने इसमें सत्य कहा है झूठ नहीं है॥४॥ पहिले समय में एक हरिश्चन्द्र नाम चक्रवर्ती और सत्यप्रतिज्ञ सब पृथ्वी का राजा हो गया है ॥५॥ किसी कर्म-

मम ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ॥ चक्रवर्ती सत्यसन्धः समस्तायाः भुवः पतिः ॥ ५ ॥ कस्यापि कर्मणो योगाद्राज्यभ्रष्टो बभूव सः ॥ विक्रीय वनितां पुत्रं स चक्रात्म विक्रयम् ॥ ६ ॥ पुक्कसस्य च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् ॥ सत्यमालंब्य राजेन्द्र मृतचैलापहारकः ॥ ७ ॥ सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलितस्तथा ॥ एवं गतस्य नृपतेर्बहवो वत्सरा गताः ॥ ८ ॥ इति चिन्तयतस्तस्यमग्नस्य वृजिनार्णवे ॥

योग से उसका राज्य भ्रष्ट होगया था सो उसने अपनी रानी और पुत्र को वेंचकर अपने कोभी बेंचडाला ॥६॥ हे राजेन्द्र वह पुण्यात्मा राजा चाण्डाल की सेवा करने लगा और मुर्दों के वस्त्र लिया करता था तौ भी सत्य का सहारा न छोड़ा ॥ ७ ॥ जब उस श्रेष्ठ राजा को सत्य पालन करते करते बहुत दिन बीत गये ॥ ८ ॥ तो

राजा चिन्ता करता करता बड़ा दुःखी हुआ कि मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ और कसे मेरा उद्धार होगा ॥ ९ ॥ यह चिन्ता करते हुए पापरूपी समुद्र में डूबते हुए उस राजा को दुःखी जानकर उसके पास गौतम मुनीश्वर आये ॥१०॥ ब्रह्माजी ने पराये उपकार करने के लिये ब्राह्मण को बनाया है। उस राजा ने मुनि को देखकर

आज़गाम मुनिः कश्चिज् ज्ञात्वा राजानमातुरम् ॥ १० ॥ परोपकरणार्थाय निर्मितो ब्रह्मणाद्विजः ॥ सतं दृष्ट्वा द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः ॥११॥ कृताञ्जलि पुटो भूत्वा गौतम स्याग्रतःस्थितः ॥ कथयामास वृत्तान्तमात्मनो दुःखसंयुतम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा नृपति वाक्यानि गौतमो विस्मया न्वितः ॥ उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य मुनिर्ददौ ॥ १३ ॥ मासि भाद्रपदे राजन् कृष्णपक्षे तु शोभना ॥ एकादशी समाख्याता अजानाम्न्यति पुण्यदा

प्रणाम किया ॥११॥ और हाथ जोड़कर गौतम मुनि के सामने खड़ा होगया और अपने दुःख का वृतान्त उन मुनि से कहे सुनाया ॥ १२ ॥ राजा के वचन को सुनकर गौतम जी को बड़ा दुःख हुआ फिर गौतम मुनि ने राजा को इस व्रत का उपदेश दिया ॥१३॥ हे राजा ! भाद्र पद मास के कृष्ण पक्ष में अजा नाम से विख्यात

120

एकादशी वह बड़े पुण्य को देनेवाली है ॥१४॥ हे राजा ! तुम उसका व्रत करो तुमारा पाप नाश हो जायगा और तुमारे भाग्य से वह एकादशी आज से सातवें दिन पड़ेगी ॥ १५ ॥ और एकादशी का व्रत करके रात्रि में जागरण करना इस प्रकार उस एकादशी का व्रत करने से सब पाप क्षय हो जाता है ॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ तस्याः कुरु व्रतं राजन् पापनाशो भविष्यति ॥ तव भाग्यवशा देवा सप्तमेह्नि समागता ॥ १५ ॥ उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु ॥ एवं तस्या व्रते चीर्णे सर्वपाप क्षयो भवेत् ॥ १६ ॥ तस्य पुण्य प्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम ॥ इत्येवं कथयित्वा तु मुनि रन्तरधीयत ॥ १७ ॥ मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम् । कृते तस्मिन् व्रते राज्ञः पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ॥ १८ ॥ श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च ॥ यद्दुःखं बहु-

और हे नृपोत्तम ! मैं तुम्हारे पुण्य के प्रभाव से यहाँ आया हूँ यह कह कर मुनि अन्तर्ध्यान होगये । राजा ने मुनि के वचन को सुन कर इस उत्तम व्रत को किया और इस व्रत के प्रभाव से राजा का पाप क्षण भर में नष्ट होगया ॥ १८ ॥ हे राजा शार्दूल ! इस व्रत का पुण्य सुनो कि जो बहुत वर्षों तक

भोगने को था वह क्षण भर में नष्ट होगया ॥ १९ ॥ और इस व्रत के प्रभाव से राजा दुःखसागर के पार हो गया और उस राजा का स्त्री से भेंट हुआ और पुत्र को जीता पाया ॥ २० ॥ देवगण प्रसन्न होकर

भिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयो भवेत् ॥ १९ ॥ निस्तीर्णदुःखो राजासीद्व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥
पत्न्यासह समायोगं पुत्रजीवनमापसः ॥ २० ॥ देवदुन्दुभयोर्नेदुः पुष्पवर्षमभूद्दिवः ॥
एकादश्याः प्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥२१॥ स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपुरः सपरिच्छदः ॥
ईदृग्विधं व्रतं राजन्ये कुर्वन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति
ते ध्रुवम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं भवेत् ॥ २३ ॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे भाद्रपद कृष्णायामजानामैकादश्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥

दुन्दुभी बजाये और स्वर्ग से फूलों की वर्षा हुई और एकादशी के प्रभाव से उस राजा ने अकण्टक राज्य भी पाया ॥ २१ ॥ फिर राजा हरिश्चन्द्र ने नगर वासी और कुटुम्ब के सहित स्वर्ग के सुख को प्राप्त किया। हे राजा युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण श्रेष्ठ इस प्रकार व्रत करते हैं ॥ २२ ॥ वे सब पापों से छूट कर स्वर्ग को जाते

121

हैं यह निश्चय है और हे राजा ! जो पुरुष इस इतिहास को पढ़ता और सुनता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ २३ ॥

इति भाद्रपद कृष्णैकादश्या अजानाम माहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथ भाद्रपद शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नभस्य सित पक्षेतु किन्नामैकादशी भवेत् ॥ को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं च वदस्व भोः ॥१॥ श्रीकृष्णउवाच॥ कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्ष प्रदायिनी ॥ वामनैकादशी राजन् सर्वपापहरां पराम् ॥ २ ॥ इमामेव जयन्त्याख्यां प्रहुरेकादशीं नृप ॥ यस्याः श्रवण मात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३ ॥ पापिनां पापशमनं जयन्ती व्रतमुत्तमम् ॥ नातः परतरा राजन्न वै मोक्षप्रदायिनी ॥ ४ ॥

अथ भाद्र पद शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर ने पूछा ॥ हे भगवन् ! भाद्रपद शुक्लपक्ष को एकादशी का क्या नाम है और कौन से उसके देवता हैं और उसके करने को क्या विधि है और उसके पुण्य का क्या फल है सो सब कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजन् ! यह बड़ी पवित्र स्वर्ग मोक्ष को देनेवाली है

और इसका नाम वामन एकादशी है यह सब पापों को नाश करनेवाली है ॥ २ ॥ हे राजन् ! इसी एकादशी को वामन जयन्ती कहते हैं कि जिसके सुनने मात्र से सब पाप नाश हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जयन्ती का उत्तमव्रत अनेक प्रकार के पापों को नाश करनेवाला है हे राजा ! इससे बढ़कर कोई मोक्ष की देनेवाली नहीं हैं ॥४॥ हें

एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्या गतिमिच्छता ॥ वैष्णवैर्मम भक्तैस्तु मनुजैर्मत्परायणैः ॥ ५ ॥ नभस्ये वामनो यस्तु पूजितस्तैर्जगत्त्रयम् ॥ पूजितं नात्र सन्देहः ते यान्ति हरिसन्निधिम् ॥६॥ वामनः पूजितो येन कमलैः कमलेक्षणः ॥ नभस्य सितपक्षे तु जयन्त्येकादशी दिने ॥ ७ ॥ तेनार्चितं जगत्सर्वं त्रयो देवाः सनातनाः ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्यो हरि-वासरः ॥ ८ ॥ अस्मिन् कृते न कर्तव्यं किंचिदस्तिजगत्त्रये ॥ अस्यां प्रसुप्तो भगवानत्य-

युधिष्ठिर ! इसलिये मोक्ष की इच्छा करनेवाले को इस व्रतको अवश्यही करना चाहिये और वैष्णव तथा मेरे भक्तों
२१ को क्या कहना है वे तो अवश्य करें ॥५॥ जिसने भाद्रपद की एकादशी के दिन वामनजी की पूजा कर लिया वह तीनों लोक को पूज लिया इसमें सन्देह नहीं है और इस व्रत को करनेवाले भगवानके पार्षद हो उनके सभी

समीप में वास करते हैं ॥ ६ ॥ और जिसने भाद्रपद शुक्ल पक्षमें जयन्ती एकादशी के दिन कमलनयन वामन जी का कमलों से पूजन किया ॥ ७ ॥ उसने सब जगत का और सनातन ब्रह्मा विष्णु और शिव का पूजन किया हे राजा ! इस कारण एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ ८ ॥ इनके करने से फिर तीनों लोक

गपरिवर्तनम् ॥ ६ ॥ तस्मादेनां जनाः सर्वे बदन्ति परिवर्तिनीम् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संशयोऽस्ति महान् मह्यं श्रूयतां त्वं जनार्दन ॥ १० ॥ कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं यास्यङ्ग-वर्तनम् ॥ किमर्थं देव देवेश बलिर्बद्धस्त्वयाऽसुरः ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि संशयं हर मे प्रभो ॥११॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथां पापहरां पराम् ॥ बलिर्वैदानवः पूर्वमासी त्त्रेता युगे नृप ॥ १२ ॥ अपूजयच्च मां नित्यं मद्भक्तो मत्परायणः ॥ जपैस्तु विविधैः सूक्तैर्य-

में कुछ भी दान धर्म तीर्थ आदि करना बाकी नहीं रहता । इस दिन भगवान् शयन किये हुए करवट लेते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये इस एकादशी का नाम परिवर्तिनी कहते हैं । युधिष्ठिर बोले ॥ हे जनार्दन ! एक मुझे बड़ा-भारी सन्देह है सो सुनिये ॥ १० ॥ हे भगवान् ! आप कैसे शयन करते हैं और किस प्रकार करवट लेते हैं

और हे देवताओं के स्वामी ! बलिनाम दैत्य को क्यों बाँधा था । हे स्वामी ! इसका विस्तार पूर्वक कहकर मेरा सन्देह दूर करो ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ हे राजसिंह ! पाप को भस्म करनेवाली कथाको सुनो । हे राजा! पहिले त्रेतायुग में बलि नाम का दानव हुआ । वह मेरी नित्य पूजा किया करता और मेरा भक्त था और

जते मां स नित्यशः ॥ १३ ॥ द्विजानां पूजको नित्यं यज्ञकर्मकृताशयाः ॥ परं त्विन्द्र-कृत द्वेषो देवलोकमजीजयत् ॥ १४ ॥ मद्दत्तमहिलोकश्च जितस्तेन महात्मना ॥ विलो-क्य च ततः सर्वे देवाः संहत्य मन्त्रयन् ॥१५॥ सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यं देवं विज्ञापितुं प्रभुम् ॥ ततश्च देव ऋषिभिः साकमिन्द्रो गतः प्रभुम् ॥ १६ ॥ शिरसा ह्यवनीं गत्वा स्तुत इन्द्रेण सूक्तिभिः ॥ गुरुणा दैवतैः सार्द्धं बहुधा पूजितो ह्यहम् ॥ १७ ॥ ततो वामन रूपेण ह्यव-

उसको मेरा ही भरोसा था । जप और अनेक प्रकार के सूक्तों से मेरी पूजा करे ॥१३॥ और नित्य ब्राह्मणों का पूजन और यज्ञ करे परन्तु उसने देवलोक के राजा इन्द्र से वैर करके उनके देवलोक को जीत लिया था ॥ १४ ॥ जब इस महात्मा दानव ने इस लोक को जीत लिया तो यह देख फिर सब देवता एकत्र होकर

123

सम्मति करने लगे कि ॥ १५ ॥ हम सब मिलकर प्रभु भगवान् के समीप चलकर यह सब कहें ऐसा शोच
प. इन्द्र आदि देवता और ऋषियों को साथ ले विष्णु भगवान के समीप गये ॥१६॥ और इन्द्र पृथ्वीपर गिरकर भा.
मा. सुन्दर स्तुतियों से मेरी स्तुति करने लगे और देवताओं सहित बृहस्पतिजी ने मेरा बहुत प्रकारसे पूजन किया टी.

१२२ तीर्णश्च पञ्चमः ॥ बालकेन जितः सोथ सत्यमालम्व्य तस्थिवान् ॥ १८ ॥ अत्युग्र रूपेण
तदा सर्वं ब्रह्माण्डरूपिणा ॥ गृहीतं तस्य सर्वस्वं दत्तं चेन्द्राय तं बिलम् ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर
उवाच ॥ त्वया वामन रूपेण सोऽसुरश्च जितः कथम् ॥ एतत्कथय देवेशं मह्यं भक्ताय
विस्तरात् ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मायालीकेन स बलिः प्रार्थितो बटुरूपिणा ॥ पद-
त्रयमितां भूमिं देहि मे भुवनत्रयम् ॥ २१ ॥ दत्तं भवति ते राजन् नात्र कार्या विचारणा ॥

॥ १७ ॥ फिर मैंने वामन रूप धारण करके पांचवां अवतार लिया और बालरूप से मैंने उस सत्यप्रतिज्ञ
दानव को जीत लिया ॥ १८ ॥ और फिर सब ब्रह्माण्ड में फैलने वाले अपने ऐसे प्रचंड रूपसे उसका सर्वस्व १२२
अधिकार जीत लिया और उस धनको इन्द्र को सौंप दिया ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे देवताओं के ईश !

आपने वामन रूपसे उस दानव को कैसे जीत लिया सो मुझ से विस्तार पूर्वक कहिये ॥ २० ॥ श्रीकृष्णजी बोले । मैंने ब्रह्मचारी का वेष बनाकर वलि से प्रार्थना किया कि तुम मुझे केवल तीन पग भूमि दान करो वह मुझे तीनों लोक के समान है ॥ २१ ॥ हे राजा ! जो देना है उसमें विचार क्या करना है जब मैंने यह कहा

इत्युक्तश्च मया राजा दत्तवांस्त्रिपदां भुवम् ॥ २२ ॥ संकल्पमात्राद्ववृद्धे देहस्त्रैविक्रमः परम् ॥ भूलोके तु कृतो पादौ भुवर्लोके तु जानुनी ॥ २३ ॥ स्वर्लोकेतु कटिन्यस्य महर्लोके तथो-दरम् ॥ जनलोके तु हृदयं तपो लोके च कण्ठकम् ॥ २४ ॥ सत्यलोके मुखं स्थाप्य उत्त-माङ्गम् तथोर्ध्वतः ॥ चन्द्र सूर्यग्रहाश्चैव भगणो योगसंयुतः ॥ २५ ॥ सेन्द्राश्चैव तदा देवा नागाः शेषादयः परे ॥ अस्तुवन् देवसंभूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तुमाम् ॥ २६ ॥ करे

तब राजा बलिने मुझे तीन पग भूमि दान किया ॥ २२ ॥ उसको संकल्प करते ही मेरी त्रिविक्रमी देह बहुत बढ़ी मैंने भूलोक में तो पाँव और भुवः लोक में जंघा किया ॥ २३ ॥ और स्वर्ग लोक में कमर महत लोक में पेट को स्थापित किया । जन लोक में हृदय और तपो लोक में कंठ को रखा ॥ २४ ॥

124

और सत्यलोक में मुख को रखकर उसके ऊपर शिर कर लिया। उस समय चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह तथा नक्षत्र और योग ॥ २५ ॥ इन्द्र समेत सब देवता शेष आदि नाग ये सब अनेक प्रकार से मेरी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ कि मैंने बलिका हाथ पकड़ कर उससे यह कहा कि एक पग से मैंने पृथ्वी को नाप लिया और

गृहीत्वा तु बलिमब्रुवं वचनं तदा ॥ एकेन पूरिता पृथ्वी द्वितीयेन त्रिविष्टपम् ॥ २७ ॥
तृतीयस्य तु पादस्य स्थानं देहि ममानघ ॥ एवमुक्ते मया सोऽपि मस्तकं दत्तवान् बलिः ॥२८॥
ततो वै मस्तके ह्येकं पद दत्तं मया तदा ॥ क्षिप्तो रसातले राजन् दानवो मम पूजकः॥२९॥
विनायवनतं दृष्ट्वा प्रसन्नोऽस्मि जनार्दन ॥ बले वसामि सततं सन्निधौ तव मानद ॥ ३० ॥
इत्योवचं महाभागं बलिं वैरोचनिं तदा ॥ आषाढ़ शुक्लपक्षस्य शयन्येकादशी दिनात्

दूसरे से स्वर्ग को नाप लिया ॥२७॥ हे निष्पाप ! अब तीसरे पग को रखने के लिये स्थान दीजिये। जब मैंने इस प्रकार कहा तब बलि ने मुझे अपना शिर दे दिया ॥२८॥ फिर जब उसे विनय से नम्र देखा तो मैं जनार्दन उसपर प्रसन्न हुआ और मैंने कहा कि हे राजा बलि ! हे मानद ! हे बलि ! मैं तेरे पास सदा रहता हूँ

॥ ३० ॥ और जब से विरोचन के पुत्र महात्मा बलि से मैंने यह कहा था उस आषाढ़ शुक्लपक्ष की देवशयनी एकादशी के दिन से ॥ ३१ ॥ मेरी एक मूर्ति बलि के यहाँ रहती है दूसरी उत्तम एकादशी क्षीर सागर में शेष नाग की पीठपर रहती है ॥ ३२ ॥ हे राजा ! जब तक कार्तिक की एकादशी आती है तब तक मेरी देह

॥ ३१ ॥ ममैका तत्र मूर्तिश्च बलिमाश्रित्य तिष्ठति ॥ द्वितीयाशेषपृष्ठे वै क्षीराब्धौ साग-रोत्तमे ॥ ३२ ॥ सुप्ता भवति भो भूप यावच्चायाति कार्तिकी ॥ नभस्यसितपक्षे तु परिव-र्तिनि वासरे ॥ ३३ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥ एकादशी महापुण्या पवित्रा पापहारिणी ॥ ३४ ॥ एतस्यां पूजयेद्देवं त्रैलोक्यस्य पितामहम् ॥ दधिदानं प्रक-र्तव्यं रौप्य तंडुल संयुतम् ॥ ३५ ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा मुक्तो भवति मानवः ॥ एवं यः

शयन करती है । और भादों के शुक्लपक्ष में परिवर्तिनी एकादशी के दिन मेरी देह करवट लेती है ॥ ३३ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! इस कारण से इसभाद्रपद शुक्ल एकादशी को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये यह बड़ी पवित्र और पाप नाशिनी है इसके व्रत करने से बड़ा पुण्य होता है ॥३४॥ वामनी एकादशी के दिन त्रिलोकी

125

के पितामह भगवान् का विधिवत पूजन करे। चाँदी और चावल सहित दधिका दान करे ॥३५॥ जो मनुष्य वामनी एकादशी को रात्रि को जागरण करता है वह मुक्त हो जाता है और हे राजा इस एकादशी को उत्तम व्रत को करता है कि जो सब पापों को नाश करने वाला और भोग मोक्ष को देनेवाला है तो वह देवलोक

कुरुते राजन्नेकादश्या व्रतं शुभम् ॥ ३६ ॥ सर्वपापहरं चैव भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ॥ स देवलोकं संप्राप्य भ्राजते चन्द्रमा यथा ॥ ३७ ॥ शृणुयाच्चैव यो मर्त्यः कथां पापहरां पराम् ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्पुराणेभाद्रपद शुक्लायाः परिवर्तिनी नामैकादश्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथाश्विनकृष्णैकादशीकथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे

में जाकर चन्द्रमा की भाँति शोभा को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ और जो मनुष्य बड़े पापको नाश करनेवाली इस कथा को सुनता है उसे हजार अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ ३८ ॥ इति भाद्रपद शुक्लायाः परिवर्तिनी नाम एकादश्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥

आश्विन कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे मधुसूदन ! आश्विन कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम इन्दिरा है उसके व्रत के प्रभाव से बड़ा पाप नाश हो जाता है ॥ २ ॥ नरक को गये पितरों को सुन्दर गति देने वाली है । हे राजन् ! इस पापहारिणी कथा को सावधान होकर सुनो ॥ जिसको सुनने मात्र से वाजपेय

मधुसूदन ॥ आश्विने कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ आश्विनस्यासिते पक्षे इन्दिरा नाम नामतः ॥ तस्या व्रत प्रभावेण महापापं प्रणश्यति ॥ २ ॥ अधोयोनिगतानां च पितृणां गतिदायिनी ॥ शृणुष्वावहितो राजन्न कथां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥ पुरा कृतयुगे राजा बभूव रिपुसूदनः ॥ ४ ॥ इन्द्रसेन इतिख्यातः पुरीं माहिष्मतीं प्रति ॥ स राज्यं पालया

यज्ञ का फल मिलता है पहले सत्ययुग में शत्रुओं का नाश करनेवाला ॥४॥ इन्द्रसेन इस नाम का माहिष्मती पुरी का राजा था । और वह माहिष्मती पुरी का राजा बड़ा विष्णु भक्त था ॥ ६ ॥ वह राजा मुक्ति को देने वाले विष्णु भगवान् के नामों को स्मरण करता हुआ उन्हीं के ध्यान में समय व्यतीत करता था और नित्य

126

आध्यात्म विद्या का विचार करता था ॥ ७ ॥ एक दिन राज सभा में सुख से बैठा था । इतने में परमबुद्धि-मान नारदमुनि आकाश से उतरकर उसके पास आये ॥ ८ ॥ नारदमुनि को आया हुआ देखकर राजा उठा और हाथ जोड़कर अर्घ्य आदि से उनका पूजन किया और आसन पर बैठाया ॥९॥ फिर सुख से बैठे हुए उन

मास धर्मेण यशसाऽन्वितः ॥ ५ ॥ पुत्र पौत्र समायुक्तो धन धान्य समन्वितः ॥ माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णुभक्ति परायणः ॥ ६ ॥ जपन् गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः ॥ ध्यानेन कालं नयति नित्यमध्यात्मचिन्तकः ॥७॥ एकस्मिन्दिवसे राज्ञि सुखा-सीने सदोगते ॥ अवतीर्यागमद्धीमानंबरान्नारदो मुनिः ॥ ८ ॥ तमागत मभिप्रेत्य प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ पूजयित्वार्घविधिना चासने सन्न्यवेशयत ॥ ९ ॥ सुखोपविष्टः स मुनिः प्रत्यु-

मुनिने उस उत्तम राजा से कहा कि हे राजेन्द्र ! तुम्हारे सेना आदि सातों अंगोंमें कुशल तो है ॥१०॥ तुम्हारी धर्म भक्ति है तुम्हारी विष्णु की भक्ति में प्रीति है । देवर्षि नारदजी के वचन को सुनकर वह राजा उनसे बोला ॥११॥ राजा उनसे कहने लगा ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरे यहाँ सब कुछ कुशल है और आज आप के

दर्शन से मेरे यज्ञ की सब क्रियायें सफल हुई हैं ॥१२॥ और हे ब्रह्मर्षि! कृपाकर अपने आने का कारण कहिये राजा का यह वचन सुनके देवर्षि बोले ॥१३॥ नारदजी कहने लगे ॥ हे राजसिंह! मेरे दुःख देनेवाले वचन को सुनो। हे द्विजोत्तम! मैं ब्रह्मलोक से यमलोक को गया था ॥ १४ ॥ यमराज ने भक्ति से मेरा पूजन करके मुझे

वाच नृपोत्तमम् ॥ कुशलं तव राजेन्द्र सप्तस्वङ्गेषु वर्त्तते ॥ २० ॥ धर्मे मतिर्वर्त्तते ते विष्णु-भक्ति रतिस्तथा ॥ इति वाक्यं तु देवर्षेः श्रुत्वा राजानमब्रवीत् ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्मुनि श्रेष्ठ सर्वत्र कुशलं मम ॥ अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ॥१२॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे ब्रूह्यागमन कारणम् ॥ इति राज्ञा वचः श्रुत्वा देवर्षिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम् ॥ ब्रह्मलोकादहं प्राप्तो यमलोकं

सुन्दर आसन पर बैठाया। वहाँ मैंने धर्मवान् राजा सत्यवान् को यमराज की सेवा में देखा ॥१५॥ वह बड़ा पुण्यात्मा था परन्तु एक व्रत खण्डित होने के दोष से मैंने तुम्हारे पिता को यमराज की सभा में देखा है ॥ १६ ॥ हे राजा! उसने एक सन्देशा कहा है। उसे सुनो कि इन्द्रसेन नाम एक राजा माहिष्मती पुरी का

स्वामी है ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मदेव ! उसके सामने कहो कि मैं पूर्व जन्म के किसी विघ्न के कारण यमलोक में पड़ा हूँ ॥ १८ ॥ सो हे पुत्र ! इन्दिरा के दान से मुझे स्वर्ग को भेजो । हे राजन् ! उसने यह कह कर मुझे भेजा है इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूं ॥१९॥ हे राजन् ! पिता को स्वर्ग भेजने के निमित्त तुम इन्द्रिरा का व्रत

द्विजोत्तम् ॥ १४ ॥ शमने नार्चितो भक्त्या उपविष्टे वरासने ॥ धर्मशीलः सत्यवांस्तु भास्करिं समुपासये ॥ १५ ॥ बहुपुण्यप्रकर्त्ता च व्रत कैवल्य दोषतः ॥ सभायां श्राद्धदेवस्य मयादृष्टः पिता तव ॥१६॥ कथितस्तेन सन्देशस्तं निबोध जनेश्वर ॥ इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मती प्रभुः ॥ १७ ॥ तस्याग्रे कथय ब्रह्मन् स्थितं मां यमसन्निधौ ॥ केनापि चान्तरायेण पूर्वजन्मोद्भवाय वै ॥ १८ ॥ स्वर्गं प्रेषय मां पुत्र इन्दिराव्रतदानतः ॥ इत्युक्तोहं

करो उस व्रत के प्रभाव से तुम्हारा पिता स्वर्ग को चला जावेगा ॥ २० ॥ राजा ने कहा हे भगवान् ! आप प्रसन्न होकर इन्दिरा का व्रत मुझ से कहिये कि किस पक्ष में किस तिथि को और कौनसे विधि से उसे करना चाहिये ॥ २१ ॥ नारदजी बोले ॥ हे राजन् ! सुनो मैं इस व्रत की विधि तुम्हारे कल्याण के लिये कहता हूँ।

आश्विनमास के कृष्ण पक्ष में सुंदर एकादशी के दिन ॥ २२ ॥ श्रद्धायुक्त मनसे प्रातः काल स्नान करे फिर मध्यान्ह समय स्नान करके जल से बाहर आवे ॥ २३ ॥ और श्रद्धा पूर्वक पितरों के प्रसन्नार्थ श्राद्ध करे।

समायातः समीपं तव पार्थिव ॥ १९ ॥ पितुः स्वर्गतये राजन्निन्दिव्रतमाचर ॥ तेन व्रत प्रभावेण स्वर्गं यास्यति ते पिता ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवन्निन्दिरा-व्रतम् ॥ विधिना केन कर्तव्यं कस्मिन् पक्षे तिथौ तथा ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु राजन् हितं वच्मि व्रतस्यास्य विधिं शुभम् ॥ आश्विनस्यासिते पक्षे दशमी दिवसे शुभे ॥ २२ ॥ प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धा युक्तेन चेतसा ॥ ततो मध्यान्ह समये स्नानं कृत्वा वहिर्जले ॥ २३ ॥ पितॄणां प्रीतये साद्धं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ एक भुक्तं ततः कृत्वा रात्रौ

एक वार भोजन कर पृथ्वी पर सोवे ॥ २४ ॥ दूसरे दिन जब अच्छी तरह सवेरा हो जाय और एकादशी
२२ तिथि आ जावे तब दतुवन करके मुख धोवे ॥ २५ ॥ फिर भक्तिभाव से नियम पूर्वक संकल्प करै कि आज निराहार रहकर सब प्रकार के भोग से वर्जित रहूँगा ॥ २६ ॥ कल्ह भोजन करूँगा हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत

मैं आपकी शरण हूँ इस प्रकार नियम करके मध्यान्ह के समय ॥ शालिग्राम की शिला के आगे विधि पूर्वक श्राद्ध करके फिर दक्षिणा आदि से पवित्र ब्राह्मणों का पूजन करके उन्हें भोजन करावे ॥ २८ ॥ और पितरों मा. टी.

मा. भूमौ शयाति च ॥ २४ ॥ प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशी दिने ॥ मुखप्रक्षालनं कुर्या-

१२७ द्दन्तधावन पूर्वकम् ॥ २५॥ उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्‌ भक्तिभावतः ॥ अद्यस्थित्वा निरा

हारः सर्वभोगविवर्जितः ॥ २६ ॥ श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ इत्येवं

नियमं कृत्वा मध्यान्हसमये तथा ॥ २७ ॥ शालग्रामशिलाग्रेतु श्राद्धं कृत्वा यथा विधिः ॥

भोजयित्वा द्विजाञ्छुद्धान् दक्षिणाभिः सुपूजितान् ॥ २८ ॥ पितृशेषं समाघ्राय गवे दद्या-

द्विचक्षणः ॥ पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगंधादिभिस्तथा ॥ २९ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् केश

से शेष अन्न को सूँघकर ज्ञाता पुरुष उस अन्न को गौ के लिये देवे धूप गंध आदि से भगवान् का पूजन करके ॥ २९ ॥ भगवान् के सामने रात्रि को जागरण करे । फिर द्वादशी के दिन जब प्रातः काल हो जावे ॥३०॥ तब भक्ति से भगवान् की पूजा करे और फिर ब्राह्मणको भोजन कराकर बंधु भाई दौहित्र नाती, पुत्र १२७

इनके साथ मौन होकर आप भोजन करे ॥३१॥ हे राजन् ! इस विधि से आलस्य को छोड़कर व्रत को करो तो तुम्हारे पितर स्वर्ग लोक को जावेंगे ॥३२॥ हे राजन् ! युधिष्ठिर ! राजा से यह कहकर नारद मुनि अन्त-

वस्य समीपतः ॥ ततः प्रभातसमये संप्राप्ते द्वादशी दिने ॥ ३० ॥ अर्चयित्वा हरिं भक्त्या भोजयित्वा द्विजानथ ॥ बंधु दौहित्र पुत्राद्यैः स्वयं भुंजीत वाग्यतः ॥ ३१ ॥ अनेन विधिना राजन् कुरु व्रतमतन्द्रितः ॥ विष्णु लोकं प्रयास्यान्ति पितरस्तव भूपते ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा नृपतिं राजन् मुनिरन्तरधीयत ॥ यथोक्त विधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ अन्तःपुरेण सहितः पुत्र भृत्य समन्वितः ॥ कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥ ३४ ॥ तत्पिता गरुड़ारूढ़ो जगाम हरिमन्दिरम् ॥ इन्द्रसेनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकंटकम् ॥३५॥

ध्यान हो गए और जैसी विधि बताई थी उसी प्रकार राजा इन्द्रसेन ने इस उत्तम व्रत को ॥ ३३ ॥ पुत्र, स्त्री, दास, दासी, समेत किया हे युधिष्ठिर ! इस व्रत को करने पर स्वर्ग से फूलों की वर्षा हुई ॥ ३४ ॥ और उस राजा का पिता गरुड़पर बैठकर विष्णुलोक को और राजर्षि इन्द्रसेन भी अकंटक राज्य करके ॥ ३५ ॥ और

अपने पुत्र को राज्य पर बैठाकर अपने भी स्वर्ग को गया। यह मैंने इन्दिरा के व्रत का माहात्म्य तुमसे कहा है

राज्ये निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवे स्वयम् ॥ इन्दिरा व्रत माहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया
॥३६॥ पठनाच्छ्रवणाच्चास्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ भुक्त्वेहनिखिलान् भोगान् विष्णुलोके

वसेच्चिरम् ॥ ३७ ॥ इतिश्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे आश्विनकृष्णैकादश्या इन्दिरामाहात्म्यं समा० ॥

अथाश्विन शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवान् मधुसूदन ॥ इषस्य शुक्लपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ शुक्लपक्षे चाश्वयुजि भवेदेकादशी तु या ॥ २ ॥

॥ ३६ ॥ इसको पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और इस जन्म में सब भोगों को भोगकर बहुत काल तक विष्णु लोक में निवास करता है ॥ इन्दिरा एकादशी माहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथ आश्विनशुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे मधुसूदन! भगवान्! आप प्रसन्न होकर कहिये कि आश्विन शुक्लपक्ष की एकादशी का क्या नाम है ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजीने कहा, हे युधिष्ठिर! आश्विन शुक्ल

पक्ष में जो एकादशी होती है उसके पापको नाश करनेवाले माहात्म्य को कहूँगा ॥ २ ॥ उसका नाम पाशां-
कुशा है और वह सब पापों को नाश करने वाली है और मनुष्य उस दिन पद्मनाभ भगवान् का पूजन करे
॥ ३ ॥ यह व्रत मनुष्यों को संपूर्ण मनोरथ तथा स्वर्ग मोक्ष का देनेवाला है । मनुष्य बहुत काल तक जितेन्द्रिय

पाशांकुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ पद्मनाभाभिधानं तु पूजयेत्तत्र मानवः ॥ ३ ॥
सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम् ॥ तपस्तप्त्वा नरस्तीव्रम् चिरं सुनियतेन्द्रियः ॥४॥
यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुड़ध्वजम् ॥ कृत्वापि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥५॥
न याति नरकं घोरं नत्वा पापहरं हरिम् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥६॥
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ देवं शार्ङ्गधरं विष्णुंये प्रपन्ना जनार्दनम्

रहकर बड़ी कठिन तपस्या करके ॥ ४ ॥ जो फल प्राप्त करता है वही फल गरुड़ध्वज को प्रणाम करने से पाता
है । मनुष्य अज्ञानता से बहुत कुछ पाप करके भी ॥ ५ ॥ पापों को नाश करनेवाले भगवान को नमस्कार
करके घोर नरक का दर्शन नहीं करता है और पृथ्वीपर जितने तीर्थ क्षेत्र और पुण्य स्थान हैं ॥६॥ उन सब

120

का फल भगवान के नाम लेने से मिलता है जो शार्ङ्गधन्वा को धारण करनेवाले जनार्दन विष्णुभगवानकी शरण में जाता है ॥ ७ ॥ उन लोगों को कभी यम लोक में जाना नहीं होता । जो मनुष्य प्रसंग से भी एका-दशी का व्रत करते हैं ॥ ८ ॥ वह कठिन पाप करके भी यम की यातना को नहीं भोगते हैं । जो पुरुष वैष्णव

॥ ७ ॥ न तेषां यमलोकस्थ नृणां वै जायते क्वचित् ॥ उपोष्यैकादशीमेकां प्रसंगेनापि मानवाः ॥ ८ ॥ नयांति यातनां यामीं पापं कृत्वापि दारुणम् ॥ वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शि-वनिन्दां करोति यः ॥ ९ ॥ यो निन्देद्वैष्णव लोके स याति नरकं ध्रुवम् ॥ अश्वमेधसह-स्राणि राजसूयशतानि च ॥१०॥ एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ एकादशी समं पुण्यं किंचिल्लोके न विद्यते ॥ ११ ॥ नेदृशं पावनं किञ्चित्त्रिषुलोकेषु विद्यते ॥

होकर शिवजी की निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और जो विष्णु लोक की निन्दा करता है वह निश्चय करके नरक में जाता है । हजारों अश्वमेध और करोड़ों राजसूय यज्ञ ॥ १० ॥ एकादशी के व्रत के सोलहवें भाग के समान भी नहीं है । एकादशी के समान कोई पुण्य संसार में नहीं है ॥ ११ ॥ और जैसा पद्मनाभजी का दिन पाप

नाशक है ऐसा पवित्र तीनों लोक में कोई पुण्य नहीं है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इस देह में तभी तक पाप रहते हैं कि जब तक मनुष्य भक्ति पूर्वक पद्मनाभ के शुभ दिन में एकादशी का व्रत नहीं करता और जो किसी बहाने से भी इस एकादशी का व्रत कर लेवे तो यमराज के दर्शन नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ यह एकादशी स्वर्ग, मोक्ष

यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ॥१२॥ तावत्पापानि तिष्ठन्ति देहेऽस्मिन् मनुजाधिप ॥ यावन्नोपोष्यते भक्त्या पद्मनाभ दिनं शुभम् ॥ व्याजेनोपोषितमपि न दर्शयति भास्करिम् ॥ १३ ॥ स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ॥ सुकलत्र प्रदा ह्येषा धनधान्य प्रदायिनी ॥ १४ ॥ न गंगा न गया राजन्न काशी न च पुष्करम् ॥ न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप-हरेर्दिनात् ॥ १५ ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम् ॥ अनायासेन भूपाल प्राप्यते

शरीर की आरोग्यता सुन्दर स्त्री और धनधान्य इन सबको देनेवाली है ॥ १४ ॥ हे राजन गंगा, गया, पुष्कर, काशी, कुरुक्षेत्र ये एकादशी से बढ़कर पवित्र नहीं हैं ॥ १५ ॥ जो एकादशी का व्रत करके रात्रि को जागरण करता है वह अनायास ही विष्णु के लोक में निवास करता है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य इस एकादशी

131

के व्रत को करता है वह दश पीढ़ी माता के पक्ष को और दश पीढ़ी पिता के पक्ष को और दश पीढ़ी स्त्री के पक्ष की इनको तार देता है ॥ १७ ॥ और वे सब चतुर्भुज दिव्य रूपको धारण कर गरुड़ पर सवार हो उत्तम माला को धारण किये पीताम्बर पहिने विष्णुलोक को जाते हैं ॥ १८ ॥ और हे राज श्रेष्ठ ! बाल्यावस्था,

वैष्णवं पदम् ॥१६॥ दश वै मातृके पक्षे दश राजेन्द्र पैतृके ॥ प्रियाया दशपक्षे तु पुरुषानु-द्धरेन्नरः ॥ १७ ॥ चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारि कृतकेतनाः ॥ स्रग्विणः पीतवस्त्रांश्च प्रयांति हरिमन्दिरम् ॥ १८ ॥ बालत्वे यौवने चैव वृद्धत्वेऽपि नृपोत्तम ॥ उपोष्य द्वादशी नूनं नैति पापोऽपि दुर्गतिम् ॥ १६ ॥ पाशांकुशा मुपोष्यैव आश्विने चासिते तरे ॥ सर्वपाप विनि-र्मुक्तो हरिलोकं स गच्छति ॥२०॥ दत्वा हेमतिलान् भूमिं गामन्नमुदकं तथा ॥ उपानद्वस्त्र

युवावस्था, वृद्धावस्था में द्वादशी विद्धा एकादशी का व्रत करके पापी मनुष्य भी दुर्गति (नरक) को नहीं पाता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य आश्विन शुक्ला पाशांकुशा एकादशी का व्रत करता है वह सब पापों से छूटकर वैकुंठ लोक को चला जाता है ॥ २० ॥ और जो इस एकादशी के दिन सोना, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूता

और छाता आदि को दान करता है वह मनुष्य यमको नहीं देखता है ॥ २१ ॥ जिसके पुण्य से रहित दिन बीतते हैं वह लोहार की धौंकनी (भाँती) के समान श्वास तो लेता है पर जीता नहीं है ॥२२॥ हे नृपोत्तम! चाहे दरिद्री हो परन्तु शक्ति के अनुसार स्नान दान आदि के करने में दिनको सफल करे ॥२३॥ तालाव वगीचा

छत्रादि न पश्यति यमं नरः ॥२१॥ यस्य पुण्यविहीनानि दिनान्यपगतानि च ॥ स लोहकार भस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥२२॥ अवन्ध्यं दिवसं कुर्यात् दरिद्रोऽपि नृपोत्तमम् ॥ समाचरन् यथाशक्ति स्नानदानादिकाक्रियाः ॥ २३ ॥ तड़ागाराम सौधानां सत्राणां पुण्यकर्मणाम् ॥ कर्तारो नैव पश्यन्ति धीरास्तां यमयातनाम् ॥ २४ ॥ दीर्घायुषो धनाढ्याश्च कुलीना रोग वर्जिताः ॥ दृश्यंते मानवा लोके पुण्यकर्तार ईदृशाः ॥ २५ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्य-धर्मेण दुर्गतिम् ॥ आरोहन्ति दिवं धर्मेनात्र कार्या विचारणा ॥ २६ ॥ इति ते कथितं राजन्

महल वनानेवाले हो और यज्ञ तथा पुण्य कर्म इनको करनेवाले धीर मनुष्य यमकी उस यातना को नहीं देखते हैं ॥ २४ ॥ ऐसे पुण्य करनेवाले मनुष्य सन्सार में वड़ी आयुष्य के धनाढ्य कुलीन और रोग से हीन दिखाई

ए. मा. १३१

देते हैं ॥ २५ ॥ बहुत कहने से क्या है जो अधर्म करते हैं वे दुर्गति को पाते हैं । और धर्म से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं इसमें कुछ विचार का काम नहीं है ॥ २६ ॥ हे राजा ! हे निष्पाप ! तुम्हारे पूछने से मैंने यह तुमसे

भा. टी.

यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ पाशांकुशाया माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २७ ॥ इति श्री ब्रह्माण्डपुराणे पाशांकुशाख्या महात्म्यं समाप्तम् ॥

अथकार्तिककृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथस्व प्रसादेन ममस्नेहाज्जनार्दन ॥ कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथयामितवाग्रतः ॥ कार्तिके कृष्णपक्षे तु रमानाम्नी सुशोभना ॥२॥ एकादशी

पाशांकुशा का माहात्म्य कहा है और अब क्या सुनना चाहते हो ॥ २७ ॥ इति श्रीआश्विनशुक्लैकादश्याः पाशांकुशाया माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथकार्तिक कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे जनार्दन ! कार्तिक के कृष्णपक्ष की एकादशी का क्या नाम है सो आप मेरे स्नेह से प्रसन्न होकर मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे राजसिंह !

१३१

सुनो मैं तुम्हारे सामने कहता हूँ कि कार्तिक कृष्णपक्षके एकादशी का नाम सुन्दर रमा है ॥२॥ यह एकादशी महापाप को नाश करनेवाली और उत्तम हैं । हे राजा ! अब प्रसंग से इसका माहात्य भी कहता हूँ ॥ ३ ॥ पहिले समय में मुचुकुन्द नाम एक राजा था ॥ हे राजा ! उसकी मित्रता इन्द्र के साथ थी ॥ ४ ॥ और यम,

समाख्याता महापापहरा परा ॥ अस्याः प्रसंगतो राजन् माहात्म्यं प्रवदामि ते ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ॥ देवेन्द्रेण समं यस्य मित्रत्वमभवन्नृप ॥ ४ ॥ यमेन वरुणेनैव कुबेरेण समं तथा ॥ विभीषणेन चैतस्य सखित्वमभवत्सह ॥ ५ ॥ विष्णुभक्तः सत्यसन्धे बभूवनृपतिःसदा ॥ तस्यैवं शासतो राजन् राज्यं निहतकण्टकम् ॥ ६ ॥ वभूव दुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा ॥ शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेन सुतायवै ॥ ७ ॥

वरुण, कुवेर, और विभीषण के साथ भी उसकी मित्रता थी ॥ ५ ॥ वह राजा विष्णु भक्त और सत्यप्रतिज्ञ था, हे राजा ! इस प्रकार वह सदा अकंटक राज्य करता था ॥ ६ ॥ उस राजा मुचुकुन्द के गृह में नदियों में श्रेष्ठ चन्द्रभागा नाम पुत्री उत्पन्न हुई और वह शोभननाम चन्द्रसेन के पुत्र से व्याही गई ॥ ७ ॥ हे राजा !

वह शोभन एक समय अपने श्वसुर के घर आया और उसी समय पुण्य का देनेवाला इस एकादशी का व्रत
पु. आया ॥ ८ ॥ व्रत के दिन आने से चन्द्रभागा सोचने लगी कि हे भगवन् ! क्या होनहार है । मेरा पति तो भा.
मा. वड़ा दुर्बल हो रहा है ॥ ९ ॥ और यह क्षुधा को नहीं रोक सकता है और पिता की ऐसी कठिन आज्ञा है टी.

१३२ स कदाचित् समायातः श्वसुरस्य गृहे नृप ॥ एकादशी व्रतमिदं समायातं सुपुण्यदम् ॥८॥
समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिन्तयत् ॥ किं भविष्यति देवेश मम भर्ताति दुर्बलः ॥९॥
क्षुधां सोढुं न शक्नोति पिता चैवोग्रशासनः ॥ पटहस्ताड्यते यस्य संप्राप्ते दशमीदिने॥१०॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ॥ श्रुत्वा पटहनिर्घोषं शोभनस्त्वब्रवीत्प्रियाम्
॥११॥ किं कर्तव्यं मया कान्ते क्षुद्युपायं सुशोभने ॥ कृतेन येन मे सम्यग् जीवितं न विन·

कि दशमी के दिन से ही डुग्गो पीट जाती है कि ॥ १० ॥ एकादशी के दिन भोजन मत करना कोई भोजन
न करना । उस डुग्गी को सुनकर शोभन अपनी स्त्री से बोला ॥ ११ ॥ हे प्यारी ! अब तू कहो कि प्रभुको १३२
क्या उपाय करना चाहिये कि जिसको अच्छी तरह करने से मेरे जोवन की रक्षा हो सके ॥ १२ ॥ चन्द्रभागा

बोली ॥ हे स्वामी ! मेरे पिता के घर में आज कोई भी जीव भोजन नहीं करेगा यहाँ तक कि हाथी, घोड़े ऊँट, तथा इनसे अन्य भी पशु ॥ १३ ॥ आज एकादशी के दिन तृण अन्न जल नहीं खायँ पियेंगे, हे स्वामी ! फिर मनुष्यों को भोजन कैसे ॥ १४ ॥ हे नाथ ! जो तुम भोजन करना चाहो तो घर से चले जाओ । और

श्यति ॥१२॥ चन्द्रभागोवाच ॥ मत्पितुर्वेश्मनि विभो भोक्तव्यं नापि केनचित् ॥ गजैरश्वै-स्तथा चोष्ट्रैरन्यैः पशुभिरेव च ॥ १३ ॥ तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने ॥ मानवै-स्तु कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे ॥ १४ ॥ यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गेहात्प्रयास्यताम् ॥ एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसं कुरु ॥ १५ ॥ शोभन उवाच ॥ सत्यमेतत्त्वयाप्रोक्तं करिष्येऽहमुपोषणम् ॥ दैवेन विहितं यद्वैतत्तथैव भविष्यति ॥ १६ ॥ इति दिष्टे मतिं कृत्वा

अपने मनमें सोच लो और जो कुछ करो वह मन को पक्का करके करो ॥ १५ ॥ शोभन बोला ॥ हे प्रिये ! तैंने यह सत्य कहा मैं भी आज व्रत करूँगा और जो दैव की रचना होगी वही होगा ॥ १६ ॥

२३ इस प्रकार दैव (भाग्य) पर भरोसा करके उस शोभन ने इस उत्तम व्रत को किया परन्तु भूख प्यास से उसकी शरीर में पीड़ा होने लगी और वह राजकुमार बड़ा दुःखी हुआ ॥ १७ ॥

जब वह ऐसा व्याकुल हुआ और सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच कर अस्त हुए तो वह रात्रि वैष्णव तथा और लोगों के लिये तो आनन्द को बढ़ानेवाली हुई ॥ १८ ॥ और हेराजसिंह ! भगवान् की पूजा में प्रीति और जागरण करनेवालों को भी आनन्द होने लगा पर वह रात्रि शोभन को व्यतीत करने में बड़ी कठि-

चकार व्रत मुत्तमम् ॥ क्षुत्तृषापीडित तनुः स बभूवातिदुःखितः ॥ १७ ॥ एवं व्याकुलिते तस्मिन्नादित्योऽस्तमगाद्गिरिम् ॥ वैष्णवानां नराणां सा निशा हर्षविवर्धिनी ॥ १८ ॥ हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम् ॥ बभूवनृपशार्दूल शोभनस्याति दुःसहा ॥ १९ ॥ रवेरुदयेवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः ॥ दाहयामास राजानं राजयोग्यैश्च दारुभिः ॥ २० ॥ चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पितृ वारिता ॥ कृत्वोर्ध्वं दैहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि॥२१॥

नाई पड़ी ॥ १९ ॥ और सूर्य के उदय होते होते शोभन की मृत्यु हो गई । फिर राजा ने राजा के योग्य उत्तम चन्दनादि काष्ठ से उसका दाह कराया ॥ २० ॥ और पिता के रोकने से चन्द्रभागा ने अपना शरीर पति के साथ नहीं जलाया और वह उसकी प्रेत क्रिया करके अपने पिता के घर में रहने लगी ॥ २१ ॥ और शोभन

ने रंभा के व्रत के प्रभाव से मन्दराचल के शिखर पर एक बड़ा मनोहर देवपुर पाया ॥ २२ ॥ वह बड़ा उत्तम था और उसे कोई आक्रमण न कर सके और उसमें इसी तरह के अनेक गुण थे । महलों में सोने के खंभे लगे हैं और उनमें वेदूर्य आदि रत्न जड़े हैं ॥ २३ ॥ और अनेक प्रकार के विचित्र स्फटिक के महलों से जगमगा

शोभनेन नृपश्रेष्ठ रमाव्रतप्रभावतः ॥ प्राप्तं देवपुरं रम्यं मन्दराचलसानुनि ॥ २२ ॥ अनुत्तम-
मनाधृष्यमसंख्येयं गुणान्वितम् ॥ हेमस्तम्भमयैःसौधैरत्नवैडूर्यमण्डितैः ॥ २३ ॥ स्फाटिकै-
र्विविधाकारैर्विचित्रैरुपशोभितम् ॥ सिंहासनसमारूढःसुश्वेतश्छत्रचामरः ॥ २४ ॥
किरीटकुंडलयुतो हारकेयूरभूषितः ॥ स्तूयमानैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ॥ २५ ॥ शोभनः
शोभते तत्र देवराडपरो यथा ॥ शोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरे वसन् ॥ २६ ॥

रहा, ऐसे सुन्दर देवपुर में शोभन सिंहासन पर विराजमान है, ऊपर उज्वल छाता लगा है चमर डुल रहे हैं ॥ २४ ॥ मस्तक पर किरीट पहिरे कानों में कुण्डल धारण किये गले में हार हाथों में बिजायठ पहिरे हैं, गंधर्व वहाँ गान कर रहे हैं अप्सरायें सेवा में सामने खड़ी हैं ॥ २५ ॥ और शोभन वहाँ ऐसा शोभायमान हो रहा

ए. मा. है मानो वहाँ पर कोई दूसरा इन्द्र बैठा हो उसी समय मुचुकुन्द के नगर का रहनेवाला सोमशर्मा नाम ॥२६॥ ब्राह्मण तीर्थयात्रा करता हुआ उस स्थान पर जा पहुंचा और उसने उस शोभन को देखा। और उसे राजा का जामाता जानकर वह उसके पास गया ॥ २७ ॥ शोभनने आसन से शीघ्र उठकर उस उत्तम ब्राह्मण को

आसनादुत्थितः शीघ्रं नमश्चक्रे द्विजोत्तमम् ॥ चकार कुशलंप्रश्नं श्वसुरस्य नृपस्य च ॥२७॥

१३८ कान्तायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च ॥ २८ ॥ सोमशर्मोवाच ॥ कुशलं वर्त्तते राजन् श्वसुरस्य गृहे तव ॥ चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे ॥ २६ ॥ स्ववृत्तं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं परमं मम ॥ पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित् क्वचित् ॥ ३० ॥ एतदाचक्ष्व नृपते कुतः प्राप्तमिदं त्वया ॥ शोभनउवाच ॥ कार्तिकस्यासिते पक्षे नाम्नाचैकादशी रमा ॥

प्रणाम किया और अपने श्वसुर राजा मुचुकुन्दकी और चन्द्रभागो अपनी स्त्री तथा नगर की कुशल पूँछी॥२८॥ सोमशर्मा बोला ॥ हे राजा ! तुम्हारे श्वसुर के घर कुशल है और तुम्हारी स्त्री चन्द्रभागा अच्छी है और नगर भी कुशल है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! अब अपना वृत्तान्त कहो यह मुझे बड़ा आश्चर्य है, यह नगर तो ऐसा विचित्र और सुन्दर है कि कभी किसी ने नहीं देखा होगा ॥ ३० ॥ सो हे राजा ! यह कहो कि तुमको यह

नगर कहाँ से और कैसे प्राप्त हुआ है, शोभन ने कहा कार्तिक कृष्णपक्ष की रमा नाम एकादशी होती है ॥ ३१ ॥ सो हे द्विजेन्द्र ! अनिश्चल नगर को प्राप्त किया है और हे द्विजोत्तम ! जिस उपाय से यह निश्चल हो जावे सो उपाय करो ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण ने कहा। कि यह नगर कैसे अनिश्चल है और

तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्रपुरमध्रुवम् ॥ ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥ द्विजेन्द्रउवाच ॥ कथमद्ध्रुवमेतद्धि कथं हि भवति ध्रुवम् ॥ तत्त्वं कथय राजेन्द्र तत्करिष्यामि नान्यथा ॥ ३३ ॥ शोभनउवाच ॥ मयैतद्विहितं विप्र श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम् ॥ तेनेदमध्रुवं मन्ये ध्रुवं भवति तच्छृणु ॥ ३४ ॥ मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना ॥ तस्यै कथय वृत्तान्ते ध्रुवमेतद्भविष्यति ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा द्विजवरस्तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥ श्रुत्वाथ

कैसे निश्चल होगा सो तुम कहो मैं वही करूँगा ॥ ३३ ॥ शोभन बोला ॥ हे ब्राह्मण देवता ! यह उत्तम व्रत मैंने श्रद्धा से रहित होकर किया था इसलिये मैं इस पुर को अनिश्चल मानता हूँ और जिस उपाय से निश्चल हो सो सुनो ॥ ३४ ॥ मुचुकुन्द की सुन्दर पुत्री जो चन्द्रभागा है उससे यह वृत्तान्त कह देना उसीसे यह निश्चल हो जायगा ॥ ३५ ॥ यह सुनकर फिर उस उत्तम ब्राह्मण ने आकर चन्द्रभागा से सब समाचार कह दिया, ब्राह्मण

136

की बात सुनते ही आश्चर्य से चन्द्रभागा के नेत्र खिल गये ॥३६॥ और कहने लगी हे ब्राह्मण! तुमने आँखों से देखा है या स्वप्न की बात कहते हो सोमशर्मा ने कहा हे पुत्री! मैंने महावन में तुम्हारे पति को प्रत्यक्ष देखा है ॥ ३७ ॥ और मैंने उसके नगर को इन्द्र के नगर के समान देखा कि जिसको कोई दबा नहीं सकता

सा द्विजवचो विस्मयोत्फुल्ल लोचना ॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षमथवा स्वप्नस्त्वयैतत्कथ्यते द्विज ॥ सोमशर्मोवाच ॥ प्रत्यक्षं पुत्रि ते कान्तो मया दृष्टो महावने ॥ ३८ ॥ देवतुल्यमनाधृष्य दृष्टं तस्य पुरं मया ॥ अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ॥ ३८ ॥ चन्द्रभागोवाच ॥ तत्र मां नय विप्रर्षे पतिदर्शन लालसाम् ॥ आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ॥३९॥ आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु ॥ प्राप्यते हि महत्पुण्ये कृतयोगे वियुक्तयोः ॥४०॥

है और राजकुमार शोभन ने मुझसे कहा कि यह अनिश्चल है अब जिस प्रकार यह पुर निश्चल हो जावे सो उपाय करो ॥३८॥ चन्द्रभागा बोली ॥ हे ब्राह्मण देवता मुझे तुम वहाँ पहुंचा दो मुझे पति के दर्शन की बड़ी अभिलाषा है ॥ मैं अपने व्रत के पुण्य प्रभाव से उस नगर को निश्चल कर दूंगी ॥३९॥ और हे ब्रह्मदेव!

जिस प्रकार हम दोनों का मिलाप हो जावे सो उपाय करो क्योंकि हम दोनों का वियोग हुए बहुत दिन बीत गया है अब मिलाप करा देने से तुमको बड़ा पुण्य होगा ॥ ४० ॥ यह सुनकर सोमशर्मा चन्द्रभागा के साथ मन्द्राचल के समीप वामदेव ऋषि के आश्रम में गया ॥ ४१ ॥ वामदेव ऋषि ने उन दोनों के सब वृत्तान्त को

इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम हैं॥ आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचल सन्निधौ ॥४१॥
वामदेवोऽशृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः ॥ अभ्यषिञ्चचन्द्रभागा देवमन्त्रैरथोज्वलाम् ॥४२॥
ऋषिमन्त्र प्रभावेण विष्णुवासर सेवनात् ॥ दिव्यदेहा बभूवासौ दिव्यां गतिमवापह ॥४३॥
पत्युः समीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना ॥ सहर्षःशोभनोऽतीव दृष्ट्वा कान्तां समागताम् ॥४४॥

सुना कि जो उन्होंने कहा और फिर वेद के मन्त्रों से उस उज्ज्वल कान्तिवाली चन्द्रभागा को अभिषेक किया ॥ ४२ ॥ ऋषि के मन्त्र के प्रभाव से और एकादशी के व्रत करने से वह दिव्य शरीर हो गई और उसकी दिव्य दशा हो गई ॥ ४३ ॥ तब बड़े हर्षयुक्त नेत्रों से प्रसन्नता प्रकट करती हुई पति के पास गई और शोभन भी स्त्री को आई हुई देख बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ४४ ॥ और उसे बुलाकर अपने वाम भाग में बैठाया । फिर

वह चन्द्रभागा प्रसन्नता से अपने पति से प्रिय वचन बोली ॥ ४५ ॥ हे स्वामी ! हितकी एक बात सुनो । मेरा पुण्य है कि जो मैंने पिता के घर आठ वर्ष की अवस्था से ॥ ४६ ॥ लगाकर विधिपूर्वक और श्रद्धायुक्त मनसे एकादशी का व्रत किया है ॥ ४७ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से यह पुर निश्चल हो जायगा और कल्प के

समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तां सन्यवेशयत् ॥ सा प्रोवाच प्रियं हर्षाच्चन्द्रभागा प्रियं वचः ॥५५॥ शृणु कान्त हितं वाक्यं यत्पुण्यं विद्यते मयि ॥ अष्टवर्षाधिका जाता यदाहं पितृवेश्मनि ॥ ४६ ॥ मया ततः प्रभृतिचकृतमेकादशीव्रतम् ॥ यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥ ४७ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम् ॥ सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४८ ॥ एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह ॥ दिव्यभोगा दिव्यरूपा

प्रलय तक सब कामनाओं से भरा पूरा रहेगा ॥ ४८ ॥ हे राजसिंह ! इस प्रकार वह पति के साथ रमण करने लगी उसका दिव्य भोग और दिव्य रूप हो गया और दिव्य अलंकारों से भूषित हो गई ॥४९॥ और दिव्य शरीर धारण किये शोभन भी मन्दराचल के शिखर पर रमा के व्रत के प्रभाव से उसके साथ रमण करने

लगा ॥ ५० ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! रमा नाम की एकादशी जो मैंने तुम्हारे सामने कही है यह चिन्तामणि अथवा कामधेनु के समान है ॥५१॥ और हे राजा ! जो उत्तम मनुष्य इसके व्रत को करते हैं उनके ब्रह्महत्यादि

दिव्याभरणभूषिता ॥ ४९ ॥ शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्य विग्रहः ॥ रमाव्रतप्रभावेण मन्दराचल सानुनि ॥ ५० ॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा कामधेनुसमाथवा ॥ रमाभिधाना नृपते तवाग्रे कथिता मया ॥५१॥ ईदृशं च व्रतं राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नाशं यान्ति न संशयः ॥ ५२ ॥ एकादश्या रमाख्याया माहात्म्यं शृणुयान्नरः ॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ५३ ॥ इति श्री ब्रह्मपुराणान्तर्गते कार्तिककृष्णैकादश्या माहात्म्यं समाप्तम् ॥

पाप नाश हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य इस रमानाम एकादशी का माहात्म्य सुनता है वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक में सुख भोगता है ॥ ५३ ॥ कार्तिककृष्ण एकादशी माहात्म्यं समाप्तम् ॥

138

अथ कार्तिकशुक्लैकादशी कथा ॥ श्रीनारदजी बोले ॥ हे पितामह ! अब प्रबोधिनी का महात्म्य कहिये, ब्रह्माजी ने कहा हे श्रेष्ठमुनि ! प्रबोधिनी के माहात्म्य को सुनो जो कि सब प्रकार के पापों को नाश और पुरुषार्थ को बढ़ानेवाली तथा ज्ञानियों को मुक्ति देनेवाली है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मण देवता ! इस पृथ्वी पर

अथ कार्तिकशुक्लैकादशी कथा ॥ श्रीनारद उवाच ॥ प्रबोधिन्यास्तुमाहात्म्यं कथयस्व पितामह ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्द्धनम् ॥ मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ १ ॥ तावद् गर्जन्ति विप्रेन्द्र गंगा भागीरथी क्षितौ ॥ यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी ॥ २ ॥ तावद् गर्जन्ति तीर्थानि ह्यासमुद्रं सरांसि च ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिकी ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि

भागीरथी गंगा तभी तक गर्जती हैं जब तक पापों को नाश करनेवाली कार्तिक की प्रबोधिनी एकादशी नहीं आती है ॥ २ ॥ और तब ही तक समुद्रपर्यन्त तीर्थ और पुण्यक्षेत्र तथा पुष्कर आदि सरोवर गर्जते हैं जब तक कार्तिक की विष्णुप्रबोधिनी नहीं आती है ॥ ३ ॥ हजारों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञों का फल

मनुष्य को एक प्रबोधिनी के व्रत से मिलता है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले ॥ कि एक बार भोजन करने से रात्रिमें भोजन करने से और उपवास करने से हे पितामह ! क्या पुण्य होता है वह सब मुझसे कहो ॥ ५ ॥ ब्रह्मा जी ने कहा कि एक बार भोजन करने से एक जन्म का और रात्रि में भोजन करने से दो जन्म का और उप-

राजसूय शतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या लभेन्नरः ॥४॥ नारद उवाच ॥ एकभुक्ते च किं पुण्यं किं पुण्यं नक्तभोजने ॥ उपवासे च किं पुण्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकभुक्तेन जन्मोत्थं नक्तेन द्विजनुर्भवम् ॥ सप्तजन्मभवं पापमुपवासेन नश्यति ॥६॥ यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्ये न तु गोचरम् ॥ यदप्यप्रार्थितं पुत्रं ददाति हरिबोधिनी ॥७॥ मेरु मन्दरमात्राणि पापान्युग्राणि यानि तु ॥ एकेनैवोपवासेन दहते पापहारिणी ॥८॥

वास करने से सात जन्म का पाप क्षय हो जाता है ॥६॥ और जो वस्तु दुर्लभ है और जो नहीं प्राप्त हो सकता और जो तीनों लोक में किसी को नहीं दिखाई पड़ता हे पुत्र ! वह सबको हरि बोधिनी बिना माँगे ही देती है ॥७॥ यह पाप को हरण करनेवाली मेरु और मन्दराचल के समान कठिन से कठिन पापों को एक उपवास,

करने से भस्म कर देती है ॥ ८ ॥ पूर्व में हजार जन्म में जो पाप इकट्ठा किया है सो प्रबोधिनी की रात्रि को जागरण करने से रुई के राशि के समान भस्म हो जाता है ॥ ९ ॥ हे मुनि सिंह ! जो कोई स्वभाव से विधिपूर्वक प्रबोधिनी के दिन उपवास करता है वह श्रेष्ठ फल को पाता है ॥ १० ॥ और जो मनुष्य कहे हुए पुण्य

पूर्वजन्म सहस्रस्तु यद्दुष्कर्म ह्युपार्जितम् ॥ जागरस्तत्प्रबोधिन्यां दहेत तूलराशिवत् ॥ ९ ॥
उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः ॥ विधिवन्मुनिशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥१०॥
यथोक्तं सुकृतं यस्तु विधिवत्कुरुते नरः ॥ स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठं मेरुतुल्यं भवेच्च तत् ॥ ११ ॥
विधिहीनं तु यः कुर्यात् सुकृतं मेरुमात्रकम् । अणुमात्रं न चाप्नोति फलं धर्मस्य नारद
॥ १२ ॥ ये ध्यायन्ति मनोवृत्त्या करिष्यामः प्रबोधिनीम् ॥ तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्म-

की विधि से करता है हे मुनि श्रेष्ठ ! वह थोड़ा भी सुमेरु पर्वत के समान हो जाता है ॥ ११ ॥ और जो पुण्य सुमेरु के बराबर हो परन्तु विधियुक्त न करने से हे नारद ! उस धर्म का फल लेशमात्र भी नहीं मिलता है ॥ १२ ॥ और जो मनुष्य मन में ध्यान करते हैं कि हम प्रबोधिनी का व्रत करें तो उनके पूर्व से संचित सैकड़ों

जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ और जो प्रबोधिनी के दिन रात्रि को जागरण करता है वह भूत भविष्य और वर्तमान दश हजार कुलों को विष्णुलोक में शीघ्र ही पहुंचा देता है ॥ १४ । इस प्रकार प्रबोधिनी के व्रत को करनेवाले के पितर विष्णुलोक में प्रसन्नता और अलंकार से युक्त होकर निवास करते हैं और पूर्व के

शतोद्भवम् ॥ १३ ॥ समतीतं भविष्यं च वर्तमानं कुलायुतम् ॥ विष्णुलोकं नयत्याशु प्रबोधिन्यां तु जागरात ॥ १४ ॥ वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोकेऽप्यलंकृताः ॥ विमुक्ता नारकैर्दुःखैः पूर्वकर्मसमुद्भवैः ॥ १५ ॥ कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः । कृत्वा तु जागरं विष्णोर्धौतपापो भवेन्मुने ॥ १६ ॥ दुष्प्राप्यं यत्फलं विप्रैरश्वमेधादिभिर्मखैः ॥ प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥१७॥ आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु दत्त्वा गाः काञ्चनं

कर्मों से उत्पन्न हुए नरक के दुःखों से भी छूट जाते हैं ॥१५॥ मनुष्य ब्रह्महत्यादि घोर पापों को करके जो पुण्य प्रबोधिनी की रात्रि को जागरण करने से सहज ही में मिल जाता है ॥१६॥ और सब तीर्थों में स्नान गौ सुवर्ण तथा भूमि इनको दानकरके मनुष्य उस फलको नहीं प्राप्त होता कि जो विष्णु के दिवस जागरण करनेसे

पाता है ॥ १८ ॥ इस संसार में वही पुण्यात्मा पुरुषका जन्मलेना अपना कुल पवित्र करना हुआ कि हे मुनि शार्दूल ! जिसने कार्तिक में प्रबोधिनी का व्रत किया ॥ १९ ॥ तीनों लोकों में जितने तीर्थ हैं वह सब इस

महीम् । न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरेः ॥ १८ ॥ जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पावितम् ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी ॥ १९ ॥ यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये संभवन्ति च ॥ तानि तस्य गृहे सम्यग् यः करोति प्रबोधिनीम् ॥ २० ॥ सर्वकृत्यं परित्यज्य तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ उपोष्यैकादशी रम्या कार्तिके हरिबोधिनी ॥२१॥ स ज्ञानी स च योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः । विष्णुप्रियतरा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी ॥२२॥ सकृदेनामुपोष्यैव मुक्तिभाक् च भवेन्नरः ॥ प्रबोधिनीमुपोषित्वा न गर्भं विशते नरः

प्रबोधिनी के व्रत से घरमें वास करते हैं ॥ २० ॥ इसलिये सब कर्मों को छोड़कर भगवान् को प्रसन्नता के लिये कार्तिक मास में सुन्दर प्रबोधिनी एकादशी का व्रत करना चाहिये ॥२१॥ वही ज्ञानी वही योगी वही तपस्या करनेवाला तपस्वी है और वही इन्द्रियों को वश में करनेवाला जितेन्द्रिय भी है जो प्रबोधिनी का व्रत करता है

यह धर्म के तत्व को देनेवाली विष्णु को बड़ी प्यारी है ॥ २२ ॥ मनुष्य इसका एकही बार व्रत करने से मोक्ष पाता है और मनुष्य प्रबोधिनी का व्रत करके फिर जन्म मरण के दुःसह दुःख को सहने के लिये गर्भ में नहीं आता है ॥२३॥ मन वचन कर्म से जो पाप इकट्ठा किया है उस पाप को गोविन्द भगवान् प्रबोधिनी की रात्रि

॥ २३ ॥ कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम् ॥ तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ २४ ॥ स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम् ॥ नरैर्यत्क्रियते वत्स प्रबोधिन्यां तदक्षयम् ॥२५॥ व्रतनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम् ॥ विराजयन् दिशाः सर्वाः प्रयाति भवनंहरेः ॥२६॥ बाल्ये यच्चार्चितं वत्स यौवने वार्धके तथा ॥ शतजन्म कृतं पापं स्वल्पं वा बहुलं बहुः ॥ तत्क्षालयति गोविन्दो ह्यस्यामभ्यर्चितो मुने ॥२७॥ चन्द्रसूर्यो-

के जागरण करने से धो देते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य प्रबोधिनी के दिन भगवान के नामपर स्नान दान जप होम करते हैं तो हे पुत्र ! वह अक्षय हो जाता है ॥ २५ ॥ मनुष्य इस प्रबोधिनी के व्रत से भगवान् को प्रसन्न करके सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ विष्णु के परम धामको पहुँचता है ॥२६॥ और हेपुत्र ! बालक-

पन, युवापन, वृद्धापन, में जो पाप सौ जन्म में संचित किया है वह थोड़ा हो चाहे बहुत हेनारद ! इस एकादशी के दिन भगवान का पूजन और जागरण करने से उसे धो देते हैं ॥ २७ ॥ सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण का जो फल कहा है उससे हजार गुना अधिक फल प्रबोधिनी के जागरण का है ॥ २८ ॥ मनुष्य ने जन्म से लेकर जितना

१४० परागे च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥ तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥२८॥ जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणासादितं भवेत् ॥ वृथा भवति तत्सर्वमकृतं कार्तिकव्रते ॥ २९ ॥ अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिके यः क्षिपेन्नरः ॥ जन्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं प्राप्नोति नारद ॥ ३० ॥ तस्मात्त्वया प्रयत्नेन देवदेवो जनार्दनः ॥ उपासनीयो विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदः ॥ ३१ ॥ परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णु तत्परः ॥ अवश्यं स नरो वत्स चान्द्रायण फलं

पुण्य इकट्ठा किया है वह सब कार्त्तिक की एकादशी का व्रत न करने से वृथा हो जाता है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य १४०
विष्णु भगवान का नियम किये बिना कार्तिक मास को खो देता है हेनारद ! वह जन्म भर के जोड़े हुए पुण्य का फल नहीं पाता है ॥ ३० ॥ इसलिये हे ब्रह्मर्षि ! तुम्हें सब प्रकार से यत्न पूर्वक सब कामनाओं के फल को

देनेवाले देव देवेश भगवान का पूजन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य विष्णुभक्त होकर कार्तिक में पराये अन्न को त्यागकर देता है हेपुत्र ! वह मनुष्य अवश्यही चान्द्रायण व्रत का फल पाता है ॥ ३२ ॥ और हेश्रेष्ठ मुनि ! कार्तिक मासमें भगवान मधुसूदन यज्ञों और दानों से ऐसे प्रसन्न नहीं होते कि जैसे शास्त्रोंकी कथा से

लभेत् ॥ ३२ ॥ न तथा तुष्यते यज्ञैर्नदानैर्मुनि सत्तम ॥ यथा शास्त्र कथालापैःकार्तिके मधुसूदनः ॥ ३३ ॥ ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्येश्रृण्वन्ति समाहिताः ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा कार्तिके गोशतं फलम् ॥ ३४ ॥ श्रेयसेन्नोभबुद्धया वा यः करोति हरेः कथाम् ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल ? कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ३५ ॥ नियमेन नरो यस्तु शृणुते वैष्णवीं कथाम् ॥ कार्तिकेतु विशेषेण गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ३६ ॥ प्रबोधवासरे विष्णोः कुरुते यो

होते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य कार्तिक मास में विष्णु की कथा को एकश्लोक वा आधा श्लोक भी सावधान हो कर कहते सुनते हैं उन्हें सौ गौ दान करने का फल प्राप्त होता है ॥३४॥ और हेमुनि श्रेष्ठ ! जो पुरुष कार्तिक मास में भगवान की कथा को कल्याण के लिये वा लोभ की बुद्धि से कहता है वह अपने सैकड़ों कुलों को तार

142

देता है ॥ ३५ ॥ जो पुरुष विशेष कर कार्तिकमास में विष्णु की कथा को नियम से सुनता है उसे हजार गौ दान से भी अधिक पुण्य मिलता है ॥३६॥ जो प्रबोधिनी के दिन विष्णु भगवान की कथा कहता है तो हे मुनीश्वर ! वह सात द्वीपों सहित भूमिदान करने का फल प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! जो कोई

हरेः कथाम् ॥ स तिद्वीपवती दान फलं सलभते मुने ॥ ३७ ॥ श्रुत्वाविष्णुकथां दिव्यां ये ऽर्चयन्ति कथाविदम् ॥ स्वशक्त्या मुनिशार्दूल तेषां लोकाः सनातनाः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रवीत् ॥ नारदउवाच ॥ विधानंब्रूहि मे स्वामिन्नेकादश्यासुरोत्तम ॥ ३९ ॥ चीर्णेन ये न भगवन्याहृशं फलमाप्नुयात ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ह्येकादश्यां द्विजोत्तम ॥ स्नानं चैव प्रकु

भगवान की सुन्दर कथा को सुनकर कथा बाचनेवाले का पूजन अपनी शक्ति के अनुसार करते हैं उनको सनातन लोक मिलता है ॥३८॥ ब्रह्माजीका वचन सुनकर फिर नारदजी पूछने लगे नारदजी बोले, हे ब्रह्मदेव ! हे सुरोत्तम ! हेस्वामी ! मुझसे इस एकादशी का विधान कहिये ॥ ३९ ॥ कि जिसको करने से हे भगवन् !

ऐसा फल मिले। नारदजी का वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा ॥४०॥ ब्रह्माजी बोले हे द्विजोत्तम! एकादशी के दिन दो घड़ी रात रहते उठकर शौच दतवन आदि कर्मों से निपट कर स्नान करना चाहिये ॥४१॥ और हे महा-भाग नदी वा तालाब अथवा कुयें पर वा बावली में अथवा घरही पर स्नान करके नियम के लिये इस मंत्र को

र्तव्यं दंतधावनपूर्वकम् ॥ ४१ ॥ नद्यांतड़ागे कूपे वा वाप्यां गेहे तथैवच ॥ नियमार्थे महा-भाग इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ४२ ॥ एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परेह्यहम् ॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ ४३ ॥ गृहीत्वानेन नियमं देव देवं च चक्रिणम् ॥ संपूज्यभक्त्या तुष्टात्मा ह्युपवासं समाचरेत् ॥ ४४ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् देवदेवस्य सन्निधौ ॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च कुर्यात्कृष्णकथां मुने ॥४५॥ बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरु-

पढ़े मैं एकादशी के दिन निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा हे भगवान! हे पुण्डरीकाक्ष! मेरी रक्षा करो मैं आपकी शरण हूँ ॥ ४३ ॥ इस नियम को ग्रहण करके भक्तिपूर्वक देवताओं के देव विष्णु भगवान का पूजन करके प्रसन्न चित्त से उपवास करे ॥ ४४ ॥ और फिर रात्रि में भगवान् के सन्मुख जागरण करे और

हे मुनि ! गीत गावे नृत्य करै, वाजा बजावे और भगवान की कथा कहै ॥ ४५॥ कार्तिक की प्रबोधिनी एकादशी के दिन बहुत से पुष्प फल कपूर अगर और कुमकुम से भगवानकी पूजा करे ॥ ४६ ॥ और एकादशी के दिन धनका लोभ न करे अनेक प्रकार के सुन्दर फलों से एकादशी के दिन भक्ति सहित ॥४७॥ शंख में जल

कुंकुमैः ॥ हरेः पूजा विधातव्या कार्तिक्यां बोधवासरे ॥ ४६ ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे ॥ फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः प्रबोधिन्यां तु भक्तितः ॥४७॥ शंखतोयं समादाय ह्यर्घोदेयो जनार्दने ॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥४८॥ तत्फलं कोटिगुणितं दत्तेर्घे बोधवासरे ॥ अगस्त्य कुसुमैर्देवं पूजयेद्योजनार्दनम् ॥ ४९ ॥ देवेन्द्रोऽपि तदग्रे च करोति करसंपुटम् ॥ न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः ॥ ५० ॥ यत्करोति हृषीकेशो मुनिपुष्पैरलंकृतः ॥

अक्षत फल पुष्प रखकर भगवान को अर्घ्य देवे । जो फल सब तीर्थों में है और जो फल सब दानों में है ॥ ४८ ॥ उससे करोड़ गुणा अधिक फलप्रबोधिनी के दिन भगवान को अर्घ्य देने में है । जो अगस्त्य के पुष्पों से भगवान का पूजन करता है ॥ ४९ ॥ तो उसके समान इन्द्र हाथ जोड़ता है । और हे विप्रेन्द्र तपस्या से

सन्तुष्ट होकर भगवान वह बात नहीं करते हैं कि जो अगस्त्य के पुष्प चढ़ाने से करते हैं हे कलिवर्द्धन जो कार्तिक में बिल्व पत्रोंसे भगवान ॥ ५१ ॥ को भक्ति श्रद्धासहित पूजते हैं उनको मेरी कही हुई भक्ति मिलती है। जो कोई कार्तिक में तुलसी के दल और पुष्पों से भगवान् की पूजा करते हैं ॥ ५२॥ तो भगवान

बिल्वपत्रैश्च ये कृष्णं कार्तिके कलिवर्द्धन ॥ ५१ ॥ पूजयन्ति महद्भक्त्या मुक्तिस्तेषां मयोदिता ॥ तुलसीदलपुष्पैर्ये पूजयन्ति जनार्दनम् ॥ ५२ ॥ कार्तिके संदहेत्तेषां पापं जन्मायुतोद्भवम् ॥ दृष्टा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता ॥५३॥ रोपिता सो चिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥ नवधा सेविता भक्त्या कार्तिके यैर्दिनेदिने ॥ ५४॥ युगकोटि सहस्राणि ते वसंति हरेर्गृहे ॥ रोपिता तुलसीर्यैस्तु वर्धते वसुधातले ॥ ५५ ॥ कुले तेषां तु

उनके दशहजार वर्ष का पाप भस्म कर देते हैं, देखना, स्पर्श करना ध्यान करना, कीर्तन करना, स्तुति करना, नमस्कार करना ॥ ५३ ॥ लगाना सींचना, और नित्य पूजा करना नौ प्रकार की भक्ति से जो लोग सुन्दर तुलसी की सेवा कार्तिक मास में नित्य करते हैं ॥५४॥ तो वह अपने पितरों के सहित करोड़ों हजारों युग तक

विष्णुलोक में वास करते हैं पृथ्वी में जिनकी लगाई हुई तुलसी बढ़ती फैलती है ॥ ५५ ॥ तो उनके कुल में जो उत्पन्न हुए हैं और जो होंगे अथवा जो मरे हैं उनका दो हजार वर्ष तक वैकुण्ठ में वास होता है ॥ ५६ ॥ और जो मनुष्य कदंब के फूल से भगवान की पूजा करते हैं उनको भगवान की कृपा से यमराज के घरमें वास

ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः ॥ आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥ ५६ ॥ कदंब कुसुमैर्देवं येर्चयन्ति जनार्दनम् ॥ तेषां यमालयेनैव प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वा कदम्ब कुसुमं प्रीतो भवति केशवः ॥ किंपुनः पूजितो विप्रः सर्वकामप्रदो हरिः ॥५८॥ यैः पुनः पाटलापुष्पैः कार्त्तिके गरुड़ध्वजम् ॥ अर्चयेत्परयाभक्त्या मुक्तिभागी भवेद्द्विजः ॥ ५९ ॥ बकुलाशोककुसुमैर्येऽर्चयन्तिजगत्पतिम् ॥ विशोकास्ते भविष्यन्ति यावच्चन्द्र

नहीं मिलता है ॥ ५७ ॥ भगवान् कदंब के पुष्प को देखते ही प्रसन्न हो जाते हैं हे नारद ! फिर पूजन करने से भगवान् सब कामनाओं को क्यों नहीं देंगे अर्थात् अवश्य देवेंगे ॥५८॥ जो कोई कार्तिक में पाटल के पुष्पों से परम भक्ति और श्रद्धापूर्वक भगवान की पूजा करते हैं वह परम पद को पाते हैं ॥ ५९ ॥ जो कोई मौल-

सिरी और अशोक के फूलों से भगवान् की पूजा करते हैं वे जब तक सूर्य चन्द्रमा हैं तब तक शोक से रहित रहते हैं ॥ ६० ॥ जो कोई कनैल के श्वेत और लाल पुष्पों से भगवान की पूजा करते हैं हे नारद! भगवान उन पर सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य भगवान के ऊपर आम के मौर को चढ़ाते हैं भगवान उस पुरुष

दिवाकरौ ॥ ६० ॥ येऽर्चयन्ति जगन्नाथं करवीरैः सितासितैः ॥ तेषां सदा तु विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः ॥ ६१ ॥ मंजरी सहकारस्य केशवोपरि ये नराः ॥ यच्छन्ति ते महाभागा गोकोटिफलभागिनः ॥ ६२ ॥ दूर्वाङ्कुरैर्हरेर्यस्तु पूजाकाले प्रयच्छति ॥ पूजाफलं शतगुणं सम्यगाप्नोति मानवः ॥ ६३ ॥ शमीपत्रैस्तु ये देवं पूजयन्ति सुखप्रदम् ॥ यम मार्गो महाघोरो निस्तीर्णस्तैस्तु नारद ॥६४॥ वर्षाकाले तु देवेशं कुसुमैश्चंपकोद्भवैः ॥ येऽर्चयन्ति

को करोड़ गौदान का फल मिलता है ॥६२॥ जो पूजा के समय भगवान को दूब का अंकुर चढ़ाते हैं उन पुरुषों का पूजा का सौगुण फल अधिक मिलता है ॥६३॥ हे नारद ! जो पुरुष सुख देनेवाले भगवान की शमी पत्रों से पूजा करते हैं वे यमराज के महाभयंकर मार्ग से पार होजाते हैं ॥ ६४ ॥ जो वर्षाकाल में चंपा के फूलों से

भगवान की पूजा करते हैं वे मनुष्य संसार में फिर नहीं आते हैं ॥६५॥ जो मनुष्य भगवान का पीत केतकी के पुष्प को चढ़ाते हैं उनके कोटि जन्म के पापों को भस्म कर देते हैं ॥ ६६ ॥ जो भगवान को केसर के समान

न तं मर्त्याः संसरेयुः पुनर्भवे ॥ ६५ ॥ सुवर्ण केतकीपुष्पं यो ददाति जनार्दने ॥ कोटि जन्मार्जितं पापं दहते गरुड़ध्वजः ॥ ६६ ॥ कुंकुमारुण वर्णां च गंधाढ्यां शतपत्रिकाम् ॥ यो ददाति जगन्नाथे श्वेतद्वीपालये वसेत् ॥ ६७ ॥ एवं संपूज्य रात्रौ च केशवं भुक्ति मुक्तिदम् ॥ प्रातरुत्थाय च ब्रह्मन् गत्वा तु सजलां नदीम् ॥६८॥ तत्र स्नात्वा जपित्वा च कृत्वा पौर्वाह्णिकी क्रियाः ॥ गृहं गत्वा च संपूज्य केशवो विधिवन्नरैः ॥ ६९ ॥ व्रतस्य पूरणार्थाय ब्राह्मणान्भोजयेत्सुधीः ॥ क्षमापयेत्सुवचसा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ७० ॥

अरुण वर्ण शतपत्रिका को गंधलगाकर चढ़ाते हैं। वह मनुष्य श्वेत द्वीप में निवास करते हैं ॥ ६७ ॥ इस प्रकार भुक्ति मुक्ति को देनेवाले भगवान की पूजा रात्रि में करै और हे नारद ! प्रातः काल उठकर सुन्दर जल से भरी हुई नदी को जावे ॥ ६८ ॥ वह स्नान सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर फिर घर में

आकर विधि पूर्वक भगवान का पूजन करे ॥ ६९ ॥ बुद्धिमान को चाहिये कि व्रत के पूर्ण होने के समय ब्राह्मणों को भोजन करावे फिर भक्ति पूर्वक सुन्दर वाणी से क्षमा मांगे ॥ ७० ॥ फिर भोजन वस्त्र से गुरु की पूजा करके भगवान् की प्रसन्नता के लिये दक्षिणा और गौका दान करे ॥ ७१ ॥ फिर प्रयत्नपूर्वक

गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः ॥ दक्षिणागौश्च दातव्या तुष्टयर्थं चक्रपाणिनः ॥ ७१ ॥ भूयसी चैव दातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ॥ नियमश्चैव सन्त्याज्यो ब्राह्मणाग्रे प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तु दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ नक्तभोजी नरो राजन् ब्राह्मणान् भोजयेच्छुभान् ॥ ७३ ॥ अयाचिते बलीवर्दं साहिरण्यं प्रदापयेत् ॥ अमांसाशी नरो यस्तु प्रददेद्गाम् स दक्षिणाम् ॥७४॥ धात्रीस्नायी नरो दद्याद्दधिमाक्षिक

ब्राह्मणों को यथा शक्ति भूयसी दक्षिणा देकर उन ब्राह्मणों के सामने प्रयत्नपूर्वक पहिले किये हुए नियम को त्यागदेवे ॥ ७२ ॥ और कहकर ब्राह्मणों को यथा शक्ति दक्षिणा देवे हेराजन् ! रात्रिमें भोजन करने वाला
२५ व्रती मनुष्य अच्छे अच्छे ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ७३ ॥ और अयाचित व्रत में सुवर्ण सहित बैलका दान करे और जो मनुष्य चार महीने तक मास नहीं खाता है वह दक्षिणा सहित गौ दान करे ॥ ७४ ॥ और

आंवला से स्नान करने वाला मनुष्य दही और शहद का दान करै और हे राजन्! फलोंके व्रत में फलों ही का दान करे ॥ ७५ ॥ तैलके जगह घी का दान करे और घीके अभाव में दूध का दान करे और धानों के व्रत में हेराजन् धान के चावल का दान करना चाहिये ॥ ७६ ॥ और भूमिपर सोने में तुलादान करे अथवा

मेवच ॥ फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥ ७५ ॥ तैलस्थाने घृतं देयं घृत स्थाने पयस्स्मृतम् ॥ धान्यानां नियमे राजन् दीयन्ते शालितण्डुलाः ॥७६॥ दद्याद्भूशयने शय्या सतूलां सपरिच्छदाम् ॥ पत्रभोजी नरो दद्याद्भाजनं घृत संयुतम् ॥ ७७ ॥ मौने घंटां तिल-श्चैव सहिरण्यं प्रदापयेत् ॥ धारणेतु स्वकेशानामादर्शं दापयेद्बुधः ॥ ७८ ॥ उपानहौ प्रदातव्यावुपानत्परिवर्जनात् ॥ लवणस्यचसंत्यागे शर्करांच प्रदापयेत् ॥ ७९ ॥ नित्यं

सामग्री सहित शय्यादान करे जो मनुष्य पत्र खाकर रहा हो वह घीसे पूर्ण करके पात्र का दान करे ॥ ७७ ॥ वह सुवर्णसहित घंटे तथा तिल का दान करे, और जो चौर न करानेका व्रत किया हो वह व्रत के अन्त में दर्पण का दान करे ॥ ७८ ॥ और जिसने जूता पहिरना छोड़ दिया हो वह जूतों का दान करे, और जिसने

निमक खाना छोड़ दिया हो वह शर्करा दान करे। और जिसने विष्णु के तथा और देवताओं के मन्दिरों में नित्य दीपक चढ़ाया हो वह तांबे या सोने का दिया बत्ती बनाकर उसमें घी भर कर ॥ ८० ॥ व्रत को पूर्ण होने के लिये वैष्णव ब्राह्मण को देवे। और जिसने एक दिन के अन्तर से व्रत किया हो वह आठ घड़ों का

दीपप्रदो यस्तु विष्णोर्वा त्रिबुधालये ॥ सदीपं सघृतं ताम्रं कांचनं वा दशायुतम् ॥ ८० ॥
प्रदद्याद्विष्णु भक्ता ये व्रत सम्पूर्तिहेतवे ॥ एकान्तरोपवासेन कुंभानष्टौ प्रदापयेत् ॥ ८१ ॥
सवस्त्रान् काञ्चनोपेतान् सवासालंकृताञ्छुभान् ॥ यथोक्त करणेशक्तिर्यदि नस्यात्तदानृप॥८२॥
द्विजवाक्यं स्मृतं राजन् सम्पूर्णं व्रत सिद्धिदम् ॥ नत्वा विसर्जयेद्विप्रां स्ततो भुञ्जीत च
स्वयम् ॥ ८३ ॥ यत्त्यक्तं चतुरोमासान् समार्षि तस्य चाचरेत् ॥ एवं य आचरेत्पार्थ सोऽन-

दान करैं ॥ ८१ ॥ और उन सबको वस्त्र उढ़ावे उनमें सोना धरैं और हे राजा ! जैसा कहा है इसको करने की सामर्थ्य नहो तो ॥ ८२ ॥ हेराजन् ! ब्राह्मणों का आशीर्वाद ही सब सिद्धियों को देनेवाला है, नमस्कार करके ब्राह्मणों को विदा करैं और फिर आप भोजन करे ॥ ८३ ॥ जिस वस्तु का चार महीने से त्याग किया

है उसकी समाप्ति करे। हे युधिष्ठिर ? ऐसा जो करता है ॥ ८४ ॥ हे राजेन्द्र ? अन्त में वह मनुष्य विष्णुलोक को जाता है और हे राजन् ? जो चार महीने के व्रत को निर्विघ्न पूरा कर लेता है ॥ ८५ ॥ वह कृतकृत्य होकर फिर मनुष्यका जन्म नहीं पाता है। हे राजन् ! यह करने से व्रत पूर्ण होजाता है ॥ ८६ ॥ जो व्रत भ्रष्ट

न्तफलमाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरं व्रजेत ॥ यश्चाविघ्नं समाप्यैव चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥ ८५ ॥ स भवेत्कृत कृत्यस्तु न पुनर्मानुषो भवेत् ॥ एतत्कृत्वा महीपाल परिपूर्णं व्रते भवेत् ॥ ८६ ॥ व्रतं वैकल्यमासाद्य ह्यन्धः कुष्ठी प्रजायते ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टो ऽहमिहत्वया ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ८७ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत कार्तिकशुक्लैकादश्याः प्रबोधिन्या माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

हो जावे तो मनुष्य कुष्टी वा अन्धा हो जाता है। जो तुमने मुझसे पूछा था वह सब मैंने कह दिया, इसको जो कोई पढ़े व सुनेगा उसे एक सहस्रगोदान का फल प्राप्त होगा ॥ कार्तिक शुक्लएकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

अथ अधिकमास शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले ॥ हे जनार्दन ! मलमास के शुक्लपक्ष में कौनसी एकादशी होती है उसका नाम क्या है क्या विधि है सो कहिये ॥ १ ॥ श्री कृष्णजी बोले ॥ मलमास की बड़ी पवित्र एकादशी होती है उसका पद्मिनी नाम है प्रयत्नपूर्वक उसका उपवास करने से वह मनुष्य को विष्णुलोक

अथाधिक शुक्लैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य कोवा एकादशी भवेत् ॥ किंनाम कोविधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥ १ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ मलमासस्य या पुण्या प्रोक्ता नाम्ना च पद्मिनी ॥ २ ॥ सोपोषिता प्रयत्नेन पद्मनाभपुरं नयेत् ॥ २ ॥ मलमासे महापुण्या कीर्तिता कल्मषापहा ॥ तस्याः फलं कथयितुं न शक्तश्चतुराननः ॥ ३ ॥ नारदाय पुरा प्रोक्तं विधिना व्रतमुत्तमम् ॥ पद्मिन्याःपापराशिघ्नं भुक्ति मुक्ति फलप्रदम् ॥ ४ ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुरारेस्तु प्रोवाचातिमुदान्वितः ॥ युधिष्ठिरो

में पहुंचा देती है ॥ २ ॥ मलमास की एकादशी बड़ी पवित्र और पापों को नाश करने वाली है उसके फलको ब्रह्मा भी नहीं कह सकते हैं ॥ ३ ॥ पहिले ब्रह्माजी ने नारद जी के लिये पाप समूह को नाश करने वाली

और भुक्तिमुक्ति देने वाली इस पद्मिनी के उत्तम व्रतकी कथा कहा था ॥ ४ ॥ भगवान का वचन सुनकर धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न होकर भगवान से उस एकादशी की विधिको पूछने लगे ॥ ५ ॥ राजा के वचन को सुनकर श्रीकृष्णजी बोले हे राजा ! सुनो मैं तुम से इसके व्रत को कहता हूँ कि मुनियों को भी प्रगट

१५ जगन्नाथं विधिं पप्रच्छ धर्मवित ॥ ५ ॥ श्रुत्वा राज्ञस्तु वचनमुवाचमधुसूदनः । शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि मुनीनामत्यगोचरम् ॥ ६ ॥ दशमीदिवसे प्राप्ते व्रतारंभो विधीयते ॥ कांस्यं मांसं मसूरंच चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥ ७ ॥ शाकंमधुपरान्नं च दशम्यामष्ट वर्जयेत ॥ हविष्यान्नं च भुंजीत अक्षार लवणं तथा ॥ ८ ॥ भूमिशायी ब्रह्मचारी भवेच्च दशमी दिने ॥ एकादशीं दिने प्राप्ते प्रातरुत्थाय सादरम् ॥ ९ ॥ विधाय च मलोत्सर्गं न

नहीं है ॥ ६ ॥ दशमी के दिन से व्रतको आरम्भ किया जाता है, दशमी के दिन कांसे के बर्तनमें भोजन, मास, मसूर, चना, कोदो, ॥ ७ ॥ शाक, मधु और पराया अन्न ये आठ वस्तु को त्याग देवे । और हविष्यान्न जो चावल सेंधा लवण भोजन करे ॥ ८ ॥ दशमी के दिन भूमिपर सोवे ब्रह्मचर्य से रहे, जब एकादशी का दिन आवै तो बड़ी उत्कण्ठा से प्रातःकाल उठकर ॥ ९ ॥ मल त्यागकर और काष्ठ की दतुवन

न करके जल से बारह कुल्ला करके शुद्ध और सावधान हो जावे ॥ १० ॥ फिर बुद्धिमान पुरुष सूर्य को उदय होने पर शुभ तीर्थ में स्नान के लिये जावे। गोबर, मिट्टी, तिल और पवित्र कुशा ॥ ११ ॥ आँवला का चूर्ण ये शरीर में लगाकर विधि पूर्वक स्नान करे और इस मंत्र को पढ़े कि सौ भुजा वाले बाराह रूपी कृष्ण ने

कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ कृत्वा द्वादशगण्डूषाञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ १० ॥ सूर्योदये शुभे तीर्थे स्नानार्थं प्रव्रजेत्सुधीः ॥ गोमयं मृत्तिकां गृह्य तिलान्दर्भाञ्छुचींस्तथा ॥ ११ ॥ चूर्णैरामलकी भूतैर्विधिना स्नान माचरेत् ॥ उद्धृतासि बराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ १२ ॥ मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमन्त्रिता ॥ हरिपूजन योग्यं मां मृत्तिके कुरुते नमः ॥ १३ ॥ सर्वौषधिसमुत्पन्नं गवोदरमधिष्ठितम् ॥ पवित्रकरणं भूमेर्मां पावयतु गोमयम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मष्ठी-

तुझे उठाया है ॥ १२ ॥ और परशुराम जी से ब्राह्मणों को दी गई है और कश्यपजी से अभिमन्त्रित की गई ऐसी हे मृत्तिके ! तुझे नमस्कार है तू मुझे भगवान की पूजा के योग्य कर ॥ १३ ॥ सब औषधियों से उत्पन्न गौके पेटमें स्थित पृथ्वी को पवित्र करनेवाला गोबर मुझे पवित्र करे ॥ १४ ॥ ब्रह्मा के थूक से उत्पन्न

जगत् को पवित्र करनेवाली धात्री मैंने तेरा स्पर्श किया है तू मेरे अंग को निर्मल और पवित्र कर मैं तुझे नमस्कार करता हूं ॥ १५ ॥ हे देवों के देव हे जगन्नाथ! शंखचक्रगदाधर! हे विष्णुभगवान्! अपने तीर्थों में स्नान करनेकी मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ वरुण के मन्त्रों का जप करे, गंगा आदि तीर्थों का स्मरण करके

वन संभूता धात्री भुवन पावनी ॥ संस्पृष्टा पावयाङ्गं मे निर्मलं कुरुते नमः ॥ १५ ॥ देव देव जगन्नाथ शंखचक्र गदाधर ॥ देहि विष्णो ममानुज्ञां तव तीर्थविगाहने ॥ १६ ॥ बारुणांश्च जपेन्मंत्रान् स्नानं कुर्याद्विधानतः ॥ गंगादि तीर्थं संस्मृत्य यत्र कुत्र जलाशये ॥ १७ ॥ पश्चात् संमार्जयेद् गात्रं विधिना नृपसत्तम ॥ परिधायाहतंवासः शुक्लां शुचिमखंडितम् ॥ १८ ॥ सन्ध्यामुपास्य विधिना तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् ॥ हरेर्मंदिरमागम्य

जहाँ कहीं जलाशय हो वहाँ विधि पूर्वक स्नान करे ॥ १७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! फिर शरीर को विधि से मार्जन करे और उज्वल पवित्र को धारण करे ॥ १८ ॥ और विधिपूर्वक संध्या करके देवता और पितरों के लिये तर्पण करके भगवान के मन्दिर में जाकर विष्णुका पूजन करे ॥ १९ ॥ एक मासे की सोने की बनी

हुई राधा कृष्ण की और शिव सहित पार्वती का विधि पूर्वक पूजन करे ॥ २० ॥ धान्य के ऊपर तांबेका वा मिट्टी का कुम्भ स्थापित करे उसे सुन्दर वस्त्र उढ़ाकर चन्दन आदि उत्तम गंध लगाकर लेपन करे ॥ २१ ॥ ऊपर सोने वा चांदी तथा तांबे का पात्र रखकर उसपर फिर भगवान की मूर्ति की स्थापना करके विधि पूर्वक

पूजयेत्कमलापतिम् ॥ १९ ॥ स्वर्णमाषकृतं देवं राधिका सहितं हरिम् ॥ पार्वत्या सहितं शंभुं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ २० ॥ धान्योपरिन्यसेत्कुम्भं ताम्रंमृन्मयमेव वा ॥ दिव्यवस्त्र समायुक्तं दिव्यगन्धानुवासितम् ॥ २१ ॥ तस्योपरिन्यसेत्पात्रं ताम्रं रौप्यं हिरण्मयम् ॥ तस्मिन् संस्थापयेद्देवं विधिना पूजयेत्ततः ॥ २२ ॥ संस्नाप्य सलिलैः श्रेष्ठैः गंधधूपादि वासितैः ॥ चन्दनागरु कर्पूरैः पूजयेद्देवमीश्वरम् ॥ २३ ॥ नानाकुसुम कस्तूरी कुंकुमेन सिताम्बुजैः ॥ तत्काल जातैः कुसुमैः पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ २४ ॥ नैवेद्यैर्विविधैः शक्त्या तथा

उनका पूजन करे ॥ २३ ॥ और अनेक प्रकार के पुष्प कस्तूरी केसर श्वेतकमल और उस ऋतु में होने वाले पुष्पों से भगवान का पूजन करे ॥ २४ ॥ धूप दीप तथा अनेक प्रकार के वा यथा शक्ति नैवेद्य चढ़ावे

और कपूर की आरती उतारे इस प्रकार भगवान् और शिवजी का पूजन करै फिर उनके आगे भक्ति पूर्वक नृत्य करे गीत गावे और उस दिन पतित और पापियों के साथ बात चीत न करे और उनको स्पर्श न करे ॥ २५ ॥ और उस दिन मिथ्या न बोले सत्य से पवित्र बचन बोलै । रजस्वला को न स्पर्श करे और

नीराजनादिभिः ॥ धूपैर्दीपैः सकर्पूरैः पूजयेत्केशवं ? शिवम् ॥ २५ ॥ नृत्यं गीतं तदग्रे तु कुर्याद्भक्ति पुरःसरम् ॥ नालपेत्पतितान् पापान् स्तस्मिन्नहनि न स्पृशेत् ॥ २६ ॥ नानृतं हि वदेद्वाक्यं सत्यपूतं वचो वदेत् ॥ रजस्वलां न स्पृशेच्च न निन्देद् ब्राह्मणं गुरुम् ॥ २७ ॥ पुराणं पुरतो विष्णो, शृणुयात् सह वैष्णवैः ॥ निर्जला सा प्रकर्तव्या याचशुक्के मलिम्लुचे ॥ २८ ॥ जलपानेन वा कुर्यात दुग्धाहारेण नान्यथा ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्

ब्राह्मण तथा गुरुकी निन्दा न करै ॥ २७ ॥ और विष्णु के आगे वैष्णवों सहित पुराण सुनै और मलमास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को निर्जल करै ॥ २८ ॥ और जो निराहार न रह जाय तो जल अथवा दूध पीकर आहार करले और कुछ भोजन न करे गीत और बाजा से युक्त हो रात्रि में जागरण करे ॥ २९ ॥ और प्रहर

प्रहर के बाद विष्णु भगवान और शिवजी का पूजन करे। पूजन के पहिले प्रहर में नारियल का अर्घ्य देवे ॥ ३० ॥ दूसरे प्रहर में बिल्वका तीसरे में बिजौरा नीबूका चौथे प्रहर में सुपारी और विशेष करके नारंगियों से पूजन करे ॥ ३१ ॥ पहिले प्रहर के पूजन से अग्निष्टोम यज्ञका फल दूसरे से वाजपेय का, तीसरे से अश्व-

गीत वादित्र संयुतम् ॥ २९ ॥ प्रहरे प्रहरे पूजा कार्या विष्णोः शिवस्यच ॥ प्रथमे प्रहरे दद्यान्नारिकेलार्घमुत्तमम् ॥ ३० ॥ द्वितीये श्रीफलैश्चैव तृतीये बीजपूरकैः ॥ चतुर्थ प्रहरे पूगैर्नारिंगैश्च विशेषतः ॥ ३१ ॥ प्रथमे प्रहरे पुण्यमग्निष्टोमस्य जायते ॥ द्वितीये वाजपेयस्य तृतीये हयमेधजम् ॥ ३२ ॥ चतुर्थे राजसूयस्य जाग्रतो जायते फलम् ॥ नातः परतरं पुण्यं नातः परतरा मखाः ॥ ३३ ॥ नातः परतरा विद्या नातः परतरं तपः ॥ पृथिव्यां यानि

मेध का फल मिलता है ॥ ३२ ॥ और चौथे प्रहर की पूजा से जागने वाले को राजसूय यज्ञ का फल मिलता है इससे बढ़कर कोई पुण्य और कोई यज्ञ नहीं है ॥ ३३ ॥ इससे बढकर कोई विद्या और तपस्या नहीं है। पृथ्वी में जितने तीर्थ क्षेत्र और स्थान है ॥ ३४ ॥ उन सब को देखलिया और उनमें स्नान कर लिया कि

151

जिसने भगवान् का व्रत किया, इस प्रकार जागरण करना चाहिये कि जब तक सूर्य उदय न हो जावे॥ ३५ ॥ जब सूर्य का उदय हो जावे तब शुभ तीर्थों में जाकर स्नान करे और स्नानोत्तर घर पर आकर ईश्वर भगवान का पूजन करे ॥ ३६ ॥ पहिले कही हुई विधि से अच्छे अच्छे ब्राह्मणों को भोजन करावे और विष्णु की

तीर्थानि क्षेत्राण्यायतनानिच ॥ ३४ ॥ तेन स्नातानि दृष्टानि येनाकारि हेर्व्रतम् ॥ एवं जागरणं कुर्याद्यावत् सूर्योदयो भवेत् ॥ ३५ ॥ सूर्योदये शुभे तीर्थे गत्वा स्नानं समाचरेत् ॥ स्नात्वा चागत्य भवनं पूजयेद्देवमीश्वरम् ॥ ३६ ॥ पूर्वोदितेन विधिना भोजयेद् ब्राह्मणाञ्छुभान् ॥ कुंभादिकं च यत्सर्वं प्रतिमां केशवस्य च ॥३७॥ पूजयित्वा विधानेन ब्राह्मणाय समर्पयेत ॥ एवं विधे व्रतं यो वै कुरुते भुवि मानवः ॥ ३८ ॥ सफलं जायते जन्म तस्य

प्रतिमा के सहित कुम्भ आदि जितनी वस्तु हैं ॥ ३७ ॥ उन्हें विधि से पूजा करके ब्राह्मण को दे देवे। जो मनुष्य पृथ्वीपर इस प्रकार व्रत करता है ॥ ३८ ॥ उसका जन्म सफल है और वह व्रत उसे मुक्तिका फल देता है । हे युधिष्ठिर ! जो तुम ने मुझसे पूछा था सो सब मैंने तुमसे कहा ॥३९॥ हे राजनन्दन ! जो मनुष्य

प्रीति से पद्मिनी एकादशी के उत्तम व्रतको करता है उसने सब व्रतको कर लिया ॥ ४० ॥ अब मैं तुम से एक बड़ी सुन्दर कथा कहूँगा जो पुलस्त्यजी ने नारदजी से विस्तारपूर्वक कही थी ॥ ४१ ॥ सहस्रबाहुने जब

मुक्तिफलप्रदम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ ३९ ॥ व्रतानि तेन चीर्णानि सर्वाणि नृपनन्दन ॥ पद्मिन्या प्रीति युक्तो यः कुरुते व्रतमुत्तमम् ॥ ४० ॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेकां मनोरमाम् ॥ नारदाय पुलस्त्येन याचयित्वा महीपतिम् ॥ ४१ ॥ तदाश्चर्यं तदा श्रुत्वा नारदो दिव्यदर्शनः ॥ पप्रच्छ च यथा भक्त्या पुलस्त्यं मुनिपुंगवम् ॥ ४३ ॥ नारदउवाच ॥ दशाननेन विजिताः सर्वेदेवाः सवासवाः ॥ कार्तवीर्येण विजितः कथं रण विशारदः ॥ ४४ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा पुलस्त्योमुनिरब्रवीत् ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ शृणुवत्स

रावण को कैद में डालदिया था तब पुलस्त्य मुनिने राजा से प्रार्थना करके रावण को छुड़वाया था ॥ ४२ ॥ उस समय सुन्दर दर्शन योग्य नारदजी ने आश्चर्यसे भक्तिपूर्वक श्रेष्ठमुनि पुलस्त्यजी से पूछा ॥ ४३ ॥ नारदजी बोले ॥ रावणने तो इन्द्र सहित देवताओं को जीत लिया था फिर कार्तवीर्य ने रणमें चतुर रावण

को कैसे जीता ॥ ४४ ॥ नारदजी का वचन सुन कर पुलस्त्य मुनि कहने लगे । पुलस्त्यमुनि बोले हे पुत्र ! मैं तुमसे कार्तवीर्य की उत्पत्ति कहता हूँ ॥ ४५ ॥ हे नारद ! पहिले त्रेता युग में माहिष्मती पुरी में एक बड़ा

प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्य समुद्भवम् ॥४५॥ पुरा त्रेतायुगे ब्रह्मन् माहिष्मत्यां बृहत्तरः ॥ हैहयानां कुलेजातः कृतवीर्यो महीपतिः ॥४६॥ सहस्रं प्रमदास्तस्य नृपस्य प्राणवल्लभाः ॥ न तासां तनयं काचिल्लेभे राज्यधुरन्धरम् ॥४७॥ यजन्देवान् पितॄन् सिद्धान् प्रतिपूज्य महत्तरान् ॥ कुर्वंस्तद्रुदितं सर्वं लब्धवांस्तनयं न सः ॥४८॥ सुतं विना तदा राज्यं न सुखाय महीपतेः ॥ क्षुधितस्य यथा भोगा न भवन्ति सुखप्रदाः ॥ ४९ ॥ विचार्य चित्ते नृपतिस्तपस्तप्तुं मनो दधे ॥ तपसैव सदा सिद्धिर्जायते मनसेप्सिता ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा स हि धर्मात्मा चीर वासा

भारी हैहय नाम राजाओंके वंशमें कृतवीर्य नाम राजा हुआ ॥ ४७ ॥ राजा ने यज्ञ किया देवता और पितरों को हव्य कव्य से प्रसन्न किया और बड़े बड़े सिद्धों की पूजा किया और जो उन्होंने कहा सो किया परन्तु राजा को पुत्र नहीं हुआ ॥ ४८ ॥ पुत्र विना राजाको राज्य भी अच्छा नहीं लगा जैसे भूखे मनुष्य को

भोग सुखदाई नहीं लगते हैं ॥ ४६ ॥ राजा ने विचार कर तप करने में मन लगाया क्योंकि तप से ही सदा मनोरथकी सिद्धि होती है ॥ ५० ॥ यह कहकर वह धर्मात्मा राजा कोपीन सहित जटा धारण कर राज्य मन्त्री

जटाधरः ॥ तपस्तप्तुं गतः सद्यो गृहे न्यस्य सुमन्त्रिणम्॥५१॥निर्गतं नृपतिं वीक्ष्य पद्मिनी प्रमदोत्तमा ॥ हरिश्चन्द्रस्य तनया तपस्तप्तुं कृतोद्यमम् ॥५२॥ भूषणादि परित्यज्य चीरमेकं समाश्रयत् ॥ जगाम पतिना सार्द्धं पर्वते गन्धमादने ॥५३॥ गत्वा तत्र तपस्तेपे वर्षाणाम- युतं नृपः ॥ न लेभेऽथापि तनयं ध्यायन्देवं गदाधरम् ॥५४॥ अस्थिस्नायुमयं कांतं दृष्ट्वा सा प्रमदोत्तमा ॥ अनुसूयां महासाध्वीं पप्रच्छ विनयान्विता ॥ ५५ ॥ भर्तुः प्रतपनः साध्वी वर्षाणामयुतं गवाम् ॥ तथापि न प्रसन्नोभूत्केशवः कष्टनाशनः ॥ ५६ ॥ व्रतं मम महाभागे

को सौंपकर शीघ्र ही तपस्या करने को चला गया ॥ ५१ ॥ राजा को वन में गया देखकर राजा हरिश्चन्द्र की कन्या रानियों में श्रेष्ठ पद्मिनी भी तपस्या के लिये उत्तम गंधमादन पर्वत पर गई ॥ ५३ ॥ और वहां जाकर राजा ने दशहजार वर्ष तक तपस्या किया और वहां विष्णु भगवान का ध्यान किया परन्तु पुत्र लाभ नहीं

हुआ ॥५४॥ तब उस उत्तम पतिव्रता रानी ने अपने पतिको हाड़ और नसों से ही अवशेष देखकर विनयपूर्वक
अनसूयाजी से पूछा कि ॥५५॥ हेपतिव्रताजी ! मेरे पति को तपस्या करते करते दशहजार वर्ष बीत गये तौभी
मा. कष्टको दूर करने वाले भगवान प्रसन्न नहीं हुए॥५६॥ सो हे पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ कोई यथार्थ व्रत मुझसे कहोकि मा. टी.

१५२ कथयस्व यथातथम् ॥ येन प्रसन्नोभगवान् भविष्यति सदा मयि ॥ ५७ ॥ येन जायेत मे
पुत्रश्चक्रवर्ती महत्तरः ॥ श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं पतिव्रतपरायणा ॥ ५८ ॥ तदा प्रोवाच संहृष्टा
पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ॥ मासो मलिम्लुचः सुभ्रूमासद्वादशकाधिकः ॥ ५९ ॥ द्वात्रिंशद्-
भिर्गतैर्मासैरायाति स शुभानने ॥ तन्मध्ये द्वादशीयुग्मं पद्मिनी परमा तथा ॥ ६० ॥ उपोष्य
तत्प्रकर्तव्यं विधिना जागरैः समम् ॥ शीघ्रं प्रसन्नो भगवान् भविष्यति सुतप्रदः ॥ ६१ ॥

जिससे वे भगवान् मेरे ऊपर सदा के लिये प्रसन्न हो जावें । ५७॥ और जिससे मेरे को बड़ा भारी चक्रवर्ती पुत्र
होवे उसका वचन सुनकर पतिव्रता ॥५८॥ अनसूया प्रसन्न होकर कमलके समान नेत्रवाली पद्मिनी से बोलीं ॥ १५२
हे रानी ! बारह मास से अधिक मलमास होता है ॥५९॥ और हेसुन्दर मुखवाली ! बत्तीस महीने के बाद में

आता है, उसमें द्वादशीयुक्त जो दो एकादशी पद्मिनी और परमा नाम की होती हैं ॥ ६० ॥ विधिपूर्वक उनका उपवास और जागरण करना चाहिये । उससे पुत्र देनेवाले भगवान् शीघ्र प्रसन्न होंगे ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! यह कहकर कर्दमऋषि की पुत्री अनसूया ने प्रसन्न होकर पहिले मेरी कही हुई व्रत की सब विधि

इत्युक्त्वाऽकथयत्सर्वं मया पूर्वोदितं नृप ॥ विधिं व्रतस्य विधिवत् प्रसन्नाकर्दमाङ्गजा ॥६२॥
श्रुत्वा व्रतविधिं सर्वं यथोक्तमनसूयया ॥ चक्रे राज्ञी च तत्सर्वं पुत्रप्राप्तिमभीप्सति ॥ ६३ ॥
एकादश्यां निराहारा सदा जाता च निर्जला ॥ जागरेण युता रात्रौ गीतनृत्य समन्विता ॥६४॥
पूर्णे व्रते च वै शीघ्रं प्रसन्नः केशवः स्वयम् ॥ बभाषे गरुडारूढो वरं वरय शोभने ॥ ६५ ॥
श्रुत्वा वाक्यं जगद्धातुः स्तुत्वा प्रीत्या शुचिस्मिता ॥ ययाचेच्य वरं देहि मम भर्तुर्बृहत्तरम् ॥६६॥

समझायी ॥ ६२ ॥ और जैसे मैंने व्रत की सब विधि कही थी उसे अनसूया से सुन कर पुत्र प्राप्ति की इच्छा से रानी पद्मिनी ने सब किया ॥ ६३ ॥ एकादशी को सदा निराहार व्रत करती और रात को नाच गाना समेत जागरण करती ॥ ६४ ॥ जब पूरा व्रत हो गया तब गरुड़ पर चढ़े विष्णु भगवान ने शीघ्र प्रसन्न होकर

ए. आप आकर कहा कि हे सुन्दरी ! वरदान मांग ॥ ६५ ॥ वह भगवान का वचन सुनकर प्रसन्न होकर धीरे
मा. धीरे हँसी और प्रीति से स्तुति करके कहा कि मेरे पति को आप बड़ा भारी वरदान दीजिये ॥ ६६ ॥ पद्मिनी भा

१५३ पद्मिन्यास्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ तथा मलिम्लुचो मासो नान्यो मे प्रीतिदायकः टी.
॥ ६७ ॥ तन्मध्यैकादशी रम्या मम प्रीतिविवर्धिनी ॥ सा त्वयोपोषिता सुभ्रुर्यथोक्त विधिना
शुभे ॥ ६८ ॥ तेन त्वया प्रसन्नोहं कृतोऽस्मि शुभगानने ॥ तव भर्तुः प्रदास्यामि वरं यन्म-
नसेप्सितम् ॥ ६६ ॥ इत्युक्त्वा नृपतिं प्राह विष्णुर्विश्वार्तिनाशनः ॥ वरं वरय राजेन्द्रयत्ते मनसि
कांक्षितम् ॥ ७० ॥ संतोषितोऽहं प्रियया तवसिद्धिर्चिकीर्षया ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विष्णोः प्रसन्नो

के उस वचन को सुनकर भगवान बोले कि जैसा मुझे मलमास प्रिय है वैसा दूसरा महीना नहीं है ॥ ६७ ॥
उसमें मेरी प्रीति को करने वाली सुन्दर एकादशी होती है हे सुन्दरी ! उसका व्रत तैंने विधि पूर्वक किया है
॥ ६८ ॥ हे सुन्दर मुख वाली उससे तैंने मुझे बड़ा प्रसन्न किया है और तेरे पति के इच्छानुसार वरको १५३
दूंगा ॥ ६६ ॥ यह कह कर संसार के दुःख को नाश करने वाले भगवान् राजा से बोले कि हेराजेन्द्र ! जो

तुमने मनमें विचारा है सो वरदान माँगो ॥ ७० ॥ तुम्हारी सिद्धि करने की इच्छासे मैं तुम्हारी रानी से बड़ा प्रसन्न हूँ विष्णु भगवान के वचन को सुन कर श्रेष्ठ राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ७१ ॥ और ऐसा पुत्र मांगा

नृपसत्तमः ॥ १७ ॥ वव्रेसुतं महाबाहुं सर्वलोक नमस्कृतम् ॥ न देवैर्मानुषैर्नागैर्दैत्यदानव राक्षसैः ॥७२॥ जेतुं शक्यो जगन्नाथ विना त्वां मधुसूदन ॥ इत्युक्तो भगवान् वाढमित्यु-क्त्वान्तरधीयत ॥७३॥ नृपोपिसुप्रसन्नात्मा हृष्टः पुष्टः क्रियायुतः ॥ समायात्त्पुरं रम्यं नर-नारीमनोरमम् ॥७४॥ स पद्मिन्यां सुतं लेभे कार्तवीर्यं महाबलम् ॥ न तेन सदृशः कश्चि-त्त्रिषु लोकेषु मानवः ॥७५॥ तस्मात्पराजितः संख्ये रावणो दशकन्धरः ॥ विना नारायणं देवं चक्रपाणिं गदाधरम् ॥ ७६ ॥ न तं जेतुं समर्थोऽस्ति त्रिषु लोकेषु कश्चन ॥ न त्वया

कि लम्बी भुजा वाला सब लोगों के प्रणाम करने योग्य देवता, मनुष्य, नाग, दानव, और राक्षस, इनमें से ॥ ७२ ॥ हे जगन्नाथ ! हे मधुसूदन ! तुम्हारे सिवाय और उसे कोई न जीत सके जब उसने भगवान् से ऐसा कहातो "ऐसा ही होगा" यह कह कर वे अन्तर्धान होगये ॥ ७३ ॥ राजा भी भगवान के वचन को

सुन कर बड़ा प्रसन्न हृष्ट पुष्ट हो सब काम कर नर नारियों से सुन्दर भरे पुरे हुए अपने सुन्दर नगर में आया ॥ ७४ ॥ और उसकी रानी पद्मिनी को महाबली कार्तवीर्य नाम का पुत्र हुआ और उसके समान कोई पुरुष तीनों लोकों में नहीं है ॥ ७५ ॥ इस लिये दशानन रावण युद्ध में उससे हारगया और चक्र गदा धारण किये श्रीविष्णु भगवान के विना ॥ ७६ ॥ तीनों लोक में कोई उसे जीतने को समर्थ नहीं है सो तुमको

विस्मयः कार्यो रावणस्य पराजये ॥ ७७ ॥ मलिम्लुच प्रसादेन पद्मिन्याश्चाप्युपोषणात् ॥ दत्तो देवाधिदेवेन कार्तवीर्यो महाबलः ॥७८॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः प्रसन्नेनान्तरात्मना॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोहं त्वयाऽनघ ॥ ७९ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लाया व्रतमुत्तमम् ॥ ये करिष्यन्ति मनुजास्ते यास्यन्ति हरेःपदम् ॥८०॥ त्वमेवं कुरु राजेन्द्र यदि चेष्टमभीप्ससि ॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा धर्मराजोऽति हर्षितः ॥८१॥ चक्रे व्रतं विधानेन

रावण की हार में आश्चर्य नहीं करना चाहिये ॥ ७७ ॥ मलमास के प्रसाद से और एकादशी के उपवास से देवताओं को भगवान ने महाबली कार्तवीर्य को दिया है ॥ ७८ ॥ यह कहकरपुलस्त्यजी प्रसन्न मनसे चले गये श्रीकृष्णजी बोले, हे निष्पाप युधिष्ठिर ! यह जो तुमने पूछा था सो सब कह दिया ॥ ७९ ॥ जो कोई मलमास

के शुक्ल पक्ष की एकादशी का उत्तम व्रत करेंगे वे मनुष्य विष्णु के पदको पावेंगे ॥ ८० ॥ हे राजेन्द्र ! जो तुम कुछ अभिलाषा रखते हो तो तुम भी इस व्रत को करो । भगवान के वचन को सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ८१ ॥ और उन्हों ने अपने वंधु और परिवार सहित विधि पूर्वक इस एकादशी के व्रत को

बन्धुभिः परिवारितः ॥ सूतउवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं पुराद्विज ॥ पुण्यं पवित्रं परमं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८२॥ एवं विधं येऽपिव्रतं मनुष्या भक्त्या करिष्यन्ति मलिम्लुचस्य ॥ उपोष्य शुक्लामतिसौख्य दात्रीमेकादशी ते भुविधन्य धन्याः ॥८३॥ श्रोष्यन्ति ये तस्य विधिं समग्रं तेऽप्यंशभाजो मनुजाभवन्ति ॥ ये वै पठिष्यन्ति कथां समग्रां ते वै गमिष्यन्ति हरेर्निवासम् ॥८४॥ अधिकशुक्लैकादशीमाहात्म्यं संपूर्णम् ॥

किया, सूतजी बोले ॥ हे द्विज ! पहिले जो तुमने मुझसे पूछा था सो सब मैंने तुमसे कहा । यह व्रत बड़ा पुण्य पवित्र है और अब फिर क्या सुनना चाहते हो ॥ ८२ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार मलमास को भक्ति से करेगा और जो बड़े सुख को देने वाली शुक्ल पक्ष की एकादशी का उपवास करेंगे वे पुरुष इस पृथ्वी में धन्य

हैं ॥ ८३ ॥ और जो मनुष्य इसकी संपूर्ण विधिको सुनेंगे वे भी थोड़े से फल के भागी होंगे और जो इस संपूर्ण कथा को सुनैंगे वे अवश्य विष्णुधाम को प्राप्त होंगे । अधिकशुक्लैकादशी कथा समाप्ता ॥

अथाधिकमास कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य कृष्णा- या कथ्यते विभो ॥ किं नाम कोविधिस्तस्याः कथयस्व जगत्पते ॥ १ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ परमेति समाख्याता पवित्रो पापहारकाः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदानृणांस्त्रीणां चापि युधिष्ठिर ॥२॥ पूर्वोक्त विधिना कार्या कृष्णापि भुवि मानवैः ॥ संपूज्य परया भक्तया नाम्ना देवं नरो- त्तमम् ॥ ३ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ॥ कांपिल्य नगरे जाता मुनीना- मग्रतः श्रुताम् ॥४॥ आसीद्विजवरः कश्चित्सुमेधा नाम धार्मिकः ॥ तस्य पत्नी पवित्राख्या

अथ अधिकमास कृष्णैकादशी कथा ॥ युधिष्ठिर बोले । हे भगवान् ! मलमास के कृष्णपक्षकी एकादशी कौनसी है और हे जगत् के प्रभु ! उसका क्या नाम और उसकी क्या विधि है सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले, हे राजन् ! उसका नाम परमा है वह बड़ी पवित्र और पापों को नाश करने वाली है और हे युधिष्ठिर

स्त्री पुरुषों को भोग मोक्ष देनेवाली है ॥ २ ॥ पृथ्वी पर मनुष्यों को कृष्णपक्ष की एकादशी भी पहिले कही हुई रीति से करना चाहिये और उसदिन बड़ी भक्ति से नरोत्तम भगवान् की पूजा करे ॥ ३ ॥ अब मैं तुमसे इस मनोहर कथाको कहूँगा कि जो कांपिल्य नगर में हुई थी और मैंने मुनियों से सुनी है ॥ ४ ॥ एक

पापिव्रत्यपरायणा ॥ ५ ॥ कर्मणा केनचिद्विप्रो धनधान्यविवर्जितः ॥ नक्कापि लभते भिक्षां याचन्नपि नरान् बहून् ॥६॥ न भोज्यं लभते तादृङ् न वस्त्रं नैव मण्डनम् ॥ रूप यौवन-माधुर्या नारी शुश्रूषते पतिम् ॥७॥ अतिथिं भोजयित्वा सा क्षुधितापि स्वयं गृहे ॥ तिष्ठत्येव विशालाक्षि ह्यम्लानमुख पङ्कजा ॥८॥ न भर्तारं क्वचिदपि नास्त्यन्नमिति भाषते ॥ विलोक्य भार्यां सुदतीं कर्षतीं स्वकलेवरम् ॥९॥ विचार्य ब्राह्मणश्चित्ते भार्यायाः प्रेमबन्धनम् ॥ निन्दन्

सुमेधा नाम उत्तम धर्मात्मा ब्राह्मण था । उस की स्त्री का नाम पवित्रा था और वह बड़ी पतिव्रता थी ॥ ५ ॥ किसी कर्मके प्रभाव से उस ब्राह्मण का सब धन धान्य नष्ट हो चुका और बहुत से मनुष्यों से याचना करने पर भी उसे कहीं भीखतक न मिलने लगी ॥ ६ ॥ उसे भोजन वस्त्र आभूषण कुछ नहीं मिलता परन्तु रूप यौवन से सुन्दरी वह स्त्री अपने पतिकी अच्छी सेवा करती ॥ ७ ॥ जो वह अतिथि का पूजन कर

अपने घर में भूखी भी बैठती तो उस बड़े नेत्र वाली का मुख कमल कभी मलीन नहीं दिखाता ॥ ८ ॥ और न तो वह पति से कभी कहती कि घर में अन्न नहीं है, परन्तु उस सुन्दर दांतवाली स्त्री को अपने शरीर की कसौटी को देख ॥ ९ ॥ और चित्तमें स्त्रीके प्रेम बन्धन को विचार कर वह ब्राह्मण अपने भाग्य की

भाग्यं स्वकं खिन्नः प्रोचे वाक्यं प्रियंवदाम् ॥ १० ॥ कान्ते करोमि तत्कार्यं न मया लभ्यते धनम् ॥ यांचामि न चरान् भव्यान्न यच्छन्ति च मे धनम् ॥११॥ किं करोमि क्व गच्छामि तन्मे कथय शोभने ॥ विना धनेन सुश्रोणि गृहकार्यं न सिद्धयति ॥१२॥ देह्याज्ञां परदेशाय गच्छामि धनलब्धये ॥ यस्मिन् देशे च यत्प्राप्यं भोज्यं तत्रैव लभ्यते ॥१३॥ उद्यमेन विना सिद्धिः कर्मणा नोपलभ्यते ॥ तस्माद्बुधाः प्रशंसंति सर्वथैव शुभोद्यमम् ॥ १४ ॥ श्रुत्वा

निन्दा करता हुआ प्रियंवदा से बोला ॥ १० ॥ हे प्रिये ! मैं वह काम करता हूँ कि जिससे धन मिलै परन्तु मिलता नहीं । और बड़े आदमियों से याचना करता हूँ तो वे भी मुझे धन नहीं देते ॥ ११ ॥ हे सुन्दरी ! मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ सो मुझ से कह, सुन्दर जंघा वाली ! बिना धन के घर का काम नहीं चलता है ॥ १२ ॥ मुझे प्रदेश जाने की आज्ञा देतो धन कमाने के लिये जाऊँ क्यों कि जिस देशमें जो मिलना होगा

वहांही भोजन मिलेगा ॥ १३ ॥ और उद्यम के विना कर्मों की सिद्धि नहीं होती, इसलिये पण्डित शुभ उद्यम की बड़ाई किया करते हैं ॥ १४ ॥ पतिके वचन को सुनकर वह सुन्दर नेत्र वाली आँखों में आंसू भर कर नम्रता से हाथ जोड़ मुख नीचा करके बोली ॥ १५ ॥ तुमसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है तुम्हारी आज्ञा होतो मैं

कान्तस्य वचनं श्रुत्वा साश्रुनेत्रा विचक्षणा ॥ प्रोवाच प्रांजलिर्भूत्वा विनयानतकन्धरा ॥१५॥ त्वत्तो नास्ति सुविज्ञाता त्वयाज्ञप्ता ब्रवीम्यहम् ॥ हितैषिणो न शं ब्रूयुः शस्वत्साधुह्यसाध्वपि ॥१६॥ पूर्वदत्तं हि लभ्येत यत्र तत्र महीतले ॥ विना दानं न लभ्येत मेरौ कनकपर्वते ॥१७॥ पूर्वदत्ता हि या विद्या पूर्वदत्तं हि यद्धनम् ॥ पूर्वदत्ता हि या भूमिरिह जन्मनि लभ्यते ॥ १८ ॥ यद्धात्रा लिखितं भाले तत्तथैव हि लभ्यते ॥ विना दानेन तु क्वापि लभ्यते नैव किंचन १९

कहूँ कि हितकारी मनुष्य सदा कहते हैं कि बुरे वा भले मनुष्य को ॥ १६ ॥ पृथ्वीपर जहाँ कहीं मिलता है पहिले जन्म का दिया हुआ मिलता है और विनादिये सोने के सुमेरु पर्वत पर भी नहीं मिलता है ॥ १७ ॥ पहिले जन्म की दी हुई विद्या और पूर्व जन्म का दिया धन और भूमि ये सब वस्तु इस जन्म में मिलती हैं ॥ १८ ॥ जो विधाता ने ललाट में लिखदिया है वह वैसे ही मिलता है ॥ विना दान के तो कहीं भी कुछ नहीं

२७

मिलता ॥ १९ ॥ हे विप्रेन्द्र ! पूर्व जन्म में मैंने और तुमने कभी सत्पात्रों के हाथ में थोड़ा वा बहुत भी तो धन नहीं दिया ॥ २१ ॥ इस देश में क्या और दूसरे में क्या, दिया हुआ सब जगह मिलता है और भगवान्

पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र न मया न त्वया क्वचित् ॥ सत्पात्राणां करे दत्तं स्वल्पं भूर्यपि सद्धनम् ॥२०॥ इह देशे परत्रापि दत्तं सर्वत्र लभ्यते ॥ अन्नमात्रं तु विश्वेशो विना दत्तेन यच्छति॥२१॥ तस्मादत्रैव विप्राग्र्य स्थातव्यं भवता मया॥ त्वां विनाहं न तिष्ठामि क्षणमात्रं महामुने ॥ २२ ॥ न माता न पिता भ्राता न श्वश्रूः श्वसुरोजनः ॥ न सत्कुर्वन्ति केऽपि स्त्रीं स्वजनाश्चपरे कुतः ॥ २३ ॥ भर्तृ वियुक्तां निन्दन्ति दुर्भगेति वदन्ति च ॥ तस्मादत्र स्थिरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ॥२४॥ भवतो भाग्ययोगेन प्राप्तिश्चात्र भविष्यति ॥ श्रुत्वा

अन्न मात्र तो बिना दिये दे देता है, इसलिये हे विप्रेन्द्र ! तुम्हें मेरे साथ यहां ही रहना चाहिये और हे मुनिजी तुम्हारे बिना मैं क्षणमात्र भी नहीं रह सकती हूँ ॥२२॥ माता,पिता,सासु,ससुर,स्वजन ये भी विधवा स्त्री का आदर नहीं करते हैं फिर दूसरे लोगों की गणना क्या है ॥ २३ ॥ किन्तु विधवा की निन्दा ही करते हैं और उसे

दुर्भगा कहते हैं इसलिये यहाँ रहकर सुखपूर्वक विहार करो ॥२४॥ तुह्मारे भाग्य से मिलने वाले पदार्थ यहाँ ही मिलेंगे उसका वचन सुनकर वह पण्डित सुमेधा ब्राह्मण वहाँ का वहाँ ही खड़ारह गया ॥२५॥ इसी बीचमें वहाँ ही मुनियों में श्रेष्ठ कौण्डिन्य मुनि आगये। उनको आया देखकर वह ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सुमेधा बड़ा प्रसन्न हुआ

तस्यास्तु वचनं स्थितस्तत्र विचक्षणः ॥ २५ ॥ तावत्तत्र समायातः कौंडिन्यो मुनिसत्तमः ॥
दृष्ट्वा समागतं हृष्टः सुमेधा द्विजसत्तमः ॥२६॥ सभार्यः सहसोत्थाय ननाम शिरसाऽसकृत् ॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ २७ ॥ यद्दृष्टोऽसि महाभाग्यादित्युवाच
मुनीश्वरम् ॥ दत्वा सुविष्टरं तस्मै पूजयामास तं द्विजम् ॥ भोजयित्वा विधानेन पप्रच्छ
प्रमदोत्तमा ॥ विद्वन् केन प्रकारेण दारिद्र्यस्य क्षयो भवेत् ॥२८॥ विना दत्तं कथं लभ्येद्धनं

॥२६॥ स्त्री सहित उठकर उनको सिर से वारंबार प्रणाम किया और कहा धन्य है आपने बड़ी कृपा करके दर्शन दिया आज मेरा जन्म सफल हुआ ॥ २७ ॥ क्योंकि मेरे बड़े भाग्य से आप आये हैं मुनिने यह कहकर उनको आसन पर बैठाया और कौंडिन्य मुनिकी पूजा किया ॥ २८ ॥ और उनको विधिपूर्वक भोजन करा के सुन्दरस्त्री

159

उनसे पूछने लगी कि हे मुनिराज! हमारे दरिद्र का किस प्रकार नाश हो सकता है वह कहिये ॥२९॥ कुटुम्बियों को धन और विद्या पूर्व जन्म के बिना दिये कैसे मिलते हैं। मेरा पति मुझे छोड़कर आज परदेश जाने को उद्यत हैं ॥३०॥ दूसरे नगर में दूसरे देश के रहने वाले लोगों से मांगने के लिये जाते हैं परन्तु हे मुनीश्वर! मैंने उसी

विद्या कुटुम्बिनाम् ॥ मां मे भर्ता परित्यज्य गंतुकामोऽद्य वर्तते ॥ ३१ ॥ अन्यदेशे परांल्लोकान् याचितुं परपत्तने ॥ संप्रार्थ्य तु मया विद्वन् हेतुवाक्यैर्महत्तरैः ॥ ३२ ॥ नादत्तं लभ्यतो किंचिदित्युक्त्वा स निवारितः ॥ मम भाग्यान्मुनीन्द्राद्य त्वमत्रैव समागतः ॥ ३३ ॥ दारिद्र्यं त्वत्प्रसादान्मे शीघ्रं नश्यत्वसंशयम् ॥ केनोपायेन विप्रेन्द्र दारिद्र्यं नश्यति ध्रुवम् ॥३४॥ कथयस्व कृपासिन्धो व्रतं तीर्थं तपादिकम्॥ श्रुत्वा तस्याः सुशीलाया

बड़ी बड़ी न जाने की बातों से प्रार्थना कर ॥३१॥ और यह कहकर रोका है कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता है इतने ही में हे मुनिराज! मेरे भाग्य से आप यहाँ आगये ॥३२॥ आपकी कृपासे मेरा दारिद्र्य शीघ्रही भाग जायगा इसमें सन्देह नहीं है सो हे मुनिराज! किस उपाय करने से मेरा दरिद्र सदा के लिये चला जावे॥३३॥ हे कृपासिंधु! कोई व्रत तीर्थ और तप आदि को कहिये फिर उन श्रेष्ठ मुनिने उस सुशीला का वचन सुनकर

॥३४॥ और मनमें विचार कर सब पापों के समूह और दुःख दारिद्र्य का नाश करने वाला उत्तम व्रत बतलाया ॥३५॥३६॥ परमा नाम बड़ी उत्तम कृष्णपक्ष की एकादशी जो मलमास में भोग मोक्ष को देनेवाली होती है॥३७॥उसका व्रत करने से मनुष्य धन धान्यसे संपन्न हो जाता है सो तुम उसे विधिपूर्वक जागरण और गीत

भाषितं मुनिपुंगवः ॥३५॥ प्रोवाच प्रवरं चित्ते विचार्यव्रतमुत्तमम् ॥ सर्वपापौघशमनं दुःख दारिद्र्य नाशनम् ॥ ३६ ॥ परमा नाम विख्याता विष्णोस्तिथिरनुत्तमा ॥ मलिम्लुचे तु या कृष्णा भुक्ति मुक्ति फलप्रदा ॥ ३७ ॥ तस्यामुपोषणं कृत्वाधनधान्ययुतो भवेत् ॥ विधिना जागरैः सार्कं गीतवादित्र संयुतम् ॥ ८ ॥ धनदेन यदाचीर्णं व्रतमेतत्सुशोभनम् ॥ तदा हृष्टेन रुद्रेण धनानामधिपः कृतः ॥ ३९ ॥ हरिश्चन्द्रेण च कृतं पुरा क्रीतसुतेन वै ॥

नाद सहित करो ॥३८॥ जब कुबेर ने इस सुन्दर व्रत को किया था तब रुद्र भगवान ने प्रसन्न होकर उसे धन का मालिक बना दिया ॥३९॥ और पहले हरिश्चन्द्र ने भी इस व्रत को किया था तो उसे फिर स्त्री पुत्र और अकंटक राज्य मिला। सो हे सुलोचने हे कल्याणि ! तू इस सुन्दर व्रतको कही हुई विधिसे जागरण सहित करो

160

॥४०॥ यह कहकर मुनिने उससे सब विधि कही और फिर उस ब्राह्मण को पंच रात्रि का सुन्दर व्रत बताया कि ॥४२॥ जिसका अनुष्ठान करने से भुक्ति मुक्ति मिलती है। परमा एकादशी के दिन सवेरे प्रातःकाल की

पुनः प्राप्ता श्रिया तेन राज्यं निहत कंटकम् ॥ ४० ॥ तस्मात् कुरु विशालाक्षि व्रतमेतत्सुशोभनम् ॥ यथोक्त विधिना भद्रे समं जागरणेन च ॥४७॥ इत्युक्त्वा तद्विधिं सर्वं कथयामास वाडवः ॥ पुनः प्रोवाच तं विप्रं पंचरात्रिव्रतं शुभम् ॥ ४२ ॥ यस्यानुष्ठान मात्रेण भुक्तिमुक्तिश्च प्राप्यते ॥ परमादिवसे प्रातः कृत्वा पौर्वाह्णिकं विधिम् ॥४३॥ कुर्यात्सुनियमाच्छक्त्या पंचरात्रव्रतादरात् ॥ प्रातः स्नात्वा निराहारो यस्तिष्ठेद्दिन पंचकम् ॥ ४४ ॥ सगच्छेद्वैष्णवं स्थानं पितृमातृप्रियायुतः ॥ एकाशनस्तु यो भूयाद्दिनानां पंचकं

विधि करके ॥४३॥ फिर नियम से शक्तिके अनुसार आदर पूर्वक पंचरात्रि व्रत करे जो प्रातःकाल स्नान करके पाँच दिन तक निराहार रहै।४४। वह पिता माता और स्त्री पुत्र सहित विष्णु लोक को जाता है और जो पुरुष

पाँच दिन एक बार भोजन करता है ॥४५॥ वह सब पापों से छूटकर स्वर्गलोक में सुख भोगता है जो मनुष्य स्नान करके पाँच दिन ब्राह्मणों को भोजन करावा है ॥४६॥ तो उसने मानो देवता दैत्य और मनुष्य सहित सन्सार भर को भोजन करा दिया, और जो पुरुष सुन्दर जल से घड़ा भरकर ब्राह्मण को देता है ॥४७॥ सो

नरः ॥ ४५ ॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ स्नात्वा यो भोजयेद्विप्रं दिनानां पंचकं नरः ॥४६॥ भोजितं तेन हि जगत् सदेवासुरमानुषम् ॥ पूर्णकुंभेषु तोयेन यो ददाति द्विजातये ॥४७॥ दत्तं तेनैव सकलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ तिलपात्रं तु यो दद्याद् ब्राह्मणाय विपश्चिते ॥४८॥ तिलसंख्यासमाः साध्वि स वसेन्नाकमण्डले ॥ घृतपात्रं तु योदद्यात्स्नात्वा पंचदिनं नरः ॥ ४९ ॥ सभुक्त्वा विपुलान् भोगान् सूर्यलोके महीयते ॥ ब्रह्मचर्येण यस्तिष्ठे-

मानो उसने चराचर सहित सब ब्रह्माण्ड को दान दिया, और जो पुरुष पंडित ब्राह्मण को तिल पात्र का दान देता है ॥ तो हे पतिव्रते ! तिलों के गिनती के बराबर वर्षों तक वह स्वर्गमण्डल में वास करता है । और जो मनुष्य स्नान कर पांच दिन तक घृत पात्र दान करता है ॥ ४९ ॥ वह संपूर्ण भोग भोगकर सूर्य लोक में

161

आनन्द करता है और जो मनुष्य पांच दिन ब्रह्मचर्य से रहता है ॥ ५० ॥ वह स्वर्ग की अप्सराओं के साथ आनन्द से स्वर्ग के भोगों को भोगता है हे पतिव्रते ! हे कल्याणि ! तू पतिके साथ इस विधि से व्रत करो॥५१॥ तो हे सुव्रते ! तू धन धान्य से युक्त होकर पति सहित स्वर्ग में निवास करेगी जब ऋषि ने उससे यह कहा तो

द्दिनानां पंचकं नरः ॥ ५० ॥ भुनक्ति स स्वर्गभोगान् स्वर्वेश्याभिः समंमुदा ॥ एवं विधं व्रतं साध्वि कुरुत्वं पतिना शुभे ॥५१॥ धनधान्ययुता भूत्वा स्वर्गंयास्यसि सुव्रते ॥ इत्युक्ता सा व्रतं चक्रे कौंडिन्येन यथोदितम् ॥ भर्त्रासमं भावयुता स्नात्वा मासि मलिम्लुचे ॥५२ ॥ पंचरात्रव्रते पूर्णे परायाः प्रिय संयुता ॥ सापश्यद्राजभवनादायांतं नृपनन्दनम् ॥ ५३ ॥ स दत्वा नव्य भवनं भव्यवस्तु समन्वितम् ॥ वासयामास विधिना विधिना प्रेरितः स्वयम्

उस प्रमदा ने कौण्डिन्य ऋषि के बताये अनुसार पति के साथ भक्ति पूर्वक मलमास में स्नान युक्त व्रत किया ॥५२॥ और जब पंचरात्रि का व्रत हो चुका तो उस स्त्री ने पति के सहित परमा एकादशी का व्रत किया फिर उसने राजभवन से राजपुत्र को आते देखा ॥५३॥ उस राजपुत्र ने उस ब्राह्मण को सब सुन्दर वस्तुओं से भर

कर एक नवीन भवन दिया और जैसे विधाता ने उस राजा को प्रेरणा किया था उसी विधि से ब्राह्मण को बसाया ॥५४॥ और सुमेधा ब्राह्मण की जीविका के लिये ग्राम देकर राजा उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसकी स्तुति करके अपने घर गया ॥ ५५ ॥ मलमास के कृष्णपक्ष की परमा एकादशी के बड़े आदर पूर्वक उपवास

॥५४॥ दत्वा ग्रामं वृत्तिकरं ब्राह्मणाय सुमेधसे ॥ प्रसन्नस्तपसा राजा तं स्तुत्वा स्वगृहं ययौ ॥ ५५ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य पराख्यायाः परादरात् ॥ उपोषणात् स कृष्णायाः पंचरात्र व्रतेन च ॥५६॥ सर्वपाप विनिर्मुक्तः सर्वसौख्यसमन्वितः ॥ भुक्त्वा भोगान् स्त्रिया सार्द्धमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥५७॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पंचरात्रभवं पुण्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ तथापि किंचिद्वक्ष्यामि येन चीर्णं पराव्रतम् ॥५८॥ स्नातानि पुष्कराद्यानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥

करने से और पंचरात्रि के व्रत से ॥५६॥ वह ब्राह्मण सब पापों से छूट कर सब प्रकार के सुखों से युक्त होकर स्त्री सहित सब भोगों को भोगकर विष्णुलोक को गया ॥ ५७ ॥ श्रीकृष्णजी बोले ॥ पंचरात्र के पुण्य के मैं नहीं कहने की सामर्थ रखता तो भी संक्षेप से कहता हूँ कि जिसने परमात्मा का व्रत किया ॥ ५८ ॥ उसने

प. मा. १६१

पुष्कर आदि तीर्थ गंगा आदि नदियाँ इनमें स्नान कर लिया तो उसने सब प्रकार के दान महादान आदि को कर लिया ॥ ५६ ॥ और उसने गया श्राद्धकर पितरों को सन्तुष्ट कर लिया । और उसने व्रत खण्ड में कहे हुए सम्पूर्ण व्रतों को कर लिया ॥ ६० ॥ दो पैरवालों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है पशुओं में गौ श्रेष्ठ है, देवताओं में इन्द्र

धेनु मुख्यानि दानानि तेन चीर्णानि सर्वथा ॥५६॥ गयाश्राद्धं कृतं तेन पितरः परितोषिताः व्रतानि तेन चीर्णानि व्रतखण्डोदितानि वै ॥६०॥ द्विपदां ब्राह्मणः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ देवानां वासवश्रेष्ठस्तथा मासो मलिम्लुचः ॥ ६१ ॥ मलिम्लुचे पंचरात्रं महापापहरं स्मृतम् ॥ पंचरात्रे च परमा पद्मिनी पापशोषिणी ॥ ६२ ॥ सैकाप्यशक्तैः कर्तव्याऽवश्यं भक्त्या विचक्षणैः ॥ मानुषं जनुरासाद्य न स्नातो यैर्मलिम्लुचः ॥ ६३ ॥ ते जन्मघातिनो

और महीनों में मलमास श्रेष्ठ है ॥६१॥ और मलमास में पंचरात्र व्रत महा पापों का नाश करनेवाला है, और पंचरात्र में भी पाप को नाश करनेवाली परमा और पद्मिनी दोनों एकादशी उत्तम हैं ॥ ६२ ॥ पण्डितों को चाहिये कि अशक्त होनेपर भी उनमें से एकका व्रत तो भक्तिपूर्वक अवश्य करें मनुष्य जन्म पाकर मलमास

मा. टी. १६१

में जो नहीं स्नान किया ॥ ६३ ॥ और जिसने एकादशी का उपवास नहीं किया वे जन्म घाती हैं, और वे मनुष्य चौरासी लाख योनि में घूमते हैं ॥ ६४ ॥ और फिर बड़े पुण्य से मनुष्य के दुर्लभ जन्म को पाते हैं, इस लिये बड़े प्रयत्न से परमा एकादशी के शुभ व्रत को अवश्य करना चाहिये । श्रीकृष्ण

नूनं नोपोष्य हरिवासरे ॥ योनीभ्रमाद्भिश्चतुराशीतिलक्षाणि मानवैः ॥ ६४ ॥ प्राप्यते मानुषं जन्म दुर्लभं पुण्य संचयैः ॥ तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन परमाया व्रतं शुभम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥६५॥ ये त्वेवं भुविपरमा व्रतं चरति सद्-भक्त्या शुभविधिना मलिम्लुचेवै ॥ ते भुक्त्वा दिवि विभवं सुरेन्द्र तुल्यं गच्छेयुस्त्रिभुवन वंदितस्य गेहम् ॥ ६६ ॥ कुरुष्व त्वं महाराज परमाया व्रतं शुभम् ॥ पठनाच्छ्रवणादस्या

जी बोले । हे युधिष्ठिर ! जो तुमने पूछा था सो मैंने कह दिया ॥ ६४ ॥ और जो मनुष्य पृथ्वी पर मलमास में अच्छी भक्तिपूर्वक सुन्दर विधि से परमा का व्रत करते हैं वे स्वर्ग में इन्द्र के समान सुख भोग करके तीनों लोक के स्वामी जो विष्णु भगवान हैं उनके लोक को जाते हैं ॥६६॥ सो हे युधिष्ठिर तुम भी इस मलमास की

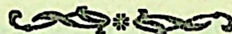
गोसहस्रफलं लभेत ॥ ६७ ॥ इत्यधिककृष्णैकादश्याः माहात्म्यं समाप्तम् ॥

परमा एकादशी का व्रत करो इसकी कथा कहने और सुनने से एक हजार गौ देने का फल मिलता है ॥६७॥

इति श्रीस्मार्तकर्मानुष्ठान निष्ठ काशीमण्डलान्तर्गत सीरग्राम वास्तव्य पं० बदरीनाथ शर्म तनुजनुषा पं० रामेश्वरदत्त कृतया भाषा टीकया समन्वितं षड्विंशत्येकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थ ॥

संशोधकः—श्रीवाजपेयि काशीनाथः ।





पं० श्रीलाल उपाध्याय द्वारा—श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित ।

164

1८५

* इति *

एकादशी माहात्म्य

भाषा टीका सहितम् समाप्तः ।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित ।